GP-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

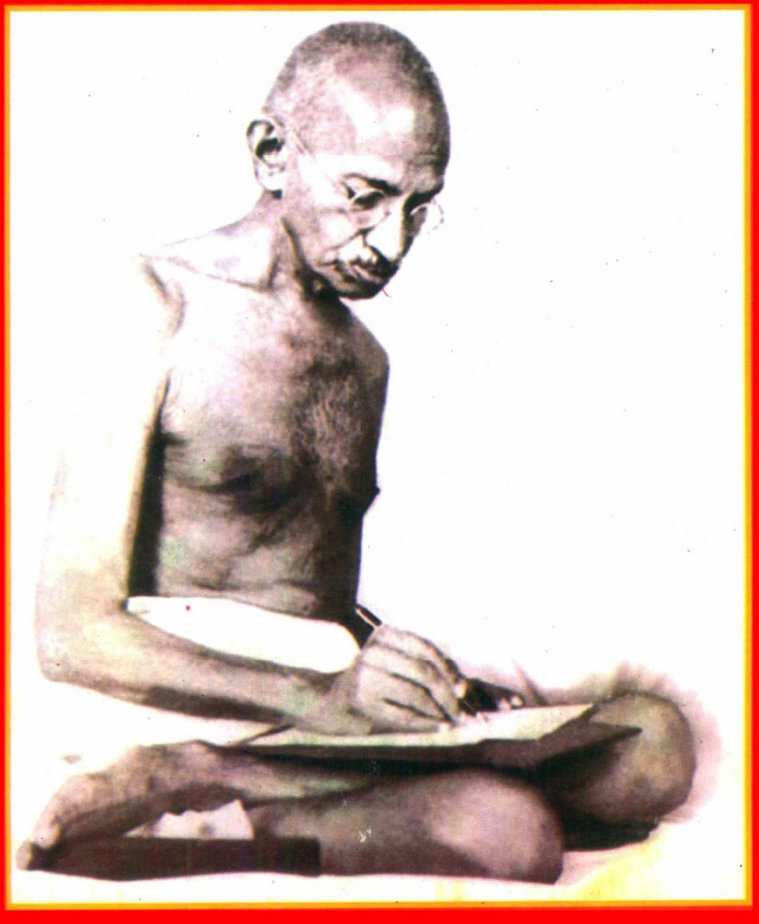

शान्ति अध्ययन

GP - 02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शान्ति अध्ययन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ.) एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

प्रो. के.एस. भारती
विभागाध्यक्ष(गांधी एवं विचार)
टी.के.एम. नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

प्रो. एन. राधाकृष्णन्
पूर्व अध्यक्ष गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
राजघाट, नई दिल्ली

प्रो. आर.एस. यादव
विभागाध्यक्ष(राजनीतिक विज्ञान) एवं निदेशक, गांधी अध्ययन केन्द्र
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. एम.एल. शर्मा
आचार्य,गांधी अध्ययन केन्द्र
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ. पी. मोटियानी
शांति एवं संदर्भ निवारण विभाग
गुजरात विद्यापीठ,अहमदाबाद
गुजरात

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

डॉ. बी. अरुण कुमार
सह आचार्य,राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई संख्या	इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. विरेन्द्र सक्सेना व्याख्याता, राजनीति विज्ञान डूगर कॉलेज, बीकानेर	1,4	**प्रो. आर.एस. यादव** विभागाध्यक्ष (राजनीतिक विज्ञान) एवं निदेशक, गाँधी अध्ययन केन्द्र कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र	9
डॉ. मनीष शर्मा सहायक आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़	2,3	**डॉ. गोपाल मीणा** व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एस. के. महाविद्यालय बाँसको, बस्सी (jaipur)	10
डॉ. दीपक पांडे व्याख्याता, राजनीति विज्ञान	5,11	**प्रो. जीन शार्प** प्रोफेसर, एमिरेटेस, राजनीति विज्ञान मेसचूसेट्स विश्वविद्यालय,डार्टमाउंट, यू.एस.ए.	12,13
प्रो. अरुण चतुर्वेदी परामर्शदाता, राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	6	**प्रो. माइकल ट्रू** प्रो. एमिरेटेस, राजनीति विज्ञान वॉरचेस्टर मेसचूसेट्स, यू.एस.ए.	14
डॉ. जुगल दाधीच सहायक आचार्य, गाँधी एवं शांति अध्ययन केन्द्र जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनू	7		
डॉ. बी. अरुण कुमार सह आचार्य,राजनीति विज्ञान वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	8		

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**	**वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : अप्रैल 2012 ISBN - 13/978-81-8496-291-8

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश को वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

कुलसचिव, व. म. खु. विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

शान्ति अध्ययन

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई - 1	शान्ति अध्ययन : अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र	7–18
इकाई - 2	शान्ति अध्ययन का दृष्टिकोण - I	19–34
इकाई - 3	शान्ति अध्ययन का दृष्टिकोण - II	35–48
इकाई - 4	भारतीय परम्परा और शान्ति	49–62
इकाई - 5	मानवाधिकार और शान्ति में अन्तर-सम्बन्ध	63–76
इकाई - 6	शान्ति प्रयास और संयुक्त राष्ट्र संघ	77–88
इकाई - 7	अहिंसा	89–105
इकाई - 8	शान्ति के सम्बन्ध में गाँधी विचार	106–120
इकाई - 9	गाँधी एवं वैकल्पिक विश्व व्यवस्था	121–132
इकाई - 10	शान्ति-निर्माण	133–145
इकाई - 11	शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण	146–161
इकाई - 12	अहिंसक कार्य की पद्धतियाँ - I	162–174
इकाई - 13	अहिंसक कार्य की पद्धतियाँ - II	175–182
इकाई - 14	शान्ति-स्थापक : मार्टिनलूथर किंग जूनियर, स्टीफन बिको, नेल्सन मण्डेला और एमा गोल्डमैन	183–195

इकाई 1

शान्ति अध्ययन : अर्थ प्रकृति एवं क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शांति अध्ययन का अर्थ

1.3 शान्ति अध्ययन की प्रकृति

1.3.1 नकारात्मक प्रकृति

1.3.2 सकारात्मक प्रकृति

1.4 शान्ति अध्ययन के क्षेत्र

1.4.1 आर्थिक क्षेत्र

1.4.2 पर्यावरण क्षेत्र

1.4.3 नारीवादी क्षेत्र

1.5 सारांश

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप शान्ति अध्ययन के संदर्भ में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त करेंगे । जैसे-

- शान्ति अध्ययन क्या है ?
- शान्ति अध्ययन की प्रकृति का क्या अर्थ लगाया जाता है ।
- शान्ति अध्ययन के क्षेत्र के बारे में जानकारी ।
- शान्ति अध्ययन में - आर्थिक, पर्यावरण, व नारीवादी परिप्रेक्ष्य क्या है ।

1.1 प्रस्तावना

शान्ति अध्ययन एक विषय के रूप में शान्ति की खोज की अपेक्षा बहुत ही नया विषय है । शान्ति अध्ययन पर चर्चा करने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि शान्ति के अर्थ को समझा जाए ।

शान्ति को कभी भी एक निश्चित् अर्थ के रूप में नहीं समझा गया और न ही यह आवश्यक था कि शान्ति की एक सर्वमान्य परिभाषा दी जाए, क्योंकि शान्ति का अर्थ संदर्भगत होता है, अर्थात जगह, समय एवं परिस्थिति के अनुसार शान्ति के विभिन्न मायने हैं, आधुनिकता ने भी शान्ति के पुराने व नए अर्थ में भेद किया है । प्राचीन काल में शान्ति को मनुष्य की प्रकृति का एक गुण माना जाता था कि मनुष्य शान्ति प्रिय है, शान्ति मनुष्य को

एक ईश्वरीय देन है अर्थात शान्ति एक विश्वास का विषय है । लेकिन आधुनिकता के पश्चात् शान्ति की नए रूपों में व्याख्या की गयी है (और इसे गहनता से व्याख्याखित किया गया ।) और यह माना गया कि शान्ति से मनुष्य का सीधा सम्बन्ध है, अर्थात जिस तरह से मनुष्य शान्ति को भंग कर सकता है या बिगाड़ सकता है तो फिर मनुष्य ही शान्ति को बना सकता है अर्थात् शान्ति मानव आधारित है ।

एक अवधारणा के रूप में यह मान्यता विकसित हुई कि शान्ति के भी निश्चित । 'मूल नियम' (Basic Laws) होते हैं तथा शान्ति को एक विज्ञान के रूप में समझा जाने लगा, अर्थात् जिस तरह से विज्ञान में निश्चित नियम होते है, एक कार्य कारण सम्बन्ध पाया जाता है, उसी तरह से शान्ति के भी निश्चित ? नियम होते हैं । यदि इन नियमों की खोज हो जाए तो शान्ति को खोजना सम्भव होगा ।

1.2 शान्ति अध्ययन का अर्थ

शान्ति अध्ययन से पहले दो शब्द और भी प्रमुख है शान्ति अनुसंधान एवं शान्ति शिक्षा । इन दोनों का अर्थ भी जान लेना आवश्यक है । शान्ति अनुसंधान का सम्बन्ध हिंसा के कारणों और शान्ति की स्थिति के बारे में ज्ञान के विकास संचय और अन्वेषण से है । शान्ति शिक्षा का सम्बन्ध शान्ति के बारे में शिक्षा की प्रकिया के विकास से है । शान्ति अध्ययन का अर्थ शान्ति अनुसंधान व शान्ति शिक्षा से कहीं अधिक है या यों कहें कि ये दोनों ही शान्ति अध्ययन की ही शाखाएं हैं और इन तीनों शब्दों में सर्वप्रथम शान्ति अध्ययन को ही समझा जाना चाहिए ।

शान्ति अध्ययन का सम्बन्ध चिन्ता के उस क्षेत्र से है जो प्रक्रिया के रूप में शान्ति के ज्ञान के प्रसार के प्रयोजनों और समस्याओं के बारे में पर्याप्त मुद्दों से सम्बन्धित है । यद्यपि शान्ति अध्ययन का केन्द्रीय सार शान्ति के अध्ययन को हिंसा की अनुपस्थिति के रूप में प्रस्तुत करता है परन्तु इस बारे में असहमति है कि शान्ति और हिंसा) का जन्म किस कारण से होता है । मुख्य बहस यह है कि क्या शान्ति को केवल युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित किया जाए । जिसे प्राय: नकारात्मक शान्ति कहा जाता है) या फिर जो अवधारणा युद्ध की अनुपस्थिति तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय की उपस्थिति दोनों को समाहित करती है जो प्राय: सकारात्मक शान्ति के क्षेत्र में आता है ।

शान्ति अध्ययन में उन बातों पर विचार-विमर्श किया जाता है जिनके आधार पर यह पता लगाया जा सके कि शान्ति के लिए क्या आवश्यक है, शान्ति की प्रक्रिया में किन-किन तथ्यों का होना चाहिए, संघर्ष निवारण के कौन-कौन से साधन हो सकते हैं, शान्ति भंग क्यों होती है, संघर्ष के मूल कारण क्या है ? संघर्ष का निवारण करने के लिए कौन-कौन सी अहिंसात्मक पद्धतियाँ हो सकती है ? कौन-कौन से ऐसे क्षेत्र हो सकते है जिनमें अनुसंधान कर संघर्ष के कारणों का पता लगाया जा सके, तथा उनके निवारण के तरीकों को खोजा जा सके । इस तरह का संपूर्ण विवेचन शान्ति अध्ययन की परिधि में आता है ।

शान्ति अध्ययन में शान्ति को भी व्यापक अर्थ में समझाया गया है । शान्ति को केवल युद्ध की अनुपस्थिति ही नहीं माना गया है । शान्ति का एक व्यापक अर्थ है । हम यह

कह सकते है कि किसी भी तरह का संघर्ष का निवारण अहिंसात्मक तरीके से हो, वहीं शान्ति है और इस पूरी प्रक्रिया का विवेचन शान्ति अध्ययन का एक हिस्सा है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सर्वप्रथम इस विश्व में बुद्धिजीवियों व दर्शनशास्त्रियों के विचार का विषय और चिन्ता का भी विषय यह बना कि, क्या हिंसा इतनी खतरनाक हो सकती है कि मानव सभ्यता का विनाश तक सम्भव है । इसी क्रम में यह भी शोध का विषय बना कि आखिर वो कौन से कारण थे जिनके कारण यह सब हुआ । ऐसा पुन: नही हो इसके लिए कई सम्मेलन हुए, विचार गोष्ठियां हुई । इसलिए सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी संस्था के निर्माण को व्यावहारिक रूप दिया गया जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों को नियमित कर सके तथा शान्ति एवं सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके । और वह संस्था भी 24 अक्टूबर 1945 को गठित "संयुक्त राष्ट्र संघ" । इसके बाद कई शान्ति शोधकर्ता आगे आए जिन्होंने इस क्षेत्र को आगे बढाया और शान्ति अध्ययन को एक विषय के रूप में मान्यता दिलायी । जैसे जॉन गॉल्तुंग के नेतृत्व में शान्ति अनुसंधान होने लगे तथा इयान एन हैरिस ने शान्ति अध्ययन में शान्ति शिक्षा को स्पष्ट किया ।

यह शान्ति अध्ययन का एक क्षेत्र है जो कि प्रत्यक्ष हिंसा से सम्बन्धित था, इस तरह के अन्य क्षेत्र भी हो सकते है जो कि प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष है जैसे महिलाओं के प्रति हिंसा, पर्यावरणीय हिंसा या आर्थिक हिंसा । इन सबके बारे में इसी प्रकार का विचार-विमर्श कर अहिंसात्मक समाधान खोजना सम्पूर्ण रूप से शान्ति अध्ययन है ।

1.3 शान्ति अध्ययन की प्रकृति

शान्ति अध्ययन की प्रकृति से तात्पर्य यह है कि शान्ति के किस रूप को माना जाए । सामान्यतया शान्ति की नकारात्मक प्रकृति और सकारात्मक प्रकृति में भेद किया गया है ।

- शान्ति अध्ययन की नकारात्मक प्रकृति
- शान्ति अध्ययन का सकारात्मक प्रकृति

1.3.1 नकारात्मक प्रकृति

सामान्यत: यह माना गया है कि शान्ति स्पष्ट हिंसा की अनुपस्थिति (जैसे युद्ध की अनुपस्थिति) है जो भौतिक बल से तोड़ मरोड़ करने की अपेक्षा संधि-वार्ता या मध्यस्थता से प्राप्त की जा सकती है यह अहिंसात्मक उपायों, पूर्ण निशस्त्रीकरण और सामाजिक-आर्थिक अन्योन्याश्रित के प्रयोग की संस्तुति करता है । नकारात्मक शान्ति अध्ययन में युद्ध रोकने के लिए ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और संस्थाओं की विशाल सारिणी की भी आवश्यकता होती है जो राष्ट्रो के बीच स्थायी संबंधों की सहायता कर सके ।

नकारात्मक शान्ति नीतियाँ, वर्तमान अल्पकालिक- या निकट भविष्य कालिक होती है । इसका संरचनात्मक हिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं होता है । अर्थात् हम यह कह सकते है कि शान्ति अध्ययन की नकारात्मक प्रकृति केवल यहीं तक सीमित हो जाती है कि शान्ति अध्ययन में इन बातों का अध्ययन किया जाए जिनमें प्रत्यक्ष हिंसा जैसे युद्ध के कारणों का पता लगाया जा सके तथा उनके निवारण का अहिंसात्मक उपाय खोजा जा सके ।

1.3.2 सकारात्मक प्रकृति

सामाजिक शान्ति की अवधारणा पर आधारित सकारात्मक शान्ति की अवधारण का अभिप्राय केवल प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थिति ही नहीं है अपितु संरचनात्मक हिंसा भी हटाना है । जॉन गाल्तुंग ने सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से सकारात्मक शान्ति के संदर्भ में इस बात पर जोर दिया कि असमान सामाजिक संरचना का उन्मूलन तथा समान दशाओं के विकास के बिना सकारात्मक शान्ति प्राप्त नही हो सकती है । समानता शान्ति का महत्वपूर्ण तत्व है क्योंकि इसका अभाव सभी प्रकार के तनावों को स्थायी बनाता है । सभी समूहों के लोगों को समाज के आर्थिक लाभों की तथा सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास के लाभों की भी पहुँच सुलभ होनी चाहिए ।

लोगों के पिछड़े वर्गो के लिए समानता का अभिप्राय संस्थागत, सांस्कृतिक, मनोवृत्तिक और व्यवहार संबंधी भेदभाव से संबंधित बाधाओं को दूर करना है । संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव बुतरस घाली के अनुसार दमन और गरीबी का उन्मूलन शान्ति के आवश्यक तत्व है । समान अवसरों से अपनी प्रतिभा और दक्षता का विकास कर सकते है ताकि वे विकास के विभिन्न पहलुओं में भाग ले सके ।

शान्ति की व्यापक धारणाएँ बहुत से उन मुद्दों का उल्लेख करती है जो प्रगति, स्वतन्त्रता, सामाजिक समानता, आर्थिक समानता, पूर्ण एकता, स्वायत्तता और सहभागिता जीवन की कोटि को प्रभावित करती है । संयुक्त राष्ट्र और महिलाओं की प्रगति 1945-1995 पर संयुक्ता घोषणा संख्या 84, 1996 के अनुसार "समाज में आर्थिक और सामाजिक न्याय, समानता और मानव आधिकारों की संपूर्ण श्रेणी तथा आधारभूत स्वतंत्रता के उपभोग" के लिए ऐसी शान्ति आवश्यक है जो राष्ट्रीय और स्तरों पर हिंसा और विद्वेष से परे हो । सभी प्रकार के शोषण को कम से कम करके ही संबंधों के लिए उपयुक्त स्थितियां प्राप्त होती है । जैसा कि पृथ्वी को शोषण का उद्देश्य माना जाता है, उसी प्रकार सकारात्मक शान्ति में विस्तार प्रकृति के सम्मानकी धारणा को शामिल किया गया है ।

नकारात्मक शान्ति के विचारक यह तर्क देते है कि मानव स्वभाव और विश्व शक्ति संरचना पर विचार करते समय यह अवास्तविक है और इसलिए सामाजिक न्याय से शान्ति की तुलना निरर्थक है । यदि हिंसा के लक्षणों के नियंत्रण पर संकीर्ण दृष्टि से विचार किया जाता है तो रहन-सहन का स्तर सुधारने के व्यापक आधार युक्त संघर्ष की अपेक्षा इसका अधिक सुनिश्चित प्रभाव होता है । युद्ध के दौरान केनेथ बोल्डिंग जैसे शान्ति अनुसंधानकर्ताओं ने यह चिन्ता व्यक्त की थी कि शान्ति की धारणा निशस्त्रीकरण की समस्याओं से ध्यान हटा सकती है और "विश्व विकास के महान अस्पष्ट अध्ययन" की ओर ले जा सकती है जो मुख्य रूप से युद्ध स्थिति की कमी और उन्मूलन में रूचि रखते हैं, वे शान्ति के लिए न्याय की आवश्यकता कम मानते हैं । इसलिए इस अनुसंधान परम्परा में लोकप्रिय विषय रहा है - हिंसात्मक सामाजिक व्यवहार और अस्त दौड़ पर नियंत्रण । युद्ध के खतरों की कमी, निशस्त्रीकरण, आकस्मिक युद्ध निवारण, परमाणु शस्त्रों का अप्रसार और संधिवार्ता से अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के समाधान से संबंधित तरीकों के अन्वेषण को प्राथमिकता दी गई है ।

सकारात्मक शान्ति परम्परा के विद्वानों में सबसे अधिक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान, जोहान गाल्तुंग दावा करते हैं कि युद्ध से बचने और उसे सीमित करने के खास मामलों या खास शस्त्र प्रणालियों में कटौती के रूप में ऐसे संकीर्ण मुद्दों की अपेक्षा हिंसात्मक संघर्ष की संरचनात्मक जड़ों का अध्ययन अधिक गंभीरता से किया जाना आवश्यक है । शान्ति प्राप्त करने के लिए परिस्थितियों की जानकारी हिंसा के संस्थानिक रूप पर विजय पाने की रणनीतियां स्पष्ट की जानी चाहिए । सकारात्मक शान्ति का अध्ययन उन दशाओं की पहचान करना है जो मनुष्य की उत्तरजीविता के लिए संकट उत्पन्न कर सकती है । इनमें पर्यावरण संबंधी मुद्दे और गरीबी और आर्थिक असमानता भी शामिल है । यह स्वीकार किया जाता है कि ये समस्याएं विश्व की वर्तमान आर्थिक और राजनीति संरचना में हल नहीं की जा सकती है, इसलिए वर्तमान प्रणाली की कमियों का विश्लेषण स्वाभाविक रूप से उस नीति और संस्थागत परिवर्तनों की ओर ले जाता है जो मानव कल्याण का काम करती है ।

अहिंसा के क्षेत्रों में कुछ लोग दमन की सरंचनात्मक दशाओं में हुए परिवर्तनों पर अधिक ध्यान दिये बिना शत्रुओं के विरूद्ध शस्त्रहीन संघर्ष में अंतर्निहित संहार तंत्र और युद्धनीतिक मुद्दे से मुख्य रूप से चिन्तित है । जिन शार्प जैसे शान्ति के विचारक केवल अहिंसक कारवाई को निश्चित राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा गैर घातक उपायों से विजयी होने के लिए प्रभावी रणनीतिक साधन के रूप में देखते हैं । अन्य विचारक, जैसे ज्योफ्री ओस्टरगाड जो महात्मा गाँधी की परम्परा का अनुसरण करतें हैं, अन्यायपूर्ण सामाजिक और आर्थिक प्रणाली की उत्पत्ति या अस्तित्व रोकने के सक्षम सिद्धान्त के रूप में अहिंसा पर बल देते है । अहिंसक सामाजिक संरचना समतावादी सामाजिक संबंधों को स्थापित कर प्राप्त हो सकती है ।

यद्यपि शीत युद्ध के दौरान युद्ध विरोधी आन्दोलनों का ध्यान परमाणु युद्ध के भयंकर परिदृश्य रोकने पर था साथ ही नकारात्मक शान्ति परम्पराओं में कार्यरत बहुत से शान्ति समूहों ने शान्तिवादी समुदायों के इस आदर्श का समर्थन किया कि शान्तिपूर्ण व्यवस्था के लिए सामाजिक न्याय आवश्यक है । यदि शान्ति का अध्ययन नीति परिवर्तन और किया के लिए तैयार किया है तो उसका अंतिम लक्ष्य संपूर्ण मानव जीवन की बेहतरी के लिए सामाजिक परिस्थितियां उत्पन्न करना है । इसलिए सकारात्मक शान्ति निर्माण नकारात्मक शान्ति प्रयोग का सम्पूरक होना चाहिए। शारीरिक बल का प्रयोग रोकना कुछ सामाजिक संरचनात्मक दशाओं के अधीन अधिक सफल रहा है । यदि समाज में न्याय है तो हिंसा के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं होगी । युद्ध की संस्थाएं प्रभुत्व पर टिकी हुई है और ये हिंसा की संस्कृति को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । उस दृष्टि से शान्ति युद्ध की संस्था के उन्मूलन समानार्थी है ।

1.4 शान्ति अध्ययन के मुख्य क्षेत्र

सामान्यतया पारम्परिक रूप में यह माना जाता है कि हिंसात्मक संघर्ष का प्रबन्धन एवं निवारण का अध्ययन शान्ति अध्ययन है इसीलिए शान्ति की शिक्षा पर जब चर्चा होती है तब सर्व प्रथम अस्त्रों की होड़ एवं निशस्त्रीकरण पर बल दिया जाता है । लेकिन वास्तव में ऐसा शत प्रतिशत नहीं है कि शान्ति अध्ययन को केवल इस संकुचित अर्थ में ही समझा जाए ।

पिछले कुछ वर्षो में शान्ति अध्ययन उन बहुत से क्षेत्रों से सम्बन्धित रह है जिसके आधार पर विश्व को बेहतर बनाया जा सके। शान्ति अध्ययन के कई क्षेत्र है जिसके आधार पर बेहतर विश्व का निर्माण किया जा सकता है जिनमें कुछ प्रमुख निम्न है ।

- आर्थिक क्षेत्र
- पर्यावरणीय क्षेत्र
- नारीवादी क्षेत्र

1.4.1 आर्थिक क्षेत्र

मार्कसीय उपागम के अन्तर्गत यह माना गया है कि समाज आर्थिक व्यवस्था द्वारा नियमित होता है इतिहास की प्रत्येक अवस्था में समाज में दो वर्ग रहे हैं, पूंजीपती वर्ग व श्रमिक वर्ग अर्थात् पूंजीपति वर्ग द्वार श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाता रहा है यह शोषण भी अपने-आप में एक हिंसा है । जो कि एक समाज में विभाजन पैदा करती है । यह विभाजन कई तरीकों से दर्शाया जा सकता है। जैसे:-

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर

आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तृतीय विश्व शब्द बहुत ज्यादा प्रचलित है । या विश्व को उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव के नाम से जाना जाता है । आखिर यह दक्षिणी या तृतीय विश्व है क्या ? हालांकि यह विभाजन भौगोलिक आधार पर किया गया है । लेकिन इनमें मूलभूत अन्तर आर्थिक आधार पर है अमीर देशों का समूह जिन्हें पूर्वी विश्व के नाम से जाना जाता है का जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में लगभग 20-25 प्रतिशत है । लेकिन वैश्विक संसाधनों का 80 प्रतिशत उपयोग इन्हीं देशों के द्वारा किया जाता है इसी कारण विश्व की एक बड़ी जनसंख्या न्यूनतम आवश्यकताओं का उपयोग तक नहीं कर पाती है । भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति भी दक्षिण के देशों में नहीं हो पाती है । इसी कारण आज पोषण से वंचित और पीड़ित लोगों की संख्या लगातार बढ रही है । दक्षिण के बहुत से देशों मे जन समुदाय की निरक्षरता का उच्च स्तर है । जीवन की ये दयनीय परिस्थतियां आर्थिक प्रणाली की विफलता के कारण हुई है । यह सब हिंसा का ही एक रूप है ।

मुक्त बाजार अर्थ व्यवस्था और वर्ग सम्बन्ध

यह बात सही है कि यदि हमें वंचित वर्ग के लिए सुविधाएं देनी है तो समान आर्थिक व्यवस्था आवश्यक है, परन्तु यदि अमीर व गरीब की खाई को कम करना है तो इस संदर्भ में कई तर्क दिए जा सकते है ।

पारम्परिक आर्थिक उदारवाद में सार्वभौम नियम हैं कि सभी के लिए समुचित सुख व्यक्तिवाद और सम्पति के अर्जन द्वारा पूरा किया जा सकता है । सरकार की भूमिका मुक्त बाजार समाज को प्रोत्साहित करने के लिए और निजी सम्पति के अधिकारों की रक्षा करने के लिए राजनीतिक वातावरण विकसित करने की होती है । लेकिन इस पूरे चक्र में इस बात पर कोई चिन्ता नहीं होती है कि इससे कोई शोषित समाज निर्माण तो नहीं हो रहा है । क्योंकि यह खुली प्रतियोगिता उन लोगों के लिए अनुकूल होती है । जो कानून नियम निर्धारित करते हैं । नैतिक मान्यताओं का इस पूंजीवादी समाज में कोई प्रभाव नहीं है ।

मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार "अतिरिक्त मूल्य (Surplus value) के आधार पर पूंजीपति वर्ग कामगारों का शोषण करते हैं । अर्थात पूंजीपति वर्ग कामगारों को उतना भुगतान नहीं करते हैं जिनके वे पात्र है उससे कम भुगतान कर पूंजीपति वर्ग श्रमिकों द्वारा उत्पादित अधिशेष मूल को ले-लेते हैं । इसलिए इस असमान वितरण से समाज में संघर्ष होता है जिससे इन वर्गो के बीच हिंसा होती है । इस वर्ग संघर्षवाद का समाधान समान समाज की प्राप्ति से हो सकता है । जिसमें कोई शोषणकारी आर्थिक सम्बन्ध नहीं है ।

वैश्वीकरण

1991 के पश्चात् यदि विश्व की सबसे प्रमुख कोई विशेषता है तो वह है, वैशवीकरण (भूमण्डलीकरण) । भूमण्डलीय आर्थिक एकीकरण ने वैश्वीकरण को मजबूत किया है । पूंजीवाद का नए सामाजिक मूल्यों की स्थापना तथा सूचना प्रौद्योगिकी तथा वैज्ञानिक प्रगति ने भूमण्डलीय विश्व को मजबूत किया है । आज भूमण्डलीकरण की दिशा में सबसे ज्यादा योगदान निजीकरण की है । जिसमें उदार नीतियों के माध्यम से आर्थिक व्यवस्था को संचालित किया जाता है । जिससे पूंजीवाद को प्रधानता मिलती है । और इसके कारण समाज में स्थायी सामाजिक-आर्थिक असमानता को बल मिलता है । इससे समाज में शान्ति की प्रक्रिया को आघात लगा है । भूमण्डलीकरण की आर्थिक प्रणाली ने राज्यों की नीतियों को प्रभावित किया है । जिसके कारण राज्य अपने स्तर पर समाजवादी या संरक्षणकारी नीतियां नहीं बना पा रहा है जो कि आर्थिक असमानता को दूर कर सके । वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण आज मजदूरी के दरें बहुत ज्यादा उपेक्षित है, कम मजदूरी पर कार्य करना भूमण्डलीकरण की सबसे बड़ी कमी है । मजदूरी संरक्षण अधिकार पर तरह-तरह की संविदाएं कर प्रतिबन्ध लगाए जा रहे हैं, जो अपने-आप में हिंसा का ही रूप है । इससे शान्ति की प्रक्रिया बाधित होती है ।

सामाजिक संक्रमण:-

तृतीय विश्व के कई देश आज आर्थिक दृष्टि से यूरोपीय देशों के उपनिवेश है । इस आर्थिक उपनिवेशीकरण ने कई देशों की अर्थव्यवस्था को लगभग नष्ट कर दिया है । तृतीय विश्व की आत्म निर्भर अर्थव्यवस्था को दर किनारा कर दिया है । स्थानीय विनमय सम्बन्ध लगभग समाप्त कर दिए गए हैं । विश्व व्यापी आर्थिक विस्तार ने देश के अन्दर सामाजिक बिखराव और विखण्डन की दशाऐं -उत्पन्न की है । आर्थिक निर्णय परिवार, लिंग और सामाजिक सबंधों से तथा सास्कृतिक सम्बन्धों से भी अलग रखे गए हैं ।

1.4.2 पर्यावरणीय क्षेत्र

शान्ति अध्ययन के लिए पर्यावरणीय क्षेत्र एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो इस बात की ओर इंगित करता है कि जैव पर्यावरणीय प्रणाली से मानव का क्या सम्बन्ध है तथा मनुष्य किस तरह से संकट ग्रस्त हो रहा है और आगे होगा यदि जैव पर्यावरण संतुलन बिगड़ता है । गाँधीजी ने आज से 100 वर्ष पूर्व ही यह कहा था कि इस प्रकृति के द्वारा सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है लेकिन एक मनुष्य की भी स्वार्थ पूरी नहीं हो सकती है । आज प्रकृति के अनुचित दोहन से पर्यावरण की इतनी विकट स्थिति हो चुकी है कि मानव सभ्यता को चुनौती मिल रही है जो अपने आप में एक हिंसा का रूप है । आज पृथ्वी और

उसके पर्यावरण को पहुँचायी गयी क्षति शान्ति की परस्थितियों की जांच का महत्वपूर्ण क्षेत्र है । आज हिंसात्मक संघर्ष के स्त्रोत के रूप में पर्यावरणीय संसाधनों की दुर्लभता पर भी अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है । आज विश्वव्यापी पर्यावरणीय समस्या पर सबसे अधिक जोर देने के कारण ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन कोपन हेगन (डेनमार्क) में नवम्बर 2009 में आयोजित किया गया है । क्योंकि यदि शीघ्र ही पर्यावरणीय समस्याओं का हल नहीं खोजा गया तो मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में खतरा हो सकता है, आज दिनों दिन ग्लेशियर के पिघलने से समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है, पीने का पानी कम हो रहा है, तापमान में असंतुलित रूप से परिवर्तन हो रहा है, ग्रीन हाउस प्रभाव, नदी और महासागर प्रदूषण, वनों का नष्ट होना व जैव विविधता की विकृति मनुष्य के कार्य कलापों के विस्तार से जुड़े हुए हैं । जो जीवनदायी पारिस्थितिकी तंत्र को संकट में डाल सकते हैं । आखिर यह सब क्यों हुआ तथा इसके प्रभाव क्या पड़ रहे हैं । तथा इस समस्या से कैसे बचा जा सकता है । यह सब शान्ति अध्ययन विषय क्षेत्र में शामिल है ।

ग्लोबल वार्मिंग जिससे पूरा विश्व ग्रसित है, नई-नई बीमारियाँ जैसे स्वाइन फलू आदि पनप रही है, आखिर इनके होने के पीछे क्या कारण है । यह मुख्य रूप से वाहनों और उद्योगों द्वारा जीवाश्म ईधनों के जलाने के कारण होता है । यह विश्व में उन जंगलों के कटाव से बढ़ा है इसमें वायुमण्डल से कार्बन हटाने की प्राकृतिक क्षमता थी । घरों में बढ़ते विलासता के साधन जैसे फ्रीज, कूलर, एसी. आदि में प्रयुक्त गैस क्लोरो-फलोरो कार्बन्स (CFCs) का समताप मण्डलीय ओजोन की क्षति में महत्वूपर्ण योगदान है जिसके परिणामस्वरूप हानिकारक सौर किरणों के स्तर बढ़ जाते हैं । इस संपूर्ण चक्र से जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो रहा है । वनों की क्षति प्रत्यक्ष रूप से विश्व की जैविक विविधता को प्रभावित करती है । इसके कारण पादपों और जन्तुओं की विशाल संख्या लुप्त हो रही है । आज विश्व की लगभग एक तिहाई जनसंख्या को शुद्ध जल नहीं मिल रहा है । विषाक्त केमिकल तथा वायुमण्डलीय प्रदूषण में जल की गुणवता पर प्रभाव डाला है ।

पर्यावरण के समक्ष एक अन्य प्रमुख चुनौती है जनसंख्या का विस्फोट । खासकर तृतीय विश्व में जिस तरह से जनसंख्या बढ़ रही है उससे इन देशों की प्रत्येक तरह की प्रगति रूक रही है यह जीवन स्तर को बिगाड़ देती है । लाखों -करोड़ों गरीबों को भूमि का अत्यधिक उपयोग करना पड़ता है तथा भूमि की लूट खसोट करनी पड़ती है, जबकि भूमि की वहन क्षमता तो यह निर्दिष्ट करती है कि क्षेत्र अपनी क्षमता से समझौता किए बिना कितने लोगो का भविष्य में भी निर्वाह कर सकती है । तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या से पृथ्वी धीरे-धीरे वहन क्षमता से अतिभार की ओर बढ रही है ।

मानव में संसाधनों का अत्यधिक उपयोग करने की प्रवृत्ति होती है जिससे पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित होता है यदि मानव समाज अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए हमेशा प्रयास करता है तो यह गलत है । आज कई जीव अपनी लुप्त अवस्था है ।

इसी सीमित या असमान रूप से वितरित संसाधनों के कारण हिंसात्मक संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। संसाधनों की दुर्लभता बढने के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे संघर्ष उत्पन्न हो रहा रहा । जिसके कारण समाजिक अशान्ति ओर युद्ध की संभावना बढ़ जाती है । विश्व के

बहुत से क्षेत्रों में जहां संसाधन मानव जनसंख्या का भरण पोषण करने में अक्षम है इसके कारण राज्यों के बीच संघर्ष हो रहा है । अरब-इजरायल के बीच जल संघर्ष जॉर्डन नदी के उपयोग से जुड़ा हुआ है ।

पर्यावरणीय सुरक्षा

हाल ही के वर्षो में संसाधनों की पर्यावरण संबंधी दुर्लभता का सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों को कम करना राष्ट्रीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है । हालांकि सुरक्षा की परम्परागत अवधारणा की राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट चिन्ताएं है । फिर भी पृथ्वी की सुरक्षा संपूर्ण प्रणाली की संरचना पर निर्भर करती है । पृथ्वी पर शान्ति पारिस्थितिकीय संतुलन के बिना प्राप्त नहीं हो सकती है । राष्ट्र-राज्य और सुरक्षा के परम्परागत सिद्धान्त से किसी भी प्रकार का संयोजन परम्परा के स्थाई नियन्त्रण के लिए बाधा प्रस्तुत कर सकता है । वास्तव में देखा जाये तो हिंसात्मक रणनीतियों जैसे अस्त्र परीक्षण कार्यक्रमों द्वारा पर्यावरण पर अत्याचार किया जा रहा है । औद्योगिक विश्व की उपभोक्तामूलक समृद्धि और विकासशील विश्व की गरीबी दोनों पर्यावरण विनाश कर रही है । क्षत विक्षत पर्यावरण विश्वव्यापी समानता की संभावना को एक ओर रखते हुए अमीर व गरीब दोनों के भावी विकास की संभावनाओं का समान रूप से विनाश कर रही है क्योंकि पारिस्थितिकीय समस्याएं किसी भी प्रकार की भौगोलिक सीमाओं को नहीं मानती है ।

1.4.3 नारीवादी क्षेत्र

शान्ति अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में नारियों के विरूद्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की हिंसा, अध्ययन का प्रमुख केन्द्र रहा है । पिछले लगभग चार दशकों में यह विषय शान्ति अध्ययन का प्रमुख केन्द्र रहा है । सामान्यता यह माना जाता है और सही भी है कि नारी "शान्तिवाद" से जुड़ी रही है । प्यार, करूणा और प्रशिक्षण नारी सुलभ गुणों ने शान्ति की अवधारणा को समृद्ध किया है । इसके अलावा दमनकारी सामाजिक व्यवस्था के आमूल-चूल रूपान्तरण के लिए नारी सुलभ मूल्यों के अनुप्रयोग शान्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष में महत्वपूर्ण सिद्धांत के रूप में कार्य करता है ।

महिलाओं के खिलाफ हिंसा

लिंग भेद, जातिवाद या मानव अधिकार इन सभी ने महिला व पुरूष दोनों को अपना शिकार बनाया है, लेकिन तुलनात्मक रूप से महिलाएं पुरूष की वनस्पत ज्यादा शोषित हैं, हिंसा हो या यौन शोषण महिलाओं की एक मुख्य समस्या रही है । महिलाओं के विरूद्ध प्रत्यक्ष में बलात्कार और असंगठित मनमाना दुर्व्यवहार और संगठित तरीके में महिलाओं पर आक्रमण भी शामिल है ।

तृतीय विश्व में महिलाएँ संरचनात्मक हिंसा से भी पीड़ित रही है । गरीबों में भी वे महिलाएँ जो या तो बुजुर्ग है या विधवा है इनके समक्ष अपना घर का खर्च चलाने में बड़ी समस्या का सामना करना पड़ता है । अत्यन्त गरीब और कठोर कार्य की दशाओं ने भी परिवार की महिला मुखिया पर उस परिवार का भारी बोझ डाला है । इन घरों में इनकी सहायता करने

के लिए कोई वयस्क पुरूष नहीं होता है । आज भी कई महिलाओं को भारी काम करने के बाद न्यूनतम वेतन मिल रहा हैं । उन्हें समुचित वेतन नहीं मिल रहा है ।

लिंग समस्या

सामान्यतया यह माना जाता है कि ईश्वर की अनुपम कृति इस पृथ्वी पर यदि कोई है तो वह है मानव की रचना अर्थात व्यक्ति । निश्चत रूप से कोई भी व्यक्ति पुरूष अथवा महिला है वे स्थानीय रूप से परिभाषित पुरूष वर्ग या स्त्री वर्ग की विशेषताएँ प्राप्त करते हैं, लेकिन सामाजिक स्तर पर महिला वर्ग को एक संकीर्ण निगाह से देखा गया है और महिला को एक वस्तु माना गया । महाभारत में द्रोपदी प्रकरण हो या वर्तमान समय की सामाजिक संरचना, महिलाओं को ऐसी वस्तु माना गया जो कि किसी निश्चित उपभोग के लिए है । यहाँ तक कि इन्हें कभी स्वतंत्र विचार के लिए छोड़ा ही नहीं जाता है । ऐसा सुनने को भी मिलता है कि बचपन में माता-पिता, युवा में पति तथा बुढ़ापे में बेटा उसका संरक्षणकर्ता होता है । क्या यह महिलाओं के खिलाफ संरचनात्मक हिंसा नहीं है ?

महिलाओं को बौद्धिक दृष्टि से भी दुर्बल समझा जाता है, लेकिन राजनीति और अन्य संस्थागत क्षेत्रों में महिलाओं के बढ़ते हुए प्रवेश व सफलता से यह स्पष्ट होता है कि आज महिलाओं द्वारा पुरूषोचित मूल्य अपनाने में वृद्धि हुई है । जैसा कि विदित है मारग्रेट थ्रेचर, इन्दिरा गाँधी इत्यादि को आयरन लेडी के रूप में जाना जाता है । इजरायल की तत्कालीन प्रधानमंत्री गोल्डमायर न केवल शान्ति निर्माताओं के रूप में रही, बल्कि युद्ध नायिका के रूप में रही है । इन्होने अरबो के विरूद्ध युद्ध जीता, इसी तरह से इंदिरा गाँधी को पाकिस्तान से युद्ध करने के लिए विवश होना पड़ा, और मारग्रेट थ्रेचर ने अर्जेन्टीना से विवाद में फाकलेण्ड दीपसमूह पर पुन: अधिकार करने के लिए सैन्य बल भेजा ।

आज सयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाएँ अप्रत्याशित संख्या में सशत्र सेनाओं में प्रवेश कर रही है । वे विभिन्न युद्धों में हाल ही की अमेरिकी सैनिक कार्यवाही की अपरिहार्य अंग सिद्ध हुई है । फिर भी सैन्य बलों में महिलाओं की अधिक भूमिका के विरोधी हमें यह बताते है कि महिलाएँ सैन्यवाद की शिकार रही है । राज्य की सेवाऐं असमानता की प्रणाली बनाए रखने के लिए संगठित की जाती है । अत: महिलाओं को सैन्यकरण द्वारा रूपांतरण किए जाने की अधिक सम्भावना है । नारीवादी लक्ष्य, अंहिसात्मक कार्यो के माध्यम से अच्छी तरह से प्राप्त किए जा सकते हैं ।

नारीवाद, शान्तिवाद व समाजवाद तीनों एक ही कड़ी में पिरोए जाते हैं । शान्ति की नारीवादी अवधारणा का विस्तार सामाजिक ज्ञान, आर्थिक समता और परिस्थतिकीय संतुलन की परिस्थितियों तक किया गया है । भविष्य के सामाजिक परिवर्तन के लिए समानता और लोकतंत्र का मिश्रित महत्व होना चाहिए और यह समानता पुरूष व महिलाओं की समानता हो ।

नारीवादी मूल्यों ने सुरक्षा की अवधारणा का विस्तार किया है । इसमें पूर्ण मानव परिवार में फैली हुई रिश्तेदारी की धारणा पर आधारित सभी लोगों और सभी राष्ट्रों को शामिल किया गया है । दूसरा वैचारिक रूप-रेखा का उद्देश्य ऐसी व्यापक परिभाषा ग्रहण करना है जो जीवन सुरक्षा और जीवन की गुणवत्ता वृद्धि की वकालत करता है । तीसरा, नारीवादी उपागम

में विरोधी राज्य केन्द्रित प्रणाली, स्वास्थ्य और उत्तम जीवन स्तर के लिए सर्वाधिक आधारभूत आवश्यकताओं के संरक्षण की परिस्थितियों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है । सैन्य आश्रित वर्तमान विश्व सुरक्षा प्रणाली स्वयं मानवता के प्रमुख संकट के रूप में देखी जाती है । सेना पर अत्याधिक व्यय करने से सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ती पर दबाव पड़ता है । नारीवादी सुरक्षा एजेण्डा संगठित राज्य हिंसा से सुरक्षा और मानव सौहार्द्र की आधारभूत अवश्यकताओं की पूर्ती का प्रयास करता है ?

1.5 सारांश

इस इकाई में हमने शान्ति अध्ययन के अर्थ-प्रकृति तथा इसके विभिन्न क्षेत्र के बारे में विवेचन किया है । इसमें हमने मुख्य रूप से शान्ति अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक पर्यावरणीय व नारीवादी पर विशेष रूप से चर्चा की है । इस संपूर्ण इकाई के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शान्ति का अर्थ केवल प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थिति ही नहीं है । शान्ति की सकारात्मक अवधारणा में शान्ति हिंसा की अनुपस्थिति की अपेक्षा अधिक है । यह समान अवसरों, शान्ति और संसाधनों का सुस्पष्ट समान संरक्षण और कानून के निष्पक्ष प्रवर्तन के माध्यम से सामाजक न्याय की मौजूदगी है । इसलिए यदि संसाधनों की नकारात्मक अवधारणा का प्रयोग और प्रभाव तथा अस्त शान्ति है तो सकारात्मक शान्ति में युद्ध हिंसा और अन्याय के कारणों के मूल रूप से उन्मूलन और उसके पक्ष समर्थन में अंतनिर्हत है । इसमें इन प्रतिबद्धताओं को प्रतिबिम्बित करने वाले समाज के निर्माण के सतर्क प्रयास भी अंतर्निहित है ।

शान्ति प्राप्त करने के लिए शान्ति की इन अवधारणाओं के अनुयायिओं के प्रयास भिन्न होते । पूर्ववर्ती वास्तविक व संभावित हिंसा को नियमित करने, रोकने और कम करने के लिए वे और संगठनात्मक संघर्ष प्रबंधन पर अपने प्रयास केन्द्रित करते हैं ।

1.6 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति के अर्थ को स्पष्ट कीजिए ।
2. शान्ति अध्ययन की सकारात्मक व नकारात्मक प्रकृति को स्पष्ट कीजिए ।
3. शान्ति अध्ययन के क्षेत्र से आपका क्या अर्थ है ।
4. पर्यावरण अध्ययन के प्रमुख क्षेत्रों में आर्थिक पर्यावरणीय व नारीवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दाधीच, नरेश (सम्पादित), टुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड : इन्टरनेशनल एण्ड इण्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
2. सरस्वती, बैधनाथ (सम्पादित), कल्चर ऑफ पीस एक्सपीरियन्स एण्ड, इन्दिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर द आर्ट्स एवं डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली, 1999 ।
3. प्रसाद, देवी, पीस एडुकेशन ऑर एडुकेशन फॉर पीस, गाँधीपीस फाउंडेशन, नई दिल्ली, 1984

4. गंगराडे के.डी. एवं मिश्रा, आर.पी., कॉनफ्लिक्ट रेसोल्यूशन थ्रू नॉनवायलेन्स, कानसेप्ट पब्लिशिन्ग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007
5. दास, दीप्ती मोई, डोकट्रीन ऑफ ट्रूथ एण्ड नॉन वायलेन्स : ए क्रिटिकल, स्टडी, डॉमिनेन्ट पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008 ।
6. कुमार, महेन्द्र, थ्योरिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1981

इकाई 2

शान्ति अध्ययन का दृष्टिकोण - 1

इकाई संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 शान्ति का अर्थ

2.3 शान्ति अध्ययन के प्रति पश्चिमी दृष्टिकोण

2.4 ऐतिहासिक परिदृश्य

2.5 शान्ति की अवधारणा का विकास पश्चिमी शान्ति शोध की छः अवस्थाएं

- 2.5.1 शान्ति - युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में
- 2.5.2 शान्ति - अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्तियों के संतुलन के रूप में
- 2.5.3 शान्ति - युद्ध की अनुपस्थिति और संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति
- 2.5.4 नारीवादी शान्ति सिद्धांत
- 2.5.5 समग्रवादी (Gaia) शान्ति सिद्धान्त
- 2.5.6 समग्रवादी (Gaia) आन्तरिक शान्ति - बाह्य शान्ति सिद्धान्त

2.6 शान्ति अध्ययन की दिशा

2.7 आठ कार्य क्षेत्र

2.8 शान्ति के लिए चुनौतियां

2.9 शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मत

2.10 सारांश

2.11 अभ्यास प्रश्न

2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप को निम्नलिखित का ज्ञान होगा :

- शान्ति का अर्थ
- शान्ति सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण
- पश्चिमी दृष्टिकोण के अनुसार इसकी विशेषतायें एवं विभिन्न आयाम

2.1 प्रस्तावना

शान्ति अध्ययन न कोई नवीन और न ही कोई प्राचीन शब्द है परन्तु इसमें 1970 के दशक के मध्य से इसमें अत्यधिक प्रगति हुई है । जबकि 1970 के दशक के प्रारम्भ में अन्वेषणात्मक योजना थी जो शान्ति अध्ययन और शान्ति शिक्षा की अन्तर्निहित प्रकृति की रूपरेखा तैयार करती है और टिप्पणी करती है कि बहुत कुछ होना बाकी है । 1980 के दशक के मध्य में यह बहस भिन्न स्तर पर पहुंच गई और व्यवहार में काफी कुछ किया गया ।

यद्यपि अधिकतर साहित्य 'शान्ति शोध' शान्ति शिक्षा एवं 'शान्ति अध्ययन' में कोई भेद नहीं करता है । इन परस्पर सम्बन्धित परन्तु भिन्न आयामों के मध्य स्पष्ट विभेद करना आवश्यक है । शान्ति शोध एवं शान्ति अध्ययन में स्पष्ट विभेद करने के पश्चात यह समझा जा सकता है कि ये कैसे और क्यों समय-काल और सम्बन्धित सरोकारों में परस्पर सम्बन्धित हैं । जैसा कि इसका नाम सुझाता है, शान्ति शोध युद्ध के कारण एवं शान्ति की शर्तों की वृहद परिभाषा के ज्ञान के विकास एवं आविष्कार से सम्बन्धित है। जब यथेष्ट ज्ञान एकत्र हो जाता है तब प्रश्न उठता है इसका क्या किया जाए ? कुछ ने निर्णय लेने में सफलता के लिए इसे नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रयुक्त करना चाहा । कुछ अन्य व्यक्तियों ने इसे आसवित कर उस वृहद समाज में प्रसारित करना चाहा जिससे यह सम्बन्धित है जिससे समाज में शान्ति को बेहतर तरीके से और संघर्ष को उसके विभिन्न स्वरूपों में समझा सकता है । सामान्य शब्दावली में, "शान्ति अध्ययन" इस बाद वाले क्षेत्र में अवस्थित है । अत: इस सीमा तक, शिक्षा की प्रक्रिया से स्पष्ट सम्बन्ध है क्योंकि वह शिक्षा ही है जो ज्ञान के प्रसार, मूल्यों की समझ इत्यादि के लिए उत्तरदायी है । इसलिए हम ये कह सकते हैं कि 'शान्ति शोध' ज्ञान के विकास एवं संकलन से सम्बन्धित है, 'शान्ति शिक्षा' शान्ति के विषय में शिक्षा की प्रक्रिया के विकास से सम्बन्धित है, जबकि 'शान्ति अध्ययन' विचार का ऐसा क्षेत्र है जो शान्ति के ज्ञान के प्रसार की प्रक्रिया के उद्देश्य और उसमें आने वाली समस्याओं के वास्तविक मुद्दों से सम्बन्धित है ।

2.2 शान्ति का अर्थ

इससे पहले कि हम शान्ति अध्ययन की अवधारणा को समझें, सर्वप्रथम शान्ति के विभिन्न अर्थो / धारणाओं / लक्षणों को समझना होगा । कुछ के लिए शान्ति अहिंसा की एक, विद्वेष की अनुपस्थिति हो सकती है । वृहद शब्दावली में इसे हिंसक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष की समाप्ति कहा जा है; इस अन्तराष्ट्रीय संदर्भ में शान्ति युद्ध का विपरीत है । इसे विभिन्न दलों के मध्य ऐसे सम्बन्धों के में भी समझा जा सकता है जिनकी विशेषता है सम्मान, न्याय, और शुभेच्छा । अधिक सामान्य रूप में कहा तो शान्ति एक व्यक्ति के लिए पर्यावरण से सम्बन्धित भी हो सकती है क्योंकि शान्तिपूर्ण का अर्थ हो सकता है शान्त, शान्ति और खामोशी । शान्ति की यह बाद वाली व्याख्या एक व्यक्ति के स्वयं के ज्ञान के विषय भी उपयुक्त हो सकती है क्योंकि 'स्वयं के साथ शान्ति से होना' भी एक व्यक्ति के अर्न्तमन में उसी, शान्ति शान्त, और सन्तुलन को परिलक्षित करता है ।

वर्तमान समय में, शान्ति का वृहद रूप से पहचाना जाने वाला प्रतीक चिह्न निशस्त्रीकरण के लिए अभियान है ।

यदि शान्ति की पुरानी पारम्परिक राजनीतिक परिभाषा और इस शब्द विशेष पर जाएं तो पाएंगे कि इसकी उत्पत्ति प्राचीन रोम में हुई, जिन्होंने शान्ति को युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में किया था । परन्तु आज के वर्तमान समय में शान्ति का अर्थ मृत्यु भी है । यह एक ऐसे आदर्शवादी विश्व भी निरूपित करती है जो प्रकृति व मनुष्य के साथ सामंजस्य में रहता है । शान्ति की अवधारणा लोगों की भौगोलिक राजनीतिक अस्तित्व में प्रजा की स्थिति पर भी लागू होती है क्योंकि गृह युद्ध, राज्य द्वारा जाति संहार, आतंकवाद, और अन्य प्रकार की हिंसा

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति के लिए धमकी हैं । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राज्यों के मध्य युद्ध कम हो गए हैं, जबकि आन्तरिक हिंसक संघर्ष अधिक केन्द्रीय का विषय बन गए हैं । उदाहरण के लिए, आज के सूडान में वृहद हिंसा और दुःख का परिदृश्य है, यद्यपि इसका किसी अन्य प्रभुसत्तात्मक राज्य के साथ युद्ध नहीं चल रहा है । इस संदर्भ में शान्ति, समूहों के मध्य हिंसा की अनुपस्थिति के रूप में समझा जा सकता है, ये समूह राज्य तन्त्र का हिस्सा हों या नहीं ।

हिंसा की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति के रूप में शान्ति की अवधारणा को भी कुछ लोगों द्वारा अपूर्ण मान कर चुनौती दी गई है । जॉन गाल्तुंग शान्ति की इस अवधारणा को 'नकारात्मक शान्ति' कहते हैं । वह सुझाव देते है कि वास्तविक शान्ति के अस्तित्व के लिए संघर्ष के आधारभूत बिन्दुओं का सुलझना आवश्यक है ।

शान्ति को न्याय से जोड़ते हुए महात्मा गाँधी ने विचार रखा कि यदि किसी दमनात्मक समाज में हिंसा की अनुपस्थित है तो भी वह समाज शान्तिपूर्ण नहीं है क्योंकि वहां दमन का अन्याय उपस्थित है । गाँधी ने शान्ति का ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जिसमें न्याय एक आवश्यक और अन्तर्निहित पहलू है । इसके अनुसार शान्ति के लिए केवल हिंसा की अनुपस्थिति ही नहीं अपितु न्याय की उपस्थिति भी आवश्यक है । जॉन गाल्तुंग, न्याय के साथ शान्ति को 'सकारात्मक शान्ति' कहता है, क्योंकि इस वातावरण में विद्वेष व हिंसा फल फूल नहीं सकते । महात्मा गाँधी के पश्चात, 1950 और 60 के दशक में मार्टिन लूथर किंग और दूसरे नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं ने अमरीका में पृथक्करण और प्रजातीय उत्पीड़न को समाप्त करने के ध्येय से विभिन्न अहिंसक आन्दोलन किए । ये शान्ति को हिंसा की अनुपस्थिति से अधिक कुछ मानते थे । उन्होंने देखा कि श्वेत व अश्वेत के मध्य कोई स्पष्ट संघर्ष नहीं था पर एक ऐसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था अस्तित्व में थी जिसके माध्यम से सरकार अफ्रीकी अमरीकियों को समान अधिकारों से वंचित रख रही थी । कुछ विरोधियों ने इन सक्रियतावादियों की शान्ति भंग करने के लिए आलोचना की, मार्टिन लूथर किंग ने कहा कि 'तनाव की अनुपस्थिति जो नकारात्मक शान्ति है' की तुलना में 'न्याय की उपस्थिति जो सकारात्मक शान्ति है' अधिक वांछनीय है । शान्ति, संघर्ष न करने से कहीं अधिक है। शान्ति का अर्थ है एक दूसरे की सहायता करना । शान्ति हमेशा से मानवता के उच्चतम मूल्यों में से एक, कुछ के लिए तो सर्वोपरि, रही है । उनके अनुसार शान्ति किसी भी कीमत पर रहनी चाहिए । कुछ के अनुसार सर्वाधिक असुविधाजनक शान्ति सर्वाधिक न्यायपूर्ण युद्ध से बेहतर है ।

2.3 शान्ति अध्ययन के प्रति पश्चिमी दृष्टिकोण

शान्ति अध्ययन के विषय में सर्वाधिक प्रचलित पश्चिमी दृष्टिकोण है मतभेद, हिंसा व युद्ध की अनुपस्थिति । यह न्यू टैस्टामेन्ट में पाया जाता है और संभवत: शान्ति के लिए प्रयुक्त ग्रीक शब्द *Irene* का मूल अर्थ भी यही है । शान्तिवादियों ने नई व्याख्या अपनाई है, उनके लिए समस्त हिंसा बुरी है । इस अर्थ को सिद्धान्तवादियों व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विद्यार्थियों ने वृहद स्वीकृति दी है । यह प्राथमिक शब्दकोषीय परिभाषा है । शान्ति को सामंजस्य, समन्वय, एवं प्रशान्ति के रूप में भी देखा जाता है । विशेषकर पूर्व में, इसे

मानसिक शान्ति अथवा प्रशान्ति के रूप में देखा जाता है । इसे कानून के राज्य अथवा नागरिक सरकार के रूप में परिभाषित किया जाता है या न्यायपूर्ण राज्य और शक्तियों के संतुलन के रूप में । शान्ति के ये अर्थ विभिन्न स्तरों पर कार्य करते हैं । शान्ति विरोधात्मक संघर्ष, हिंसा अथवा युद्ध की विरोधी या विलोम भी हो सकती है । यह आन्तरिक स्थितियों (मन अथवा राष्ट्र की) के विषय में हो अथवा बाह्य सम्बन्धों के । यह अवधारणा संकीर्ण भी हो सकता है, विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट सम्बन्धों के बारे में (जैसे कोई शान्ति सन्धि) अथवा एक पूर्ण समाज का घेरे में लेते हुए, वृहद प्रसारित भी (जैसे विश्व शान्ति में) । शान्ति द्विभाजन हो सकती है (इसका अस्तित्व है अथवा नहीं है) अथवा सतत, निष्क्रिय अथवा सक्रिय, अनुभवजन्य अथवा अमूर्त, वर्णनात्मक अथवा नियामक या सकारात्मक अथवा नकारात्मक । समस्या यह है कि शान्ति अपने अर्थ और विशेषताओं को एक निश्चित सिद्धान्त अथवा ढांचे से प्राप्त करती है । इसाई, हिन्दू और बुद्ध धर्म अनुयायी शान्ति अलग दृष्टिकोण से देखेंगे, जैसे कि शान्तिवादी व अन्तर्राष्ट्रवादी । समाजवादी, फासीवादी अथवा उदारवादी भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के शक्ति अथवा आदर्शवादी सिद्धान्त । अर्थो की इस विभिन्नता में शान्ति वास्तव में न्याय, स्वतंत्रता, समानता, शक्ति, संघर्ष, वर्ग, जैसे समस्त अन्य धारणाओं से भिन्न नहीं है ।

सभी धारणाओं को एक सिद्धान्त अथवा ज्ञानात्मक ढांचे में परिभाषित किया जाता है । एक दृष्टिकोण के अन्तर्गत शान्ति को अपना अर्थ यथार्थ एक विशिष्ट बोध के अन्दर अन्य धारणाओं से जुड़ कर एवं हिंसा, इतिहास, दैवीय कष्पा, न्याय इत्यादि विचारों व पूर्वधारणाओं के साथ उसके सम्बन्धों से प्राप्त होता है । इस प्रकार शान्ति हमारे यथार्थ और एक दूसरे के विषय में विवरणात्मक दृष्टिकोण में निहित है ।

शान्ति स्वयं में एक साध्य नहीं है । शान्ति मानव अस्तित्व की प्राथमिकता पर निर्भर करती है । हम शान्ति की खोज में नहीं जीते हैं अपितु हम जीने के लिए शान्ति को खोजते हैं । जैसे-जैसे लोगों में उनके जीवन के मूल्य का शान बढ़ता है उसी अनुपात में शान्ति व सुरक्षा के लिए इच्छा तीव्र होती है ।

शान्ति मात्र युद्ध अथवा हिंसा की अनुपस्थिति नहीं है । यह एक गतिमान प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति व समुदायों के मध्य शान्ति व आनन्द प्राप्त करने हेतु संवाद एवं क्रियायें सम्मिलित हैं ।

2.4 ऐतिहासिक परिदृष्य

यूरोप के महायुद्ध को मित्र देशों के प्रचार मे समस्त युद्धों का अन्त करने वाले युद्ध' का नाम दिया गया । यद्यपि मित्र देशों ने युद्ध जीत लिया, उसके परिणामस्वरूप प्राप्त की गई शान्ति, यथा 'वर्साई की सन्धि' ने केवल और अधिक रक्तरंजित युद्ध, द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए मंच तैयार किया । मित्र देशों की विजय के पूर्व बोल्शेविकों ने रूसी जनता को 'शान्ति, भूमि, और रोटी' का वचन दिया था । यद्यपि लेनिन ने शक्तियों के विरुद्ध विनाशकारी युद्ध का अन्त कर दिया परन्तु उसके तत्काल बाद होने वाले गृहयुद्ध के कारण लाखों की जनहानि हुई । ये

असफलताएं युद्ध को शान्ति प्राप्त करने के प्रयास के रूप में प्रयुक्त करने की, समस्या को उद्धृत करती हैं ।

प्रजातांत्रिक शान्ति सिद्धान्त के प्रस्तावक तर्क देते हैं कि इस बात का साक्ष्य है कि प्रजातंत्र एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध कभी-कभी ही या कभी भी नहीं छेड़ते । औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात देश प्रजातंत्र बनते जा रहे हैं, और ऐसा दावा किया जाता है कि यदि यह प्रवृत्ति जारी रही तो विश्व शान्ति सम्भव हो जाएगी । तथापि, आलोचकों ने इसका प्रतिवाद किया है, जैसे कि यह तर्क देना कि यह ऐसे राष्ट्र की, जो प्रजातंत्र बनने की ओर प्रवृत हैं, समृद्धि, शक्ति एवं स्थिरता से सम्बन्धित अन्य कारकों द्वारा समझाया जा सकता है जैसे कि वैश्विक व्यापार पर बढ़ती हुई निर्भरता और परस्पर आश्वासित विनाश के तथ्य ।

इतिहास संघर्षों से भरपूर है परन्तु कतिपय जनभागों, क्षेत्रों व राष्ट्रों ने पीढ़ियों तक चलने वाले शान्तिकाल देखे हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

- **स्वीडन** (1814-वर्तमान) सर्वाधिक लम्बे सतत शान्ति के इतिहास वाला वर्तमान काल का राष्ट्र स्वीडन है । **1814 में इसके** द्वारा नार्वे पर आक्रमण के पश्चात स्वीडन कभी युद्धरत् नहीं हुआ है ।
- **स्विटजरलैण्ड** (1815-वर्तमान) तटस्थता पर कठोर मुद्रा अपनाने के कारण स्विटजरलैण्ड को लम्बी अवधि की शान्ति बनाए रखने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है ।
- **कोस्टा रिका** (1949-वर्तमान) 1944 में 44 दिन के गृह युद्ध के बाद, 1949 में कोस्टा रिका ने अपनी सेना समाप्त कर दी । उसके बाद से इसका इतिहास शान्तिपूर्ण रहा है, विशेषतया उसके पड़ोसी केन्द्रीय अमरीकी देशों के सम्बन्ध में । इस कारण से इस देश को 'अमरीका का स्विटजरलैण्ड' नाम दिया गया है ।
- पैन्सिलवंनिया (1682-1754) पेन्सिलवेनिया उपनिवेश में 72 वर्ष तक शान्ति काल रहा । इस अवधि में इसने सेना नहीं रखी और कोई युद्ध नहीं किया । मित्र धार्मिक समाज (रिलीजियस सोसायटी ऑफ फ्रैंड्स) के सदस्य विलियम पैन के स्वामित्व (1644-1718) में इस उपनिवेश ने धार्मिक व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए एवं देशज अमरीकनों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार के कारण प्रतिष्ठा अर्जित की । यद्यपि यह कुछ हद तक यूटोपियन (आदर्शवादी) प्रयोग था परन्तु यह उपनिवेश आदर्श राज्य नहीं था । दासता, करारबद्धता एवं वर्गसंघर्ष ने इसका स्वरूप बिगाड़ रखा था । इसके साथ ही विलियम पैन के उत्तराधिकारियों का देशज अमरीकियों के प्रति व्यवहार, विशेषकर 1737 के वॉकिंग परचेज' में, कम न्यायपूर्ण था । तथापि, पेन्सिलवेनिया का औपनिवेशिक प्रयोग शान्तिपूर्ण समाज के उदाहरण के रूप में अच्छा अध्ययन विषय है
- अमीष (1693-वर्तमान) मुख्य रूप से स्विस / जर्मन वंश वाला एनाबैपटिस्ट अथवा मैनॉनाइट्स का पंथ, अमीष एक शान्तिपूर्ण जीवनशैली संधारित करता है । इसमें धार्मिक निष्ठा, तकनीकी प्रगति का प्रतिरोध, एवं अप्रतिरोध शामिल है । वे शायद ही कभी स्वयं की शारीरिक अथवा न्यायालय में रक्षा करते हैं । युद्ध काल में वे नैतिक

आपत्ति स्थिति अपनाते हैं । वर्तमान में 150,000 से अधिक अमीष संयुक्त राज्य अमरीका के 47 राज्यों, कनाडा और बेलीज में सघन समुदायों में निवास करते हैं ।

2.5 शान्ति की अवधारणा का विकास : पश्चिमी शान्ति शोध की छः अवस्थाएं

'शान्ति की संस्कृति' शब्दावली यूनेस्को के लिए महत्वपूर्ण केन्द्रबिन्दु बन गई है । शैक्षिक क्षेत्र में भी यह महत्वपूर्ण बन गया है । जैसा कि 'शान्ति की संस्कृति में विश्व के धर्मों का योगदान' पर 1993 बार्सीलोना अधिवेशन । प्रायोगिक धरातल पर यूनेस्को द्वारा दक्षिण में इस धारणा पर आधारित फील्ड परियोजनाएं का प्रारम्भ किया गया है । यदि संक्षिप्तता के कारण हम शान्ति चिंतन का अतिसरलीकरण करें तो कम से कम छः व्यापक श्रेणियों की पहचान करना सम्भव है जो कि एक विस्तृत अर्थ में पश्चिमी शान्ति शोध में शान्ति चिंतन के विकास के समनुरूप हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि एक समय में सभी विद्वान एक प्रकार से सोचते थे और अब दूसरी तरह से सोचने लगे हैं । इसका यह अर्थ भी नहीं है कि शान्ति शोधार्थियों के बहुमत ने अब एक समग्र प्रतिमान अपना लिया है ।

2.5.1 शान्ति युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में

यह राज्यों के मध्य अथवा उनके भीतर हिंसक संघर्षों- युद्ध व गृह युद्ध- पर लागू होता है । सामान्य जन एवं राजनीतिज्ञों में शान्ति की यह अवधारणा अभी भी व्यापक रूप से मान्य है । कतिपय स्थितियों में यहां बहस की गुंजाइश है, यह अभी भी एक वैधानिक उद्देश्य है, कम से कम जब तक हत्याएं बन्द न हो जाएं और जिन्दगी से युद्ध में मृत्यु से अधिक कुछ अपेक्षा करना सम्भव हो जाए । साथ ही, यहां चर्चित शान्ति की सभी छः परिभाषाएं युद्ध की अनुपस्थिति को शान्ति की पूर्वस्थिति मानती हैं । दूसरे शब्दों में यदि शान्ति मात्र राज्यों के मध्य व राज्य के भीतर युद्ध की अनुपस्थिति ही है तो शान्ति की संस्कृति वह संस्कृति होगी जो राज्यों के मध्य व राज्य के भीतर युद्ध अधिकाधिक असंभाव्य होते जाएंगे जब तक कि अंततः ऐसे युद्ध सर्वथा समाप्त न हो जाएं । शान्ति की ऐसी संस्कृति लम्बे समय से विश्व के कतिपय हिस्सों में कुछ राज्यों के मध्य स्थापित की जा चुकी है । जैसे कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका, युनाइटेड किंगडम और फ्रांस, ऑस्ट्रिया और न्यूज़ीलैण्ड के मध्य । ऐसा भी कहा जा रहा है कि पिछली कुछ शताब्दियों में इस प्रकार की शान्ति संस्कृति की ओर विश्वस्तरीय प्रवृति दिख रही है । उदाहरणस्वरूप, यूरोप में अन्तर्राज्यीय युद्ध की निरन्तर कम होती प्रवृत्ति कुछ सौ वर्षो में घटित हुई है और अब यूरोपीय समुदाय के सदस्यों के मध्य इस की शान्ति संस्कृति है । इसी प्रकार से, विश्वपर्यन्त अन्तर्राज्यीय युद्ध से परे जाने की प्रवृत्ति एक प्रभावी प्रथा रही है जैसा कि 1938 से पूर्व था । विदेशी सैन्य हस्तक्षेप के साथ राज्यों के भीतर सशस्त्र संघर्ष प्रमुख प्रथा रही उदाहरणस्वरूप वियतनाम व अफगानिस्तान युद्ध, जैसा कि 1980 के दशक के मध्य तक था । इस प्रकार एक स्तर पर, जो कि राज्यों के मध्य है, शान्ति की संस्कृति की ओर (युद्ध की अनुपस्थिति) काफी प्रगति हुई । राज्यों के भीतर संघर्ष

के विषय में यह सत्य नहीं है, विशेषकर जहां सांस्कृतिक रूप से भिन्न राष्ट्र अथवा समूह सम्बन्धित हों । इस समस्या के अन्वेषण के लिए शक्तियों के संतुलन के रूप में शान्ति की संस्कृति पर विचार करना आवश्यक है ।

2.5.2 शान्ति अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्तियों का संतुलन

क्विन्सी राइट (1941) ने युद्ध की अनुपस्थिति विचार में किंचित परिवर्तन किया । उसने सुझाव दिया कि शान्ति एक सक्रिय संतुलन है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी कारक सम्मिलित हैं और जब यह संतुलन टूटता है तब युद्ध होता है । राइट तर्क देता है कि अन्तर्राष्ट्रीय में यह संतुलन बना जिसको राज्यों एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजकीय संगठनों के मध्य व राज्यों के मध्य व राज्य के भीतर सम्बन्धों के सम्पूर्ण प्रतिरूप के अनुसार परिभाषित किया गया है । राईट राज्य के भीतर आन्तरिक जनमत की भूमिका की भी चर्चा करता है - जिसमें सामुदायिक स्तर का विश्लेषण सम्मिलित है । उसका मॉडल मानता है कि शान्ति संतुलन को पुर्नस्थापित करने के लिए शान्ति संतुलन में शामिल किसी कारक में अर्थवान परिवर्तन के साथ अन्य कारकों में तदनुरूप परिवर्तन आवश्यक होता है । उदाहरणस्वरूप, गलतफहमी के शिकार । ' परमाणु बम के जनक' रॉबर्ट ऑपनहैमर ने जब उसने परमाणु बम बनाने की प्रक्रिया जारी रखने पर जोर दिया तब उसने राईट का दृष्टिकोण अपनाया, जिससे कि नवीन वैश्विक सैन्य तकनीकी को नियंत्रित करने हेतु वैश्विक राजनीतिक संस्था संयुक्ता राष्ट्र का निर्माण करना आवश्यक हो जाए । शक्तियों के सन्तुलन की शान्ति संस्कृति की विभिन्न सिद्धान्तवादियों ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों के मध्य बढ़ी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अन्तर्निभरता के कारण उनके मध्य संघर्ष की घटी हुई सम्भावना के संदर्भ में व्याख्या की है । इस प्रकार अब फ्रांस और जर्मनी के मध्य युद्ध दोनों पक्षों द्वारा सोचा नहीं जा सकता । इस तथ्य के बावजूद कि केवल 50 वर्ष पूर्व इन दोनों देशों मानव इतिहास के सर्वाधिक रक्तरंजित युद्धों के लिए युद्धक्षेत्र उपलब्ध करवाया था । यही बात शायद भारत और पाकिस्तान, अर्जेनटीना और चिली, अथवा उत्तरी व दक्षिणी कोरिया के विषय में सत्य नहीं है, यद्यपि एकीकरण सिद्धान्तवादी तर्क देंगे कि इन में से किन्हीं देशों के मध्य युद्ध का खतरा कम हो गया है और भविष्य में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अन्तर्निभरता के साथ साथ निश्चित रूप से समाप्त ही हो जाएगा । यह कार्यात्मक एकीकरण तर्क, जिसका शक्तियों के सन्तुलन के साथ निकट सम्बन्ध है, सुझाव देता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शान्ति को शक्तियों के सन्तुलन के रूप में देखा जाता है जो परिवर्तन को राज्य स्तर पर अहिंसक रूप से निपटाना सम्भव बनाता है । ऐसा वैश्वीकरण प्रक्रिया की तुलना में अधिक है और यह ऊपर दिए गए एकीकरण तर्क के अनुसार है । इससे शान्ति संस्कृति को बल मिलना चाहिए । यह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल के लिए विशेषतया सत्य है जिसके बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई और अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी संगठनों, अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों व बहुराष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय निकायों में नाटकीय विस्तार हुआ । इस अवधि में, 'शक्तियों में संतुलन' शान्ति संस्कृति में पर्याप्त वृद्धि हुई है जैसा कि राज्यों के मध्य सीमापार

युद्धों में नाटकीय कमी आने से सूचित होता है । इस अर्थ में शान्ति संस्कृति उन संरचनाओं, मानकों एवं प्रथाओं की ओर इंगित करता हैं जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और राज्यों के भीतर वृद्धि हुई है और जिन्हें यद्यपि राज्यों के समुदाय का स्वीकार्य सदस्य बनने के लिए आवश्यक नहीं माना जा रहा पर अधिकाधिक उपयुक्ता माना जा कर स्वीकार किया जा रहा है ।

कैनेथ बॉल्डिंग जैसे सिद्धान्तवादी मानते हैं कि युद्ध की अनुपस्थिति के अर्थ में शान्ति के साथ शान्ति के क्षेत्रों का विकास 'शान्ति के लिए आन्दोलन' का परिणाम हैं । बॉल्डिंग के लिए शान्ति के लिए आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों के मध्य बढी हुई आर्थिक एवं सामाजिक अन्तर्निभरता का परोक्ष परिणाम है, जबकि शान्ति आन्दोलन का ऐसे व्यक्तियों और समूहों द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है जो युद्ध, परमाणु हथियारों और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अन्य अवांछित तत्वों के विरुद्ध सक्रिय अभियान चलाते हैं । शान्ति के क्षेत्र वे क्षेत्र हैं जिनमें उस क्षेत्र के अन्दर आने वाले राज्यों व राष्ट्रों में बहुल अन्तर्निभरता के कारण राज्यों के मध्य और उनके भीतर युद्ध अधिकाधिक असम्भव होता जा रहा है ।

2.5.3 शान्ति : युद्ध की अनुपस्थिति और संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति

गाल्तुंग (1969) ने राईट के दृष्टिकोण में आगे परिवर्तन करते हुए 'नकारात्मक शान्ति व सकारात्मक शान्ति नाम से दो श्रेणियों का प्रयोग किया जिनका 28 वर्ष पूर्व राईट ने प्रतिपादन किया । गाल्तुंग ने एक तृतीय स्थान का विकास किया और कहा कि नकारात्मक शान्ति युद्ध की अनुपस्थिति है और सकारात्मक शान्ति संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति है । संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति की अवधारणा का अभिप्राय है वे परिहार्य मौतें जिनका कारण मात्र सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य संरचनाओं के संगठन का तरीका हो । इस प्रकार यदि विश्व में कहीं अन्न उपलब्ध होने पर भी यदि लोग भूख से मरते हैं अथवा इलाज हेतु दवा उपलब्ध होने पर भी लोग बीमारी से मरते हैं तो संरचनात्मक हिंसा का अस्तित्व है क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से वैकल्पिक संरचनाएं ऐसी मौतों को रोक सकती हैं । इस दृश्यावली में शान्ति नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रकार की शान्ति की उपस्थिति सम्मिलित है । गाल्तुंग का प्रतिमान (विश्लेषण के समुदाय, राज्यों के मध्य, राज्यों के भीतर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों के साथ साथ) में विश्लेषण का वैश्विक स्तर सम्मिलित है जैसे कि वैश्विक अर्थव्यवस्था जो कि बहु राष्ट्रीय कम्पनियों जैसे अराज्यीय अभिनेताओं से प्रभावित है ।

यदि हम गाल्तुंगीय ढांचे में शान्ति संस्कृति की ओर देखें ओर हम संरचनात्मक हिंसा के मुद्दे पर केन्द्रित करें तो विश्व का चित्र कुछ कम सकारात्मक है परन्तु पूर्णतया नकारात्मक भी नहीं है । गैर सरकारी स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक समूह उदित हुए हैं जो आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ निर्मित करने के लिए संघर्ष कर रहे है जिनके द्वारा संरचनात्मक हिंसा की सर्वाधिक कठोर अभिव्यक्तियों जैसे गरीबी, भुखमरी, एवं रोकथाम योग्य रोगों आदि को जीता जा सके । इसके साथ साथ विश्वपर्यन्त कई सरकारें मानवीय मिशनों में योगदान करती हैं । रोज टेलीविजन पर दिखाई जाने वाली दुखांतिकाओं के लिए कुछ हद तक उत्तरदायी महसूस करते हुए वे ऐसा कर्तव्यस्वरूप करती हैं । कुछ वैधानिकता के साथ यह तर्क दिया जा सकता है कि वैश्विक आर्थिक व राजनीतिक संरचनाएं बहुराष्ट्रीय व पराराष्ट्रीय निकायों

के एवं वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के अपरिहार्य परिणामों के माध्यम से वैश्विक संरचनात्मक हिंसा में योगदान देती है । इस तथ्य को मान्यता देनी चाहिए कि अनेक करोड़ों डालर सम्पत्ति वाले निजी उद्यम, एवं हजारों छोटे समूह आर्थिक, सामाजिक, व राजनीतिक दृष्टिकोण का प्रयोग करते हुए संरचनात्मक हिंसा को जीतने के लिए काम करते है । यद्यपि शान्ति की संस्कृति की इस व्याख्या अभी तक मूल्यों अथवा आर्थिक, राजनीतिक, एवं सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन करने में सफल नहीं हुई है जिससे ऐसे विश्व का निर्माण किया जा सके जिसमें संरचनात्मक हिंसा की सम्भावना उत्तरोत्तर कम होती जाए, परन्तु इस प्रकार की संस्कृति के उदय होने के काफी साक्ष्य दिखाई देते हैं । मानवीय सहायता के लिए नागरिकों व सरकारों के प्रयास यद्यपि अक्सर अपर्याप्त होते हैं परन्तु फिर भी ये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का स्थापित भाग हैं । इन्हें अपवाद नहीं अपितु मानक कहा जा सकता है ।

2.5.4 नारीवादी शान्ति सिद्धान्त

1970 एवं 1980 के दशकों के दौरान, नारीवादी शान्ति शोधकर्ताओं द्वारा चौथा दृष्टिकोण प्रारंभ किया गया । इन्होंने सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार की शान्ति में हिंसा और संरचनात्मक हिंसा को व्यक्तिगत स्तर को सम्मलित किया । इस नई परिभाषा ने न केवल युद्ध जैसी वृहद स्तर की संगठित हिंसा का, अपितु युद्ध में बलात्कार एवं घरेलू झगड़े जैसी लघुस्तरीय असंगठित हिंसा का भी उन्मूलन शामिल है । इसके साथ संरचनात्मक हिंसा की धारणा भी समान रूप से विस्तृत की गई है । जिसमें व्यक्तिगत, लघु व वृहद् स्तरीय ऐसी संरचनाएं सम्मिलित हैं जो विशिष्ट समूहों और व्यक्तियों के साथ विभेदीकरण करती हैं । नारीवादी शान्ति प्रतिमान ने लोगों, समूह, और विश्व स्तर की हर प्रकार की हिंसा को शामिल किया है क्योंकि यह शान्तिपूर्ण धरती की स्थापना के लिए आवश्यक है ।

यदि शान्ति की संस्कृति की अवधारणा की नारीवादी ढांचे में व्याख्या की जाए तो पाएंगे कि शान्ति के लिए आवश्यक स्थितियां किसी भी देश में नहीं हैं । लघुस्तर पर शारीरिक व संरचनात्मक हिंसा समुदाय व परिवार में, गलियों और विद्यालयों में व्यापक रूप से फैली हुई है । नारीवादी शान्ति संस्कृति की स्थापना के लिए आवश्यक सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, व आर्थिक परिवर्तन दुनिया के प्रत्येक राष्ट्रीय समाज के लिए प्रमुख चुनौती प्रस्तुत करते हैं । ऐसा ही कुछ धार्मिक संस्थाओं के साथ साथ, अधिकतर संस्थाओं के लिए भी कहा जा सकता है । जबकि पहले चर्चित तीन शान्ति मॉडल शान्ति के वृहद स्तरीय विश्लेषण पर बल देते हैं, नारीवादी मॉडल व्यक्तिगत अनुभव में अवस्थित है और इस तथ्य पर आधारित है कि शान्ति 'को व्यक्ति कैसे अनुभव करता है। शान्ति अवधारणा के समग्र शान्ति, जिसमें आन्तरिक व बाह्य पक्ष दोनों शामिल हैं, की ओर विकास के लिए यह परिवर्तन आवश्यक था । इसे नारीवादी शान्ति सिद्धान्त का प्रमुख योगदान कहा जा सकता है । जबकि पूर्व के तीन प्रतिमानों की प्रवृत्ति शान्ति को विश्वस्तर पर लागू होने वाली अमूर्त, सामान्य अवधारणाओं का प्रयोग करते हुए विचारित करने की थी, नारीवादी प्रतिमान ने इन अवधारणाओं को उलट दिया और स्पष्ट रूप से शान्ति को व्यक्तिगत, अनुभवजन्य स्तर से परिभाषित किया । नारीवादियों

की संरचना की धारणा एक 'वृत्ताकार जटिल' नमूने पर जोर देती है जबकि संरचनात्मक हिंसा की गाल्तुंग की परिभाषा पदानुक्रमीय है । इस सम्बन्ध में नारीवादी सिद्धान्ती शान्ति के मूल्यों में सकारात्मक दृष्टिकोण की ओर परिवर्तन दिखाते हैं, 'जो मनुष्यों के मध्य समग्रवादी गैर-पदानुक्रमीय संवाद पर बल देता है ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रकार दृष्टिकोण प्रयुक्त करते हुए वैश्विक समस्याओं को संबोधित नहीं किया जा सकता । ऐसा हो सकता है जैसा कि नीचे दिए गए उदाहरण से स्पष्ट है । 'एशियाज रिस्पॉन्स टु एड्स मार्क्स बाय फियर, डिनायल' शीर्षक वाले लॉस एंजेल्स टाईम्स (लॉस एंजेल्स टाईम्स, 1994) में छपे एक लेख में वर्णित है कि कैसे 1993 में विश्वव्यापक 14 लाख एड्स मामलों में एक तिहाई महिलाएं थीं और शताब्दी के अन्त तक हम प्रत्येक वर्ष में महिला व पुरुष एड्स रोगियों की संख्या के समान होने जाने की आशा कर सकते हैं । अगस्त 1994 में जापान में होने वाले एड्स विशेषज्ञों के सम्मिलन की रिपोर्ट करते हुए यह लेख दर्शाता है कि महिलाएं पिताओं, भाइयों, पतियों और दलालों की समक के शिकार हैं और उन्हें तलाक अथवा उत्तराधिकारी का अधिकार नहीं होते । पुरुष बहुधा महिलाओं को सम्पत्ति से अधिक नहीं मानते और उनके प्रति कोई उत्तरदायित्व महसूस नहीं करते इस कारणवश पुरुष कण्डोम अथवा अन्य सुरक्षित सैक्स की अन्य प्रथाएं प्रयोग में लाने के प्रबोधनों से अप्रभावित रहते हैं । लॉस एंजेल्स टाइम्स हारवर्ड विश्वविद्यालय के डॉ जोनाथन मान, जो कि विश्व स्वास्थ्य संगठन एड्स कार्यक्रम के पहले प्रमुख थे, को उद्धृत करते हुए कहता है, 'यदि विकासशील देशों में सभी सोचे हुए शैक्षिक व नियंत्रण कार्यक्रमों को लागू कर दिया जाए तो भी आसन्न महाविपत्ति को रोकने में असफल होंगे क्योंकि वे मानवाधिकारों, विशेषकर महिलाओं के अधिकारों को विचार की परिधि में नहीं रखते । इस भावना को विश्व स्वास्थ्य संगठन एड्स कार्यक्रम के प्रमुख डॉ माइकल मर्सन ने आगे विस्तार देते हुए कहा शक्तिविहीन लोग असुरक्षित होते हैं, उन अनगिनत स्त्रियों के विषय में सोचिए जिन्हें अपने साथी से संक्रमण का खतरा होता है, परन्तु कण्डोम के प्रयोग के लिए जोर देने की शक्ति अथवा रिश्ते को छोड़ देने लायक आर्थिक शक्ति जिनके पास नहीं है ।' डी मर्सन आगे कहते हैं कि 'हम चाहे जितना अधिक प्रयास करें, पारम्परिक स्वास्थ्य कार्यक्रम सामाजिक स्तर और अधिकारों के प्रयोग में इस भेद के नकारात्मक प्रभाव को दूर नहीं कर सकते ।

यदि नारीवादी अर्थ में शान्ति के निर्माण के लिए सहायक स्थितियां प्राप्त करनी हों, तो व्यक्तिगत, अनुभवजन्य विश्लेषण पर आधारित नारीवादी शान्ति संस्कृति उत्तर और दक्षिण दोनों में सामाजिक मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन चाहती है । लघुस्तर पर संरचनात्मक हिंसा पर विजय पाने में संस्कृति की केन्द्रीय भूमिका एड्स मुद्दे से स्पष्ट हो जाती है । इसी प्रकार से घरेलू हिंसा और बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार जैसे मुद्दे, जिन पर नारीवादी विद्वानों द्वारा बल दिया गया है, भी सांस्कृतिक मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन चाहते हैं । जबकि अधिकतर नारीवादी विद्वानों ने पत्नी प्रताड़ना जैसे लघुस्तरीय हिंसा पर बल दिया है, पितृसत्तात्मक संरचनाओं के व्यापक प्रभाव जैस वृहद स्तरीय हिंसा के मुद्दों पर भी उनका केन्द्रीकरण रहा है ।

परिणामस्वरूप, नारीवादी शान्ति संस्कृति की अवधारणा में व्यक्तिगत सांस्कृतिक मूल्यों में सामाजिक व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है ।

2.5.5 समग्रवादी (Gaia) शान्ति सिद्धान्त

1990 के दशक में दो प्रकार की समग्रवादी शान्ति विचारधारा का उदय हुआ (ड्रैकर 1991, मेसी 1991) स्मोकर 1991) । यहां जैसा कि नारीवादी मॉडल में है, लोगों के मध्य शान्ति विश्लेषण के हर स्तर पर लाग होती है- परिवार एवं व्यक्ति के स्तर से वैश्विक स्तर तक । इसके साथ साथ गाइया शान्ति सिद्धान्त मनुष्यों के जैवपर्यावरणीय व्यवस्थाओं के साथ सम्बन्धों को अत्याधिक महत्व देता है - विश्लेषण का पर्यावरणीय स्तर । इस प्रकार के समग्रवादी शान्ति सिद्धान्त में पर्यावरण के साथ शान्ति को केन्द्रीय माना गया है । इसमें इन्सानों को धरती पर निवास करने वाली अनेक प्रजातियों में से एक माना गया है और पृथ्वी ग्रह के भाग्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य माना जाता है । इस प्रकार की समग्रवादी शान्ति विचारधारा का आध्यात्मिक आयाम नहीं है और शान्ति को मनुष्यों व पर्यावरण के विरुद्ध हर प्रकार की शारीरिक हिंसा के संदर्भ में परिभाषित किया गया है।

शान्ति संस्कृति की एक समग्रवादी गाइया-शान्ति व्याख्या विचार करने योग्य शेर भी व्यापक चिन्ताओं को प्रस्तुत करती है । कुछ दिन पूर्व तक पश्चिमी संस्कृति में पर्यावरण को शोषण किए जाने योग्य ऐसा संसाधन माना जाता था जिसका अस्तित्व मनुष्य से पृथक है, उसे अब हमसे सम्बन्धित माना जा रहा है । बाह्य शान्ति का विस्तार जिसमें कि पर्यावरण के साथ शान्ति सम्मिलित है, शान्ति अवधारणा के महत्वपूर्ण व आवश्यक विकास को दर्शाता है । इसमें पर्यावरण को दृढ़ता से एकीकृत जैवरसायनिक व्यवस्था के रूप में देखा जाए अथवा देवी गाइया के रूप में, एक जीवित प्राणी, कार्यात्मक और अर्थवान दोनों प्रकार से एकीकृत एक सम्पूर्ण व्यवस्था । पर्यावरण के साथ शान्ति के प्रति चिन्ता अभी तक सांस्कृतिक मूल्यों में व्यापक व मूलभूत परिवर्तन नहीं ला सकी है परन्तु शायद प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है । बीस वर्ष से भी कम की कालावधि में, विश्व के अधिकतम समाजों में पर्यावरणवाद की ओर झुकाव हुआ है । हरित शान्ति एक महत्वपूर्ण दबाव समूह के नाम से अधिक हो चुका है । अब पर्यावरण के साथ सामंजस्य बना कर रहने की आवश्यकता को व्यापक पहचान मिल चुकी है । एक ऐसी आवश्यकता जो कुछ लोगों के लिए पूर्णतया क्रियात्मक हो सकती है पर अधिकतर के लिए पृथ्वी गृह को पवित्र मानने के विचार पर आधारित है ।

2.5.6 समग्रवादी (Gaia) आन्तरिक शान्ति - बाह्य शान्ति सिद्धान्त

शान्ति का यह छठा दृष्टिकोण शान्ति के आन्तरिक, गूढ़ (आध्यात्मिक), पक्ष के आवश्यक मानता है । आध्यात्मिकता पर आधारित शान्ति सिद्धान्त सभी वस्तुओं के मध्य पारस्परिक संवाद और सह-उत्थान एवं आन्तरिक शान्ति की केन्द्रियता पर बल देता है । मनुष्यों के परस्पर एवं विश्व के साथ सम्बन्ध-जिसमें पर्यावरण भी शामिल है- के साथ-साथ गाइया शान्ति सिद्धान्त में आध्यात्मिक आयाम भी जोड़ दिया गया है । सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर इसे शान्ति शोधकर्ताओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है ।

जैसे कि ताओं ऑफ फिजिक्स में, जहां भौतिकी के नए प्रतिमान पूर्वी रहस्यवाद में पाए जाने वाले विश्वदृष्टिकोण के साथ प्रतिध्वनित होते हैं, शान्ति शोध का यह नया प्रतिमान विश्व की आध्यात्मिक व धार्मिक़ परम्पराओं के विचारों के साथ प्रतिध्वनित होता है । शान्ति सच्चे अर्थो में अविभाज्य हो चुकी है ।

पश्चिमी शान्ति शोध के लिए इसका अर्थ है धर्मनिरपेक्ष से आध्यात्मिक शान्ति प्रतिमान की ओर स्थानपरिवर्तन । यह एक बोध है कि आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति, आध्यात्मिक एवं भौतिक शान्ति अन्त: सम्बन्धित और अन्योन्याश्रित हैं । यहां विश्व की धार्मिक और आध्यात्मिक परम्पराओं का योगदान हमे समग्रवादी शान्ति की बेहतर समझ में सहायता कर सकता है । उदाहरणस्वरूप, यह विचार कि बाह्य शान्ति का सामूहिक बाह्य विश्व आध्यात्मिक शान्ति के आन्तरिक विश्व का प्रतिनिधित्व करता है अथवा उसकी छवि है, समग्रवादी आन्तरिक और बाह्य वैश्विक शान्ति संस्कृति के निर्माण के लिए विशेष महत्वपूर्ण है । मानवता के धार्मिक जीवन का वैविध्य और भिन्नताएं, जैसा कि सार्वभौम परम्परा में माना गया है, इस स्थिति में आन्तरिक और बाह्य दुनिया के मध्य सक्रिय कड़ी का कार्य करेंगी । इस कार्य से शान्ति की संस्कृति के हर पक्ष में आन्तरिक-बाह्य शान्ति व्यक्त होगी- जैसे लघु व वृहद् सामाजिक व आर्थिक संस्थाएं, स्थानीय व वैश्विक मूल्य कला, साहित्य, संगीत, तकनीकी, ध्यान एवं प्रार्थना । इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न शान्ति संस्कृति में गाइया कं समान वैश्विक प्रतिमान दिखाई देगा, जहां परस्पर संवाद में लिप्त स्थानीय संस्कृतियां आन्तरिक एकता का प्रकटीकरण हैं और बाह्य भिन्नता का सिद्धान्त सम्पूर्ण व्यवस्था में प्रसारित रहेगा । ऐसे प्रतिमान के अन्तर्गत यथार्थ की परिभाषाएं मूलभूत रूप से भिन्न होंगी । पश्चिमी शान्ति सिद्धान्त में 'यथार्थ' पूर्व में भौतिक विश्व के संदर्भ में परिभाषित किया गया जिसमें आर्थिक, सैन्य एवं राजनीतिक प्रश्नों पर केन्द्रीकरण था । समग्रवादी शान्ति प्रतिमान में भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही घटक सम्मिलित है । शान्ति की समग्रवादी संस्कृति (आन्तरिक व बाह्य, स्त्रियोचित व पुरुषोचित, भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ढांचों को संतुलित करती हुई) शान्ति सिद्धान्तों के पूर्णतया भिन्न परिणाम की ओर ले जाएगी जो आन्तरिक विश्व को परिवर्तित करने पर केन्द्रित होगा परन्तु ऐसी चिन्ताओं को आन्तरिक विश्व के समानान्तर व अन्तःनिर्भरता के अन्वेषण से संतुलित नहीं करेगा ।

2.6 शान्ति अध्ययन की दिशा

- 1989, शान्ति की संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन कोटे डि आयोरे में आयोजित हुई इन्टरनेशनल कांग्रेस ऑन पीस इन द माइंड्स ऑफ मैन' में किया गया था । कांग्रेस ने अनुशंसा करी कि 'यूनेस्को जीवन के प्रति सम्मान स्वतंत्रता, न्याय, एकात्मता, सहनशीलता मानवाधिकार, एवं स्त्री पुरुष में समानता जैसे सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित शान्ति संस्कृति का विकास कर शान्ति का नया दर्शन निर्मित करने में सहायता करे ।' इस पहल ने बर्लिन दीवार के पतन एवं शीत युद्ध सम्बन्धित तनावों के विलुप्त हो जाने जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों में आधार स्थापित किया ।

- 1994, यूनेस्को एक्ज्यूकेटिव बोर्ड संयुक्त राष्ट्र के शान्ति स्थापना के प्रयासों में योगदान हेतु शान्ति संस्कृति के विशिष्ट कार्यक्रम के लिए निवेदन करता है । यूनेस्को केन्द्रीय अमरीका, (अल सल्वाडोर), और अफ्रीका (मोजाम्बिक, बुरुण्डी) एवं फिलीपीन्स में प्रारम्भ किए गए युद्धोत्तर शान्ति स्थापना के राष्ट्रीय कार्यक्रम में अपनी सेवाएं देने का प्रस्ताव देता है ।
- 1994, प्रथम इन्टरनैशनल फोरम ऑन द कल्चर ऑफ पीस सन सल्वाडोर में आयोजित
- 1995, यूनेस्को की 28वी सामान्य सभा में शान्ति की संस्कृति की अवधारणा का 1996- 2001 के लिए मध्यावधि रणनीति में आरम्भ(28C/4)
- 1996-2001, शान्ति की संस्कृति की ओर बन्तरअन्तुशासनात्मक परियोजना (द ट्रांसडिसिप्लिनरी प्रोजेक्ट टुवर्डस अ कल्चर ऑफ पीस) 28०इ 74 दस्तावेज के अनुरूप लागू की गई । गैर सरकारी संगठन, संघ, युवा एवं वयस्क, मीडिया नेटवर्क, सामुदायिक रेडियो एवं धार्मिक नेता शान्ति, अहिंसा और सहनशीलता के लिए कार्य करते हुए विश्वव्यापी शान्ति संस्कृति को विकसित करने में सक्रिय भागीदारी करेंगे ।
- 1997,यूनेस्को के शान्ति संस्कृति के अनुभव के महत्व को पहचान कर संयुक्ता राष्ट्र के साधारण सभा ने 52वे सत्र में शान्ति संस्कृति की ओर नामक पृथक कार्यावली की स्थापना की । साधारण सभा ने आर्थिक व सामाजिक परिषद की वर्ष 2000 को शान्ति की संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित करने की अनुशंसा पर प्रतिक्रिया व्यक्त की ।
- 1998, संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा के 53वे सत्र में 2001 से 2010 के दशक को "विश्व के बच्चों के लिए शान्ति संस्कृति एवं अहिंसा का अन्तर्राष्ट्रीय विश्व दशक' घोषित किया गया(A/53/25) । यह नोबल पुरस्कार विजेताओं द्वारा निर्मित प्रस्ताव के आधार पर किया गया । नवम्बर 1998 में ताशकन्द में हुए 155वे सत्र में यूनूस्को के एक्जिक्यूटिव बोर्ड ने शान्ति संस्कृति की ताशकन्द घोषणा और सदस्य देशों में यूनेस्को कार्य को अपनाया ।
- 1999, संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा में 'डिक्लरेशन एण्ड प्रोग्राम ऑफ ऐक्शन ऑन अ कल्चर 'ऑफ पीस (A/53/243)' को अपनाया गया । इसमें आठ कार्यक्षेत्र(नीचे देखिए) परिभाषित किए गए जिन्हें शान्ति की संस्कृति और अहिंसा को जोड़ कर एक सुसंगत दृष्टिकोण का निर्माण किया जाना था ।
- 2000, संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा द्वारा निश्चित किए गए अनुसार शान्ति की संस्कृति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष को यूनेस्को के साथ मिल कर मनाना केन्द्रीय बिन्दु बना ।

2.7 आठ कार्य क्षेत्र

1. बालिकाओं पर विशेष ध्यान देते हुए ,सभी के लिए शिक्षा को बढ़ावा देना; शान्ति की संस्कृति में अन्तर्निष्ठ गुणात्मक मूल्यों, मनोवृत्ति और व्यवहार में विकास करने के लिए पाठ्यक्रमों संशोधन; संघर्ष की रोकथाम और सुलझाना, संवाद, मतैक्य-निर्माण और सक्रिय अहिंसा के लिए प्रशिक्षण ।
2. गरीबी के उन्मूलन को लक्ष्य करते हुए, बच्चों और महिलाओं की विशिष्ट अवश्यकताओं पर केन्द्रित करते हुए, पर्यावरणीय संरक्षण हेतु प्रयास करते हुए, आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने का प्रयास करना ।
3. प्रत्येक स्तर पर सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा और मानवाधिकारों के प्रपत्रों को पूर्णतया लागू करके मानवाधिकरों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना ।
4. लिंग दृष्टिकोण का समाकलन करके और आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक निर्णय लेने में समानता को प्रोत्साहन दे कर; स्त्रियों के विरुद्ध हर प्रकार के विभेदीकरण एवं हिंसा को दूर करके; युद्ध एवं अन्य प्रकार की हिंसा से उत्पन्न हुई संकटकालीन स्थितियों में स्त्रियों को समर्थन और सहायता देकर स्त्री पुरुष में समानता सुनिश्चित करना ।
5. उत्तरदायी नागरिकों को शिक्षित करके; प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों और प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए सक्रियता लाकर; प्रजातंत्र को बनाए रखने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं व प्रक्रियाओं की स्थापना व सुदृढ़ीकरण कर प्रजातांत्रिक परम्पराओं का विकास करना ।
6. सभ्यताओं के मध्य संवाद स्थापित करके; अतिसंवेदनशील समूहों, शरणार्थियों एवं विस्थापितों के पक्ष में कार्य करके; एकात्मता, सहनशीलता और समझ को विकसित करना।
7. शान्ति की संस्कृति के प्रोत्साहन के लिए स्वतंत्र मीडिया का समर्थन जैसे के माध्यम से प्रतिभागीय संवाद और सूचना एवं ज्ञान के मुक्त प्रवाह का समर्थन करना; मीडिया जनसंचार के माध्यमों का प्रभावी उपयोग; मीडिया में हिंसा के मुद्दे को संबोधित करने के उपाय; नई तकनीक के माध्यम से ज्ञान एवं सूचना का आदान प्रदान ।
8. सामान्य एवं सम्पूर्ण निशस्त्रीकरण को प्रोत्साहन जैसे कार्यो के माध्यम से अंन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को बढ़ावा देना; संघर्ष की रोकथाम एवं समाधान में स्त्रियों की अधिक भागीदारी और संघर्ष पश्चात की स्थितियों में शान्ति की संस्कृति को बढ़ावा देना; संघर्ष की स्थितियों में पहल करना; विश्वास निर्माण के उपायों को प्रोत्साहन देना और शान्तिपूर्ण समझौते के लिए वार्ता करने हेतु प्रयास ।

2.8 शान्ति के लिए चुनौतियां

युद्ध और हिंसा मानव समाज के लिए स्वभावगत या अपरिहार्य लक्षण प्रतीत होते हैं यद्यपि उदारता और परामर्श शायद प्रबल हैं । इस प्रवृत्ति से, शान्ति की कामना को मानवीय

अन्तर्सम्बन्धों के विकास के उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है । सपष्टत: शान्ति ही मानवजाति के लिए स्वधारणीय पसन्द है । तथापि, व्यावहारिक रूप से शान्ति ओर न्याय को परस्पर विरोधी कहा जा सकता है । यदि यह माना जाए कि अन्याय को रोकने और न्याय लागू करने का एकमात्र उपाय शक्तिप्रयोग है, तो यह भी मानना होगा कि न्याय संधारण से विद्वेष उत्पन्न होता है, जिसमें शान्ति प्रतिबाधित होती है । इसी प्रकार राजनीतिक स्वार्थो के टकराव को अक्सर युद्ध को न्यायोचित ठहराने के लिए प्रयुक्त किया जाता है । शक्ति एवं लाभ की कामना समूहों को परस्पर विरोधी बनाती है । जब एक पक्ष और फिर दूसरा पक्ष लाभ प्राप्त करने का प्रयास करता है तो सहज ही विरोध बढ़ता है और कभी कभी इसकी परिणति युद्ध में हो जाती है । यह प्रभाव धार्मिक एवं जातीय समूहों में भी देखा जाता है । ऐसे समूह स्वयं को दमित मानते हैं और हिंसा एवं युद्ध को संस्कृति व धर्म की प्रतिरक्षा हेतु कह कर न्यायोचित ठहराया जाता है ।

परमाणु शस्त्रों के संग्रहण जैसे मुद्दे, बिजली, पानी; जीवाश्मीय ईधनों जैसे प्राकृतिक एवं ऊर्जा संसाधनों की कमी; पर्यावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य हानिकारक गैसों का आवश्यकता से अधिक उत्सर्जन; और जनसंख्या में लगातार वृद्धि आदि भी हमारे लिए अत्याधिक चिन्ता का विषय हैं क्योंकि उत्तरजीविता के लिए आवश्यक स्थान एवं अन्य संसाधन अत्यन्त सीमित हैं और उनकी बड़ी मात्रा में आवश्यकता होगी । ऊपर वर्णित तथ्यों एवं कारणों से मनुष्य अपने अस्तित्व मात्र की रक्षा के लिए एक दूसरे से संघर्ष करेंगे ।

2.9 शान्ति के लिए अन्तराष्ट्रीय मत

चीका सिल्विया-ऑल्योम एवं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति संस्थान द्वारा निर्मित 'शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मत' समस्त मनुष्यों व राष्ट्रों के लिए शान्ति को बढ़ावा देने हेतु एक कार्यावली एवं नैतिक संहिता प्रस्तुत करता है । इस मत के अनुसार इस बोध के पश्चात कि स्वतंत्रता व न्याय सबके लिए अन्तर्निहित हैं, शान्ति तब प्राप्त होती है जब लोग चयन करने, जीने ओर दूसरों का सम्मान करने के अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं ।

2.10 सारांश

अभी तक हमने शान्ति की अवधारणाओं/आयामों/दृष्टिकोणों की विभिन्न व्याख्याओं का अध्ययन किया । इनमें कुछ राज्यों के मध्य युद्ध को असंभव बनाने के लिए सांस्कृतिक स्थितियों के निर्माण पर जोर देने जैसे संकीर्ण थे, दृष्टिकोण हैं और कुछ व्यापक दृष्टिकोण जो प्रत्येक संस्कृति का रूपान्तरण ऐसे राज्य में चाहते हैं जो समग्रवादी आन्तरिक शान्ति-बाह्य शान्ति को निष्पाद्य बनाए । यदि हम इस ढांचे को व्यावहारिक रूप से प्रयोग करें तो शान्ति के वैश्विक दृष्टिकोण/संस्कृतियों की रचना करने हेतु कम से कम तीन रणनीतियां अपनाई जा सकती हैं । पहली रणनीति शान्ति के वैश्विक दृष्टिकोण के निर्माण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के महत्व पर बल देती है । संक्षिप्त समय में, अन्तर्राष्ट्रीय समाज की दिशा में वर्तमान प्रवृत्तियां, जिनके अनुसार राज्यों के मध्य युद्ध मान्य नहीं है, को सुदृढ़ किया जा सकता है । दीर्घ काल में ये शान्ति की व्यापक परिभाषाओं जैसे नारीवादी विचार, जो व्यक्तियों

एवं राष्ट्रों के साथ लघुस्तरीय संरचनात्मक हिंसा को समाप्त करने का समर्थन करते हैं, का समर्थन करने हेतु स्थानीय सांस्कृतिक स्थितियों के निर्माण के लिए कार्य करने को सम्मव बनाएंगी । दूसरी रणनीति शान्ति की वैश्विक संस्कृतियों के निर्माण हेतु बॉटम अप दृष्टिकोण पर बल देगी, यह कहते हुए कि व्यक्तियों के रूप हमें स्थानीय, संस्कृतियों को शान्ति की संस्कृति में करने हेतु लघु अवधि के लिए अपने सांस्कृतिक समुदायों व संदर्भों में कार्य करना चाहिए और इस प्रकार अवधि में वैश्विक शान्ति की संस्कृति का निर्माण होगा । तीसरी रणनीति अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं स्थानीय संगठनों एवं समूहों के साथ कार्य करते हुए शान्ति के लिए उपयुक्त सांस्कृतिक स्थितियां बनाकर स्थानीय व वैश्विक दोनों को प्रकार की पहल को संयुक्त करती है । वैश्विक स्तर पर शान्ति को अधिक उपयुक्तता से वृहद् स्तरीय शारीरिक व संरचनात्मक हिंसा को समाप्त करने के अर्थ में परिभाषित किया जा सकता है । स्थानीय स्तर पर शान्ति को पहले व्यक्तिगत एवं लघु स्तरीय शारीरिक व संरचनात्मक हिंसा को समाप्त के अर्थ में और फिर शान्ति के आन्तरिक एवं बाह्य पक्षों का निर्माण करने के अर्थ में परिभाषित किया जा सकता है ।

2.11 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. शान्ति के विभिन्न सिद्धान्तों को समझाइए ।
3. शान्ति अध्ययन का भविष्य क्या है ?
4. शान्ति प्राप्त करने में क्या प्रमुख वैश्विक बाधाएं हैं ?
5. वे कौन से तरीके हैं जिनके द्वारा वैश्विक स्तर पर शान्ति को सुदृढ़ किया जा सकता है ?

2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बराष, डेविड पी., एप्रोचेज़ दु पीस : अ रीडर इन पीस स्टडीज, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रैस, न्यूयॉर्क, 2000
2. दास, समीर कुमार (सम्पादित), पीस प्रोसेस एण्ड पीस अकॉर्ड्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,वॉल्यूम 2, 2005
3. गाल्तुंग, जोहन, पीस बाय पीसफुल मीन्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1996
4. रैनी, लिंडा एण्ड प्रैगर, फोर्सी (सम्पादित), पीस : मीनिंग्स, पॉलिटिक्स, स्ट्रैटिज़ीस प्रैगर लन्दन, 1996
5. समादार रनबीर (सम्पादित), पीस स्टडीज : एन इन्ट्रोडक्शन दु द कॉन्सैप्ट, स्कोप एण्ड थीम्स, सेज पब्लिकेशन्स, न्यू दिल्ली, 2004
6. स्प्रिंग, अर्सुला ओसवॉल्ड (सम्पादित), पीस स्टडीज फ्रॉम अ ग्लोबल पर्सपैक्टिव : ह्यूमन नीड्स इन अ कोऑपरेटिव वर्ल्ड, माध्यम बुक सर्विस, दिल्ली, 2000
7. बोस, अनिमा डायमेनशन्स ऑफ पीस एण्ड नान वायलेन्स. द गाँधीयन पर्सपैक्टिव, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1987

इकाई - 3

शान्ति अध्ययन का दृष्टिकोण - II

इकाई संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 शान्ति अध्ययनों का वर्गीकरण

3.3 शान्ति के बारे में विचार

3.4 शान्ति के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचार

3.5 युद्ध के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की मान्यतायें

- 3.5.1 युद्ध एक राजनैतिक कार्य
- 3.5.2 युद्ध के कारण
- 3.5.3 युद्ध को प्रभावित करने वाले घटक
- 3.5.4 युद्ध के परिणाम
- 3.5.5 युद्ध के नियम
- 3.5.6 युद्ध के गुणधर्म
- 3.5.7 युद्ध का राजनैतिक वर्गीकरण
- 3.5.8 युद्ध का परिवर्तनशील घटना

3.6 शान्ति का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त

- 3.6.1 स्थिर शान्ति की विशेषताएं एवं उसके लिए उपयुक्त परिस्थितियां
- 3.6.2 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की दिशा में प्रयास
- 3.6.3 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व : सिद्धान्त एवं नीति
- 3.6.4 शान्ति और समाजिक विकास
- 3.6.5 शान्ति और मानवता की वैश्विक समस्याएं

3.7 शान्ति के लिए गाँधीवादी विचारधारा

3.8 शान्ति अध्ययन का भविष्य

3.9 सारांश

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने से आप यह जान पायेंगे कि

- शान्ति के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण ।
- शान्ति के बारे में मार्क्सवादी-लेनिनवादी एवं अन्य सिद्धान्तों की अवधारणायें ।
- शान्ति की महत्ता और उसके समाज पर प्रभाव ।

- गांधीजी का शान्ति सिद्धान्त ।
- शान्ति अध्ययनों का महत्व

3.1 प्रस्तावना

यह सामान्य अनुभव की बात है कि सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र मनुष्य के हिंसक और अहिंसक व्यवहारों का अध्ययन करता है ताकि वह सामाजिक विवादों का शान्तिपूर्ण एवं अपेक्षित मानवीय हल ढूंढ सके । दूसरी ओर शान्ति अध्ययन, विवादों को रोकने, तनावों को कम करने और उनका शान्तिपूर्ण माध्यमों द्वारा समाधान करने का एक अंतरानुशासन प्रयास है । इसका लक्ष्य विवादग्रस्त सभी दलों को विजय दिलाना है । यह युद्ध-अध्ययनों से भिन्न है क्योंकि युद्ध अध्ययनों का लक्ष्य होता है हिंसात्मक माध्यमों द्वारा किसी एक या कुछ दलो को विजय दिलवाना नाकि विवादग्रस्त सभी दलों को विजय दिलवाना ।

19वीं शताब्दी के अन्त में स्वीडन में और प्रथम विश्व युद्ध के बाद अन्य स्थानों पर होने वाले आन्दोलनों ने युद्ध के प्रति पश्चिमी देशों के विचारों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया । सन् 1919 मे पेरिस में फांस, ब्रिटेन और अमेरिका के नेता यूरोप का भविष्य तय करने के लिये मिले जिसमें वुड-रॉ विलसन ने शान्ति स्थापित करने के लिये 14 महत्वपूर्ण बिन्दु दिये । इनमें यूरोपीय साम्राज्य के टुकडें कर स्वतंत्र राष्ट्र बनाने और लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना करने जैसे सुझाव भी शामिल थे ।

शान्तिपूर्ण भविष्य को सुनिश्चित करने के लिये उठाये गये ये कदम शान्ति और विवाद-अध्ययनों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । हैनरी मैन ने कहा था कि युद्ध मानवीय सभ्यता जितना पुराना है किन्तु शान्ति एक आधुनिक आविष्कार है ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुका राष्ट्र संघ की स्थापना ने शान्ति और विवाद अध्ययनों को और अधिक उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । उच्च शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न विश्वविद्यालयों ने ऐसे पाठ्यक्रम तैयार किये जो शान्ति और युद्ध सम्बन्धी प्रश्नों का अवलोकन करते हैं । सन् 1948 तक शान्ति अध्ययनों के सम्बन्ध में अमेरिका में कोई पाठ्यक्रम विकसित नही हुआ था किन्तु इसी वर्ष के एक महाविद्यालय में एक शान्ति अध्ययन पाठ्यक्रम शुरू हुआ । वियतनाम युद्ध के परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शान्ति अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न पाठ्यक्रम शुरू किये । जॉन गैल्टंग और जॉन बर्टन जैसे विद्वानों के कार्यो ने इस क्षेत्र में बढती हुई रूचि को परिलक्षित किया है । सन् 1980 के बाद शान्ति-संबन्धी अध्ययनों की संख्या बहुत बढ गयी क्योंकि छात्र परमाणु युद्ध के आसन्न खतरों के अति अधिक सजग हो गये । शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात शान्ति एवं विवाद अध्ययनों ने अपना ध्यान अंतर्राष्ट्रीय विवादों से हटाकर राजनैतिक हिंसा, मानवीय सुरक्षा, लोकतंत्रीकरण, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, लोक कल्याण, विकास और शान्ति स्थापना जैसे जटिल विषयों पर केन्द्रित कर दिया । अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों के प्रसार ने इन अध्ययनों को प्रोत्साहित किया ।

यूरोपीय अकादमिक संदर्भों में सन् 1960 के दशक में सकारात्मक शान्ति पर काफी बहस हुई । सन् 1990 के दशक के मध्य तक अमेरिका में शान्ति अध्ययनों के पाठ्यक्रमों में

काफी परिवर्तन आया यह परिवर्तन नकारात्मक शान्ति के अध्ययन और अध्यापन, हिंसा को रोकने आदि से परिवर्तित होकर सकारात्मक शान्ति और परिस्थितिजन्य हिंसा के कारणों और परिस्थितियों को समाप्त करने की ओर हुआ इसके परिणामस्वरूप इस अध्ययन का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया ।

3.2 शान्ति अध्ययनों का वर्गीकरण

1. **अन्तरानुशासनत्मक शान्ति अध्ययन** - इसके अंतर्गत राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र आते हैं । आलोचनात्मक सिद्धान्त भी शान्ति और विवाद अध्ययनों में विस्तृत रूप से उपयोगी हैं ।
2. **बहु-स्तरीय शान्ति अध्ययन** - यह शान्ति-अध्ययन, अंतर्वेयक्तिक शान्ति, व्यक्तियों, पड़ोसियों,जातीय समूहों, राज्यों एवं सभ्यताओं के बीच शान्ति का अध्ययन करता है ।
3. **बहु-सांस्कृतिक शान्ति अध्ययन** - गाँधीजी का शान्ति-अध्ययनों में एक महत्वपूर्ण योगदान है । किन्तु वास्तविक बहु-सांस्कृतिवाद अभी भी पश्चिमी देशों तक ही सीमित है।
4. **विश्लेषणात्मक एवं सैद्धान्तिक शान्ति अध्ययन** - एक सैद्धान्तिक अध्ययन के रूप में शान्ति अध्ययन मूल्यों पर आधारित होता है ।
5. **सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक शान्ति अध्ययन** - निःशस्त्रीकरण पर लम्बे समय से चली आ रही बहस, शस्त्र उत्पादन, व्यापार और उनके राजनैतिक प्रभावों का परीक्षण करने, उनका वर्गीकरण और विश्लेषण करने के कई प्रयास हुए हैं । युद्ध के आर्थिक पहलुओं पर भी काफी विचार हुआ है ।

शान्ति और विवाद अध्ययन अब सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत सुदृढ़ रूप से स्थापित हो चुके हैं । शान्ति और विवाद अध्ययन से सम्बंधित कई पत्रिकायें महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों विभाग, शान्ति अनुसंधान संस्थान, गोश्ठियां आदि शान्ति और विवाद अध्ययन की उपयोगिता बताते है ।

3.3 शान्ति के बारे में विचार

गाल्तुंग का नकारात्मक और सकारात्मक शान्ति का सिद्धान्त आज विस्तृत रूप से उपयोगी है । नकारात्मक शान्ति का अर्थ है प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थिति । सकारात्मक शान्ति का अर्थ है अप्रत्यक्ष और ढांचागत हिंसा की अनुपस्थिति । इस सिद्धान्त को विभिन्न शोधकर्ता अपनाते है । शान्ति अध्ययन को उन्नत बनाने के लिये विभिन्न विचार, मॉडल और शान्ति स्थापित करने के उपाय सुझाये गये हैं ।

- शान्ति एक प्राकृतिक सामाजिक अवस्था है नाकि युद्ध । शान्ति संबन्धी शोधकर्ताओं की मान्यता है कि विवादग्रस्त दलों को पर्याप्त जानकारी देकर युद्ध और विवाद को टाला जा सकता है ।
- हिंसा पापपूर्ण और कौशल रहित है जबकि अहिंसा कौशलपूर्ण एवं गुणवान है इस विचार को बढ़ावा दिया जाना चाहिये । अधिकांश धार्मिक परम्पराओं का यही विश्वास है ।

- तीसरा विचार शान्तिवाद का विचार है इसकी मान्यता है कि मानव व्यवहार में शान्ति एक अत्यंत महत्वपूर्ण शक्ति है ।
- एक अन्य विचार है कि शान्ति स्थापित करने के लिये विभिन्न माध्यम संभव हैं ।
- विवाद का त्रिभुज : जॉन गाल्तुंग का विवाद का त्रिभुज सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि शान्ति को स्थापित करने का सबसे अच्छा तरीका है कि उसके विपरीत हिंसा को परिभाषित किया जाये । इसका सैद्वान्तिक लक्ष्य है हिंसा को रोकना, उसका प्रबंधन करना, उसे सीमाबद्ध करना और उस पर विजय प्राप्त करना ।
- प्रत्यक्ष हिंसा जैसे प्रत्यक्ष, आक्रमण, नरसंहार आदि ।
- ढांचागत हिंसा, दूर किये जा सकने वाले कारणों के कारण उत्पन्न हिंसा जैसे कुपोषण के कारण मृत्यु । ढांचागत हिंसा एक अप्रत्यक्ष हिंसा है जो अन्यायपूर्ण ढांचे के कारण उत्पन्न होती है और इसे ईश्वरीय इच्छा नही माना जा सकता ।
- सांस्कृतिक हिंसा वह हिंसा है जो व्यक्ति या व्यक्तियों को प्रत्यक्ष अथवा ढांचागत हिंसा की ओर ध्यान नहीं देने के कारण होती है जैसे कोई व्यक्ति बेघर लोगों के प्रति असंवेदनशील हो सकता है और यहाँ तक कि उन्हे बाहर निकालने और उनकी हत्या करने के बारे मे सोच सकता है ।

3.4 शान्ति के बारे में मार्क्सवादी- लेनिनवादी विचार

युद्ध के मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त ने सोवियत रूस के सैन्य सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को आधार प्रदान किया । कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंजिलीस ने इन सिद्धान्तों को विकसित किया और सोवियत संघ के प्रथम नेता ब्लादिमिर आई.लेनिन ने विस्तार प्रदान किया । इस सिद्वान्त का आधार यह है कि युद्ध राजनीति की निरंतरता है और युद्ध का लक्ष्य है सैन्य विजय सुनिश्चित करना। सोवियत संघ के परमाणु हथियार प्राप्त करते ही सोवियत संघ में यह बहस शुरू हो गई कि क्या परमाणु युद्ध के विनाशकारी प्रभावों को भी राजनीति की निरंतरता माना जा सकता है ? सिद्धान्तवादी इस बात पर बहस कर रहे थे कि क्या परमाणु युद्ध समाजवाद के हित में है अथवा मार्क्सवादी- लेनिनवादी नीति को परमाणु युद्ध को इससे अलग रखना चाहिये ।

सन् 1950 के दशक से ही यह बहस चालू हो गई । परमाणु युद्ध को सोवियत संघ की नीति के रूप में रखने पर दो अलग-अलग प्रकार के तर्क दिये जाने लगे । कुछ नागरिक और सैन्य नेताओं का विश्वास था कि चूंकि परमाणु युद्ध अत्यंत विनाशकारी है अत: इसे कभी लड़ा ही नहीं जाना चाहिए । इसके विपरीत 'मार्क्सिज्म लेनिनिज्म ऑन वार एण्ड द आर्मी' जिसके 1906 से छ: संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं के लेखकों का विश्वास है कि परमाणु-युद्ध को राजनीति की निरंतरता माना जाना चाहिये और उन्होंने परमाणु शस्त्रों के उपयोग को उचित ठहराया है ।

3.5 युद्ध के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त की मान्यतायें

युद्ध का मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त युद्ध सम्बंधी विचारों की वह प्रणाली है जिसे सोवियत संघ और अन्य सामाजवादी देशों ने अपनाया । इस सिद्वान्त के अन्तर्गत युद्ध संबन्धी विचारों की व्याख्या, उसके कारणों एवं परिणामों, इतिहास में युद्ध की भूमिका और अन्य सामाजिक घटनायें आती है ।

युद्ध का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

3.5.1 युद्ध एक राजनैतिक कार्य

यह सिद्वान्त इस मान्यता पर आधारित है कि युद्ध एक राजनैतिक कार्य है । युद्ध को अन्य प्रकार के विवादों से सर्वथा भिन्न माना गया है । इसके अन्तर्गत युद्ध को एक सामाजिक माना गया है । दूसरा, युद्ध को मानव विवादों के मनोविज्ञान और व्यक्तियों के आपसी विवादों से भी भिन्न माना गया है । तीसरा, युद्ध हमेशा वर्गो के बीच राजनैतिक विवादों के कारण लड़ा जाता है जब वर्गो या वर्ग आधारित राज्यों अथवा राष्ट्रों के बीच विरोधाभास एवं तनाव बढ़ जाता है तो समस्याओं का हल निकालने के लिये युद्ध का सहारा लिया जाता है । इस प्रकार युद्ध सामाजिक विवाद का प्रकटीकरण है । इसे समस्याओं के समाधान का उपाय माना जाता है और विभिन्न वर्गो को अपने हितों की रक्षा करने में सहायक होता है । नीतियाँ घरेलू या अंतर्राष्ट्रीय युद्धों का कारण हो सकती हैं । सभी युद्ध वर्गो के आपसी मतभेदों के फलस्वरूप होते हैं ।. युद्धों में वर्ग-हित प्रत्यक्ष दिखाई देता है जैसे गृह-युद्ध या समाजवादी एवं पूंजीवादी राज्यों के बीच युद्ध ।

3.5.2 युद्ध के कारण

युद्ध के मुख्यत: तीन कारण माने गये हैं प्रथम, इतिहास में सभी युद्ध उत्पादन के माध्यमों पर अधिकार स्थापित करने की इच्छा के कारण होते है । इसके लिये सैन्य शक्ति और युद्ध की अवश्यकता होती है ताकि सामाजिक प्रणालियों में अपने शासन को कायम रखा जा सके और अपने आर्थिक हितों की रक्षा की जा सके । द्वितीय, प्रत्येक सामाजिक- आर्थिक ढांचे में घरेलू अंतर्राष्ट्रीय चरित्र का विरोधाभास होता है, जिसके परिणामस्वरूप युद्ध होते हैं अन्त में हर युद्ध के अपने विरोधाभास एवं विवाद होते हैं ।

3.5.3 युद्ध को प्रभावित करने वाले घटक

युद्ध को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटक मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के महत्वपूर्ण अंग रहे है । सन् 1942 में स्टालिन ने युद्ध की प्रगति एवं परिणामों पर अपने पांच बिन्दु दिये :

- विशिष्ट वर्ग का स्थायित्व ।
- सेना का आत्मविश्वास ।
- सेना का आकार और उसका संगठन ।
- सेना का शस्त्रीकरण ।

– सेनाध्यक्षों की सांगठनिक योग्यतायें ।

स्टालिन की मृत्यु के बाद उनके द्वारा दिये गये पांच बिन्दुओं को विभिन्न तरीकों से दर्शाया गया और अन्त में उन्हे चार प्रमुख घटकों से विस्थापित कर दिया गया ।

– आर्थिक
– नैतिक और राजनैतिक
– राजनैतिक
– सैन्य क्षमता

आर्थिक क्षमता के अन्तर्गत यह विचार आता है कि युद्ध लडने के लिये आवश्यक आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता संभव है अथवा नहीं ।

सैन्य क्षमता का अर्थ है युद्ध और शान्ति दोनों कालों में सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाये ।

3.5.4 युद्ध के परिणाम

विश्लेषणात्मक अध्ययन में तीन प्रमुख विचार सामने आते हैं :

– युद्ध की ऐतिहासिक भूमिका जो अपने औचित्य के आधार पर सुधारात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक हो सकती है ।
– किसी युद्ध का व्यक्तियों पर पड़ने वाला प्रभाव ।
– लडे गये युद्धों के परिणाम : दोनों विश्वयुद्धों ने पूंजीवादी प्रणाली को कमजोर किया और समाजवादी क्रांति के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार कीं । युद्ध के परिणाम संबन्धी विचारों को विभिन्न प्रकार से विभक्त किया गया है
  1) आंतरिक एवं अंतर्राष्ट्रीय ।
  2) आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, आदर्शवादी, मनोवैज्ञानिक और जनसंख्या सम्बन्धी।
  3) प्रत्यक्ष और दूरगामी परिणाम : युद्ध के प्रत्यक्ष परिणामों के विश्लेषण में निम्न पहलुओं को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है ।
– विनाश एवं क्षति ।
– युद्ध के लक्ष्यों की प्राप्ति ।
– समाज के समस्त सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक ढांचे में परिवर्तन ।

3.5.5 युद्ध के नियम

मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के अनुसार युद्ध के नियम विभिन्न परिस्थतियों में भिन्न हो सकते है । ये नियम युद्ध की प्रकृति और अन्य घटकों पर आधारित होते हैं । यह आवश्यक नही है कि परंपरागत नियम ही अपनाये जायें । ये नियम वैयक्तिक ना होकर सार्वजनिक हित के लिये होते हैं व्यक्तिगत इच्छाओं और आकांक्षाओं से परे होते हैं । इसके उद्देश्य निम्न है :

– अंतर्राष्ट्रीय और आंतरिक स्थिति ।
– जनसंख्या का आकार ।
– तकनीक विज्ञान और आर्थिक स्थिति का स्तर ।

- क्षेत्रीय भौगोलिक परिस्थितियाँ ।
- समाजिक विकास के नियम ।
- सैन्य कौशल का स्तर ।
- सैन्य शक्ति का आकार और गुणवत्ता ।

3.5.6 युद्ध के गुणधर्म

प्रथमत: युद्ध का राजनैतिक चरित्र उसकी सामाजिक सामाजिक शक्तियों का परिचायक । ये शक्तियाँ युद्ध लड़ती हैं एवं राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं । इसके बाद ऐतिहासिक गुणधर्म हैं जो इतिहास में सामाजिक उन्नति का आकलन करते हैं और युद्ध को सुधारात्मक तथा बताते हैं और अंत में युद्ध के नैतिक आकलन में उसके औचित्य का आकलन होता है । युद्ध के का निर्धारण युद्धरत सामाजिक शक्तियों एवं उनके लक्ष्यों से होता है उचित युद्ध सुधारात्मक माने है और अनुचित युद्ध प्रतिक्रियावादी ।

3.5.7 युद्ध का राजनैतिक वर्गीकरण

युद्ध का मार्क्सवादी राजनैतिक वर्गीकरण मार्क्स और एंजिल की पुस्तकों किया जा सकता है । उन्होंने युद्ध को दो प्रकारों में बांटा है :

- **रक्षात्मक युद्ध :** अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये, विदेशी शासकों से मुक्ति के लिये और एक स्वतंत्र राष्ट्र बनाने के लिये किये गये युद्ध रक्षात्मक युद्ध माने जाते है ।
- **आक्रामक युद्ध** : इनका उद्देश्य दूसरे क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त करना और वहाँ के लोगों को यातनायें देना है ।

3.5.8 युद्ध एक परिवर्तनशील घटना

युद्ध के मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त की एक प्रमुख अवधारणा यह है कि एक परिवर्तनशील घटना है । एक समय ऐसा था जब कोई युद्ध नहीं होते थे और एक समय ऐसा आयेगा कोई युद्ध नही होगा । प्राचीन समाज में युद्ध नहीं होते थे उस समय व्यक्तियों में आपसी झगडे जरूर होते । उस समय का आर्थिक ढांचा जानवरों के शिकार पर आधारित था । उस समय भी सशस्त्र संघर्ष होते थे किन्तु ये संघर्ष किसी राजनैतिक रणनीति से प्रेरित ना होकर स्वंय उत्पन्न होते थे और समाप्त होते थे । मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त वर्ग-हित को प्राथमिकता देता है जो प्राचीन समय में विद्यमान नही था । किसी संघर्ष में पूरी जनजाति कूद पड़ती थी । उस समय कोई ऐसा संगठन नही था जो संघर्ष को रोक सके, अत: यह माना जाना चाहिये कि प्रथम युद्ध का जन्म प्रथम राज्य की स्थापना के साथ हुआ होगा । उस समय राज्य की सामाजिक आर्थिक नींव दास-प्रथा पर आधारित थी और युद्ध दास बनाने का एक माध्यम बन गया । ये दास उत्पादन सम्बन्धी सभी कार्य करते थे । इस प्रकार के समाजों में कुछ वर्गो का शोषण एवं दोहन होता था । यदि दोहन एवं शोषण की अवधारणा समाप्त हो जाये तो युद्ध स्वत: समाप्त हो जायेगें कहने का तात्पर्य है कि सारे विश्व के साम्यवादी बन जाने पर युद्ध स्वत: ही समाप्त हो जायेगें । सभी राष्ट्र समान रूप से सम्प्रभु होंगे और उन्हे सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास के समान अवसर उपलब्ध होंगे ।

3.6 शान्ति का मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त

3.6.1 स्थिर शान्ति की विशेषतायें एवं उसके लिये उपयुक्त परिस्थितियाँ

स्थिर शान्ति निम्न विशेषताओं एवं दशाओं से जानी जाती है :

- स्थिर शान्ति लोकतांत्रिक न्यायपूर्ण शान्ति है । अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली में इसके लिये उपयुक्त परिस्थितियों के सिद्वान्त सोवियत संघ के संविधान में अभिव्यक्त हैं । समस्त राज्यों की सम्प्रभुता एवं समानता, सशस्त्र हिंसा का त्याग, राज्यों की सीमाओं पर किसी प्रकार का अतिक्रमण ना होना, समस्त विवादों का शान्तिपूर्ण हल, दूसरे राज्यों के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप, मानवाधिकारों एवं राज्य के विकास के लिये उसके द्वारा स्थापित व्यवस्था का सम्मान, राज्यों के बीच आपसी सहयोग और अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का पालन ये सभी शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्वान्त है ।
- स्थिर शान्ति आसानी से भंग नहीं होती वास्तविक विश्व-शांति क्षेत्रीय संघर्षों के साथ नही चल सकती है इतिहास से यह पता चलता है कि विश्व युद्धों से अधिक मृत्यु स्थानीय युद्धों में हुई है । द्वितीय, तकनीकी विकास ने स्थानीय युद्धों में प्रयुक्त होने वाले अस्त्र - शस्त्रों को आण्विक अस्त्रों की तरह विनाशकारी बना दिया है । तृतीय, स्थानीय युद्ध आसानी से विश्वयुद्ध का रूप ले सकते हैं । यद्यपि विश्व शान्ति विभिन्न क्षेत्रों में शान्ति स्थापना के बिना संभव नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्व शान्ति विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित शान्ति ही है । यह वैश्विक विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान पर विश्वास करती है ।
- स्थिर शान्ति अंतर्राज्यीय आर्थिक, सांस्कृतिक और विज्ञान और तकनीकी सहयोग को बढ़ावा देती है । राजनैतिक दृष्टि से इसका अर्थ है शस्त्रों की दौड समाप्त करना और निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास करना । वास्तविक शान्ति सम्पूर्ण विश्व पर समाजवाद की विजय से ही संभव है मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त में विश्वास करने वाले लोगों का यही मत है शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व समस्याओं के अंतिम समाधान का प्रयास करता है । स्थिर शान्ति पूंजीवादी देशों की आंतरिक शान्ति नहीं है । सकारात्मक शान्ति के विचार से राज्यों के बीच हिंसा नही होनी चाहिए किन्तु वर्गो के बीच संघर्ष संभव है ।

सकारात्मक शान्ति आंतरिक वर्ग संघर्ष के लिय उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं क्योंकि यह शोषक वर्ग से शोषण के विभिन्न माध्यम छीन लेती है । ऐसा माना जाता है कि सहयोग की भावना का विकास वर्ग विभेद को समाप्त नहीं करता ।

3.6.2 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की दिशा में प्रयास

साम्यवादी आन्दोलन के प्रारंभ में उसके नेता शान्ति के लिये संघर्ष को समाजवादी क्रांति के लिये संघर्ष की तुलना में कम महत्व देते थे और वे शान्ति को सिद्धान्त एवं व्यवहार का स्वतंत्र एवं आधारभूत बिन्दु नही मानते थे उनका विश्वास था कि समाजवाद और साम्यवाद युद्ध के कारणों को समाप्त कर देंगे और मानव जाति को सैन्यीकरण. शस्त्रों की दौड और विनाशकारी

सशस्त्र संघर्षों से मुक्ति दिलाकर सदैव के लिय शान्ति स्थापित कर देंगे । पूंजीवाद में स्थायी शान्ति प्राप्त करना संभव नही है जबकि समाजवाद में यह संभव है इसी कारण एक ऐसे विश्व में जहाँ पूंजीवाद और समाजवाद दोनो का अस्तित्व है अत: शान्ति के बारे में कोई विचार विमर्श नही हुआ । समाजवादियों के लिये कांति का अर्थ था सभी विकसित औद्योगिक समाजों पर सम्पूर्ण विजय । मार्क्स और एंजल ने अपने समय उन युद्धों की निंदा की जिन्हें वे आक्रामक और प्रतिक्रियावादी मानते थे उन्होंने युद्ध की तैयारियों के विरोध में संघर्ष का समर्थन किया । सन् 1890 के दशक के प्रारम्भ में एंजल ने लिखा कि समाजवादी और लोकतांत्रिक दलों को शान्तिपूर्ण माध्यमों द्वारा विजय प्राप्त करनी चाहिए इसके बावजूद मार्क्सवाद के स्थापनाकर्ताओं का मानना था कि सामान्य दशाओं में शान्ति के लिये संघर्ष का कोई अर्थ नही था कुछ लोगों द्वारा युद्ध के खतरे को समाप्त करने और निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास करने के आहवान को व्यर्थ बताया । मार्क्स ने भी इन सारे प्रयासों की आलोचना की और कहा कि मात्र समाजवादी कांति ही हमें शान्ति और निशस्त्रीकरण की ओर ले जा सकती है अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अन्त में मार्क्स ने पूंजीवाद के साथ सहअस्तित्व के सिद्वान्त का सहारा लिया यही सिद्वान्त आगे चलकर सह अस्तित्व का सिद्वान्त बना जो शान्ति के मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्वान्त का आधार है ।

3.6.3 शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व :सिद्धान्त एवं नीति

मार्क्सवादी- लेनिनवादी सिद्वान्त में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिये अपनाये जाने वाले कुछ सिद्वान्त ही नही था । इसका अर्थ था लम्बे समय के लिये सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक प्रणालियों का एक साथ अस्तित्व में बने रहना । शान्ति स्थापना की दिशा यह पहला कदम था और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढाने के लिये एक महत्वपूर्ण प्रयास ।

शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व विश्व इतिहास में अपनी तरह का पहला विचार । मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा में यह सामाजिक विकास की दिशा में एक पड़ाव मात्र है । वास्तव में शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व इससे कहीं ज्यादा व्यापक है । यह समाजवादी राज्यों की ऐसी नीति थी जिसके माध्यम से वे अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की स्थापना करते थे और अपने निश्चित राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास करते थे ।

3.6.4 शान्ति और सामाजिक विकास

मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्वान्त शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व का समर्थन मात्र इसलिये नही करता क्योकि युद्धों के परिणामत: मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का भारी विनाश होता है । बल्कि इसलिये भी करता है क्योकि मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारों के अनुसार सामाजिक विकास के नियमों का उपयोग शान्तिकाल में ही संभव है जिससे समाजवाद और साम्यवाद को आगे बढ़ाने का अवसर मिलता है ।

समाजवादी देशों के संदर्भ में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व समाज की आर्थिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक है । इसी प्रकार यह समाजवादी लोकतंत्र, नागरिक आधिकार और स्वतंत्रताओं के लिए भी आवश्यक है । इसके विपरीत अंतर्राष्ट्रीय तनाव, पूंजीवाद

के खतरों, आक्रमणों और लगातार बढते हुए आर्थिक और राजनैतिक दबाव के कारण समाजवादी शासन अपने संसाधनों का बड़ा भाग सुरक्षा में खर्च करते है । इसका आर्थिक विकास और सामाजिक जीवन के पहलुओं पर विपरीत प्रभाव पडता है । जिसके कारण समाजवाद का स्वयं का विकास बाधित होता है ।

नव स्वतंत्र राज्यों' के संदर्भ में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और समाजवादी राज्यों के साथ आर्थिक सहयोग उनकी पूंजीवादी दबावों का विरोध करने की क्षमता को बढ़ाता है । परिणामस्वरूप वे अपनी उचित शर्तों पर व्यापार कर पाते हैं और नई तकनीकी और आधुनिक औद्योगिकी प्राप्त करने का प्रयास भी करते है ताकि आर्थिक और सांस्कृतिक दूरियाँ कम हो सके ।

3.6.5 शान्ति और मानवता की वैश्विक समस्यायें

शान्ति मात्र सामाजिक विरोधाभासों का समाधान कर सामाजिक उन्नति को ही सुनिश्चित नही करती बल्कि यह मानवता की सभी गंभीर समस्याओं और आवश्यकताओं के समाधान का भी पहला कदम है । इन समस्याओं में पहली समस्या है मानव-जीवन और बढती हुई जनसंख्या के लिये भौतिक संसाधन सुनिश्चित करना । यदि शान्ति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग निरंतर बढते रहते हैं तो संयुक्ता प्रयासों द्वारा ऊर्जा के नवीन और गैर परंपरागत स्त्रोतों की भी खोज की जा सकती है। मानवता की दूसरी बडी आवश्यकता है आर्थिक रूप से विकसित देशों और अविकसित एवं विकासशील देशों के बीच के अंतर को समाप्त करना ।

मार्क्सवादी लेनिनवादीयों का मानना है कि यदि कुछ शर्तें पूरी की जाती है तो यह समस्या भी सुलझाई जा सकती है पहला, विकासशील देशों के संसाधनों का आर्थिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए उपयोग हो । यह तीव्र सामाजिक परिवर्तन पर निर्भर करता है जो कुछ आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को स्थापित करने का प्रयत्न करता हो । इसके साथ ही सामाजिक न्याय पर आधारित कुछ ढांचागत परिवर्तन भी आवश्यक है । तीसरी शर्त यह है कि एक ऐसी न्यायपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो जो अल्पविकसित राज्यों के आर्थिक उत्थान में मदद करे ।

यह सारी मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा मूल रूप से सोवियत संघ के विचारकों की है जिनका लक्ष्य यह दिखाना है कि -

- मानवता की कोई भी गंभीर आवश्यकता भविष्य में किसी विनाशकारी परिस्थिति का कारण नही बन सकती ।
- कोई भी समस्या हमें विश्वयुद्ध की ओर नही ले जा सकती ।
- यदि सक्रिय अंतर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित हो जाये तो इनका आशिक रूप से और कुछ समय के लिये समाधान संभव है ।
- यह सभी आवश्यकतायें सम्पूर्ण रूप से समाजवादी और साम्यवादी विश्व में ही संतुष्ट हो सकती है ।

मनुष्य की आवश्यकतायें उसे युद्ध की ओर धकेल सकती हैं और यही बिन्दु शान्ति की आवश्यकता को रेखांकित करता है ।

3.7 शान्ति के लिये गाँधीवादी विचारधारा

गाँधी और उनकी तरह मार्टिन लूथर किंग और अन्य कई लोगों ने अहिंसा के सिद्वान्त के महत्व को समझा और उसकी आवश्यकता पर बल दिया । उन्होंने बताया कि साधन और साध्य को अलग नही किया जा सकता । वे दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं । सामाजिक परिवर्तन के लिये उचित माध्यमों का चुनाव करना भी उतना ही आवश्यक है जितना सामाजिक उन्नति के लक्ष्य का प्राप्त करना । गाँधीजी के अनुसार मानव समाज में हिंसा के द्वारा शान्ति स्थापित नही हो सकती और ना ही सशस्त्र संघर्षों के बीच लोकतंत्र सुरक्षित रह सकता है । शान्ति को न्याय से अलग नही किया जा सकता । यहाँ न्याय का अर्थ है शोषण की अनुपस्थिति । चाहे यह शोषण अप्रत्यक्ष रूप से ढांचागत असमानताओं के कारण हो रहा हो अथवा प्रत्यक्ष रूप से शस्त्र प्रयोग द्वारा । दूसरे शब्दों में शान्ति का अर्थ है हिंसा की अनुपस्थिति । हिंसा मानवीय आवश्यकताओं का अपमान है । वास्तविक शान्ति, शान्तिपूर्ण (न्यायपूर्ण एवं अहिंसात्मक) माध्यमों द्वारा ही संभव है । इन माध्यमों का लक्ष्य है उन परिस्थितियों का निवारण जो मनुष्य को तुच्छ बनाते हैं और बदले की भावना (जो मानव जीवन को सस्ता बनाती है) के चक्रव्यूह को तोडना है । गाँधीजी मानते थे कि सच्ची और स्थायी शान्ति तब तक संभव नही है जब तक लोगों को समान अवसर उपलब्ध नही होतें । इस संदर्भ में उन्होंने कहा था :

"आपके पास एक अच्छी सामाजिक प्रणाली तब तक नहीं हो सकती जब तक आप स्वंय को राजनैतिक पैमाने पर कमतर पाते है और आप राजनैतिक अधिकारों के उपयोग के लिये तब तक तैयार नही होते है जब तक आपकी सामाजिक प्रणाली बुद्धि और न्याय पर आधारित ना हो । आप की आर्थिक प्रणाली भी तब तक अच्छी नहीं हो सकती जब तक आपकी सामाजिक व्यवस्थायें, मापदण्डों के अनुरूप ना हों । अगर आपके धार्मिक विचार निम्न श्रेणी के है तो आप महिलाओं के लिये समान स्थान सुनिश्चित नही कर सकते । हम भारत के लोगों को तब तक स्वतंत्र नही कर सकते जब तक हम उन्हें समान अवसर प्रदान ना करें"

जब हम गाँधीजी की दृष्टि से शान्ति की बात करते हैं तो हमें गाँधीजी के दर्शन पर ध्यान देना होगा। जॉन रस्किन के अनुसार उनके जीवन दर्शन के तीन प्रमुख सिद्वान्त इस प्रकार :

- शान्ति और लोकतंत्र के लिये संघर्ष का लक्ष्य है सार्वजनिक हित, ना कि सिर्फ बहु संख्यकों का हित।
- हमें शान्ति स्थापित करने एवं उसे बनाये रखने के लिये त्याग करने की भी आवश्यकता है।
- मात्र राजनैतिक शक्ति ही शान्ति और लोकतंत्र की स्थापना नही कर सकती । हमें इसके लिये लगातार कार्य करते रहना होगा ।

गाँधीजी जब दक्षिण अफ्रीका गये तो उन्होंने देखा कि लोग बुरे-व्यवहार के सामने हार मान चुके थे । अपने नियोक्ताओं के बुरे व्यवहार के कारण कई बंधुआ मजदूर या तो भाग जाते थे या आत्महत्या कर लेते थे । भारत में भी खेतिहर मजदूर इसी प्रकार का व्यवहार सहन

करने के लिए अपने आप को अभिशप्त मानते थे और वे इसे अपना प्रारब्ध मान चुके थे । गाँधीजी ने उनमें गरिमा की भावना का विकास किया और उन्हे उचित दिशा देने का प्रयत्न किया । उन्होंने उनकी आत्मा को जगाकर उनके अधिकारों के प्रति सजग बनाया ओर शोषण से लड़ने के लिये प्रेरित किया । गाँधीजी के इन चुनौतीपूर्ण अभियानों के समान ही दक्षिण अफ्रीका और भारत में स्वतंत्रता के लिये संघर्षों के प्रति वही प्रतिक्रिया दिखाई दी । हजारों लोग अपनी दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये सडकों पर उतर आये । यह विचार करने योग्य बात है कि दक्षिण अफ्रीका में इस प्रकार के कार्यो को हिंसक बताया गया जबकि वहां जारी शोषण और हजारों लोगों की मृत्यु पर बहुत कम प्रतिक्रिया हुई। हम देखते हैं कि विभिन्न दल शान्ति-समझौते के लिये तत्पर होते है किन्तु इनमें बहुत सी मूलभूत समस्याओं का समाधान नही होता ।

आज जब हम 21 वीं सदी में पहुंच चुके हैं तो ऐसी अवस्था में सम्पूर्ण विश्व में शान्ति की अत्यधिक आवश्यकता है । अत: गाँधीजी का जीवन और उनका दर्शन आज और अधिक प्रासंगिक एवं सामयिक हो गया है । पिछले विश्व युद्ध के समय गाँधीजी ने इग्लैण्ड को सलाह दी कि वे शस्त्रों से हिटलर का मुकाबला ना करें । उन्होंने कहा इसका परिणाम यह होगा कि हिटलर की सेना इग्लैण्ड में प्रवेश कर जायेगी । वह उन्हें इंग्लैण्ड में प्रवेश करने दें किन्तु हर इंग्लैण्डवासी को आक्रामक सेना के साथ किसी प्रकार का व्यवहार नही रखना होगा । गाँधीजी का मानना था कि कोई भी शासक जनता के सहयोग के बिना लम्बे समय शासन नहीं कर सकता । उन्होंने कहा कि इसके लिये लोगों को स्वयं को व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा के लिए तैयार करना होगा ।

गाँधीजी ने भारत के विकास के लिये इन लक्ष्यों को निर्धारित किया और ये लक्ष्य आज भी उतने व्यावहारिक हैं । जब हम इन लक्ष्यों को प्राप्त कर लेंगे तभी हम कह सकते है कि हमने अपने देश में शान्ति स्थापित कर ली है । यह वह शान्ति होगी जिसके लिये गाँधीजी जीये, जिसके लिये गाँधीजी ने कार्य किया और जिसके लिये गाँधीजी ने स्वयं का बलिदान दिया ।

3.8 शान्ति-अध्ययन का भविष्य

शान्ति और विवाद अध्ययनों पर विभिन्न क्षेत्रों तथा सामाजिक विज्ञानों के विद्वानों के बीच एक आम सहमति बन चुकी है । विश्व के कई बडे प्रभावषाली नीति-निर्माता भी इस अध्ययन के महत्व को समझ चुके है । शान्ति और विवाद अध्ययन आज सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न संस्थानों में पढाया जाता है । शान्ति और विवाद अध्ययन के पाठ्यक्रम वाले विश्वविद्यालयों की संख्या की ठीक गणना संभव नही है क्योकि ये विभिन्न विभागों में विभिन्न नामों से पढाये जाते हैं : "इंटरनैशनल हेरॉल्ड ट्रिब्यून" सन् 2008 की रिपोर्ट में बताया गया है कि विश्व में शान्ति और विवाद अध्ययन पर शिक्षण एवं शोध पर 400 से ज्यादा कार्यक्रम चलाये जा रहे है । इनमें से प्रमुख संस्थान इस प्रकार है । "यूनाइटेड वर्ल्ड कॉलेजेज, पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट द अमेरिकन यूनिवर्सिटी, यूनिवर्सिटीज ऑफ ब्रैडफोर्ड, कोस्टरिका जॉर्ज मैसन, लण्ड, मिशीगन, नोटर डेम क्वींसलैण्ड, उप्पसाला, वर्जीनिया और विस्कनसिन" ।

रोटरी फाउन्डेशन और टोक्यों विश्वविद्यालय विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय शिक्षण और शोध कार्यक्रमों का सहयोग करते हैं । अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम "यूनिवर्सिटीज ऑफ हिरोशिमा (जापान), किंग्स कॉलेज (लन्दन), साबांसी (इस्टम्बूल), मोरबर्ग (जर्मनी), सांइसेज पीओ.(पेरिस), ओटेगो (न्यूज़ीलैण्ड), सैन्ट एन्ड्रयूज और योर्क (यू.के.) में चलाये जाते हैं ।

ऐसे कार्यक्रम और शोध विषय अब लगभग सभी विकसित, विकासशील और पिछड़े देशों में उपलब्ध है । यद्यपि इमान्युएल कांट जैसे विचारकों ने शान्ति अध्ययनों के महत्व को पूर्व में ही रेखांकित कर दिया था किन्तु 1950 और 1960 के दशकों में अध्ययन के एक स्वतंत्र और विकासशील क्षेत्र के रूप में इसकी स्थापना हुई । तभी से यह निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है ।

3.9 सारांश

राजनैतिक शक्ति शान्ति स्थापना की दिशा में एक पहला कदम है । हम सबकी यह जिम्मेदारी है कि हम परिस्थितियों को बदलने का प्रयास करें । आज हमें आवश्यकता है कि गाँधीजी और उनके समान व्यक्तियों के समान सिद्धान्तों को पोषित करें ताकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित हो सके । हमें देखना होगा कि संसाधनों का समान रूप से बंटवारा हो । हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि विश्व में व्यक्ति अपना स्थान और उसका महत्व समझें ।

राजनैतिक शोषण के अलावा विश्व में आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक, पर्यावरणीय और लैंगिक शोषण भी हैं । जब हम शान्ति की बात करते हैं तो हमें विनाश और जनहानि को गरीबी, अशिक्षा, धार्मिक असहिष्णुता, पर्यावरणीय संकट और लैंगिक शोषण से अलग रखकर नहीं देखना चाहिए । समस्याओं की पहचान करने के उपरान्त उनका समाधान भी ढूंढना आवश्यक है । यह स्पष्ट है कि केवल राजनैतिक शक्ति ही शान्ति स्थापित नहीं कर सकती । ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापना के लिये क्या करना चाहिये ? किस प्रकार हम ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं जिसमें समस्त लोगों के लिये शान्ति की धारणा केन्द्रीय स्वरूप में हो ?

सत्ता में शामिल लोगों चाहे वे राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, नागरिक या प्रशासनिक सत्ता से सम्बंधित क्यों ना हों, उन्हे शान्ति के बारे में एक सम्पूर्ण दृष्टि विकसित करनी होगी यदि हम अपनी आने वाली पीढीयों को एक बेहतर विश्व देना चाहते हैं तो हमें गाँधीवादी विचारों को अपनाना होगा तभी हम स्थायी शान्ति स्थापित कर पायेंगे । यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम यह सुनिश्चित करें कि समाज अहिंसा जैसे गाँधीवादी सिद्धान्तों को आत्मसात् करें । हमें अपनी योग्यता और धन का उचित उपयोग कर समाज को भविष्य की चुनौतियों के लिये तैयार करना होगा ।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. 'शान्ति' के विभिन्न सिद्धान्त क्या हैं ?
3. गाँधीजी के अनुसार 'शान्ति' क्या है ?

4. शान्ति के लिए गाँधीवादी और मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों की तुलना कीजिए ।
5. वैश्विक स्तर पर शान्ति स्थापना हेतु सुझाव दीजिए ।

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बाल्टीमार, टाम (सम्पादित), ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट थोट, आक्सफोर्ड, 1983
2. सरस्वती, बैधनाथ (सम्पादित) कल्चर ऑफ पीस : एक्सपीरियन्स एण्ड एक्स्पीरिमेन्ट, इन्दिरा गाँधी नेशनल सेन्टर फॉर द आर्ट्स एवं डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली, 1999
3. प्रसाद, देवी, पीस एडुकेशन ऑर एडुकेशन फॉर पीस, गाँधीपीस फॉउन्डेशन, नई दिल्ली, 1984
4. गंगराड़े के. डी एवं मिश्रा, आर. पी., कॉनफ्लिक्ट रेसोल्यूशन थ्रू नॉनवायलेन्स कानसेप्ट पब्लिशिन्ग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007
5. दास, दीप्ती मोई, गाँधीस डोकट्रीन ऑफ ट्रुथ एण्ड नॉन वायलेन्स : ए क्रिटिकल स्टडी, डॉमिनेन्ट पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008 के. डी. गंगराडे एवं आर. पी. मिश्रा, कॉनफिल्क्ट रेसोल्यूशन थ्रू नॉनवायलेन्स कानसेप्ट पब्लिशिन्ग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007
6. पारीक, रामलाल (प्रकाशक), परस्पेक्टिवस् ऑफ पीस रिसर्च, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1972
7. जोसफ, सिबी के., जे. मूलाकाट्ट एवं महोदया भरत (सम्पादित), नॉन वायलेन्ट स्ट्रगल्स, इंस्टीट्यूट ऑफ गाँधीयन स्टडीज, वर्धा एवं गाँधी पीस फाऊँडेशन, नई दिल्ली, 2009
8. जिल्लेंट, निकोलस, मेन अगेंस्ट वार, गाँधी बुक हाउस, नई दिल्ली, 1991
9. अय्यर, राघवन एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्सफोर्मेशन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994
10. मश्रुवाला, के. जी., गाँधी एण्ड मार्क्स नवजीवन पब्लिशिंग हॉउस, 2007

इकाई - 4

भारतीय परम्परा और शान्ति

इकाई की रूप रेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 परम्परागत भारतीय परिप्रेक्ष्य में शान्ति अध्ययन का अर्थ

4.3 हिन्दु परम्परा एवं शांति अध्ययन

4.3.1 वैदिक साहित्य एवं शान्ति अध्ययन

4.4 जैन धर्म एवं शांति अध्ययन

4.5 बौद्ध धर्म एवं शांति अध्ययन

4.6 ईसाई परम्परा एवं शान्ति अध्ययन

4.7 सिक्ख परम्परा एवं शांति अध्ययन

4.8 इस्लाम धर्म एवं शांति अध्ययन

4.9 पारसी धर्म में शांति अध्ययन

4.10 भक्ति / संत परम्परा में शांति अध्ययन

4.11 सारांश

4.12 अभ्यास प्रश्न

4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में मुख्य रूप से यह बताया गया है कि परम्परागत भारतीय परिपेक्ष्य में शान्ति सम्बन्धी विचार क्या रूख रहा है । इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् विद्यार्थी यह जान सकेगें कि परम्परागत भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुख्य रूप से हिन्दु परम्परा और वैदिक साहित्य के अन्तर्गत शान्ति का क्या अर्थ है, वैदिक साहित्य में शान्ति अध्ययन के क्या संदर्भ हैं । इसके अतिरिक्त 'रामायण', "महाभारत- शान्तिपूर्व" में शान्ति को किस रूप में परिभाषित किया गया है, यह भी जान सकेंगे ।

इस इकाई में आप जैन धर्म और उसका अहिंसा दर्शन एवं शान्ति के बारे में मान्यताओं के बारे में जान सकेगें ।

इसके अतिरिक्त इस इकाई को पढ़ने के पश्चात विद्यार्थी संक्षिप्त रूप में यह जान सकेगें कि, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म, पारसी, सिक्ख धर्म और ईसाई धर्म में शान्ति अध्ययन का क्या प्ररिपेक्ष्य है ।

अन्त में भारतीय भक्ति एवं सन्त परम्परा में शान्ति सम्बन्धी विचार एवं इनके योगदान की चर्चा की गयी है जिसमें मुख्य रूप से मलूकदास, संत दादू दयाल, नरसिंह मेहता

एवं संत तुकाराम के विचारो को स्पष्ट किया गया है, इसके बारे में भी आप संक्षिप्त रूप में जान पाऐगें ।

4.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज एवं भारतीय प्ररिपेक्ष्य में शांति अध्ययन को व्यापक रूप में वर्णित किया गया है, हालाँकि मूल रूप से तो शान्ति अध्ययन को एक विषय के रूप में मान्यता नही मिली, जैसा कि आधुनिक प्ररिपेक्ष्य में शान्ति अध्ययन को समझा जाता है, लेकिन शान्ति अध्ययन को अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान एवं शिक्षा के साथ सम्बन्धित किया गया । प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का अर्थ ज्ञान परक था, उसमें लौकिक एवं पारलोकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी, और इस शिक्षा के साथ ज्ञान, एवं शान्ति की शिक्षा को सम्मिलित रूप से शान्ति अध्ययन की श्रेणी में माना गया । जब तक उचित ज्ञान की प्राप्ति नही होगी तब तक मानव समाज में शान्ति की प्रक्रिया सम्भव नही है । ज्ञान के बिना मानव का व्यक्तित्व सकुंचित होता है, कहा भी गया है कि ज्ञान के बिना जीवन अन्धकारमय है । ज्ञान व्यक्ति को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है । जिससे ही शान्ति पूर्ण समाज का निर्माण होता है । ज्ञान मनुष्य का तीसरा, नेत्र है जो उसे समस्त तत्वों को समझने के योग्य बनाता है तथा उसे बेहतर कार्य करने के लिए प्रेरित करता है । समाज की उन्नति और लक्ष्य की प्राप्ति ज्ञान पर आधारित है । ज्ञान के प्रकाश में व्यक्ति अन्धकार की जीवन को भी प्रकाशमय बना देता है । ज्ञान एवं अध्ययन से शाश्वत् की उपलब्धि होती है ।

4.2 परम्परागत भारतीय परिप्रेक्ष्य में शान्ति अध्ययन का अर्थ

परम्परागत भारतीय प्ररिपेक्ष्य में शान्ति अध्ययन का अर्थ हिन्दु परम्परा, मुस्लिम परम्परा, जैन धर्म, बोद्ध धर्म तथा भक्ति व सन्त परम्परा आदि में शान्ति एवं शिक्षा से लिया जाता है, अर्थात मूल रूप से हिन्दू परम्परा या इस्लाम, जैन आदि में शान्ति को किस रूप में परिभाषित किया गया है । तथा शान्तिपूर्ण समाज के लिए क्या-क्या आवश्यक है । शिक्षा कैसी हो जिससे शान्ति पूर्ण समाज का निर्माण हो आदि, इसके अतिरिक्त परम्परागत भारतीय परिपेक्ष्य में इस बात पर भी अधिक जोर दिया गया है कि मन का नैतिक चरित्र कैसे बेहतर हो सकता है, इसके लिय मनुष्य का ज्ञान पूर्ण विकसित होना चाहिए तथा यह सब उचित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ही हो सकता है ।,

4.3 हिन्दु परम्परा एवं शांति अध्ययन

हिन्दु परम्परा में यह मान्यता थी कि मनुष्य का जीवन उसी स्थिति में परिष्कृत और बौद्धिक दृष्टि से उन्नत हो सकता है जबकि मनुष्य में उचित संस्करों का समावेश हो । समाज भी सात्विक और नैतिक गुणों का पालन करते हुए विकसित होता है । और यह सब शिक्षा से ही सम्भव हो सकता है । धर्म शास्त्र काल में व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही था बल्कि परिवार एवं समाज के निर्माण में भी देता था । मनुष्य के संस्कारों का निर्माण, जीवन मूल्यों की प्राप्ति, भावी जीवन की तैयारी, व्यक्तिगत विशिष्टताओं का विकास धर्मशास्त्र कालीन

शिक्षा के मुख्य उद्देश्य थे । हिन्दु परम्परा में शान्ति अध्ययन के अन्तर्गत शान्ति के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण थी, जिसके निम्न उद्देश्य थे ।

1. संस्कारों का निर्माण

प्राचीन हिन्दु परम्परा में सस्कारों का मनुष्य के जीवन में गरिमा मय स्थान था, जिससे मनुष्य का जीवन नैतिक एवं धर्मयुक्त होता है । संस्कार मनुष्य को सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक उर्जा प्रदान करते है । जिससे वह जीवन में आने वाली विभिन्न परेशानी को शान्तिपूर्ण तरीके से हल कर सकते ।

2. जीवन मूल्यों की प्राप्ति

तात्कालीन शिक्षा में आध्यात्मिकता का नियोजन किया गया था, इसके अन्तर्गत मनुष्य के सदगुणों का विकास, साथ ही विद्यार्थियों में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, सेवाशील मधुर आदि शाश्वत् मूल्यो का विकास किया जाता था जीवन में सत्य. के महत्व को स्थापित किया गया था सत्य व्यक्ति व समाज दोनों की उन्नति होती है । शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने तामसी और पाश्विक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखता है वह अपनी वाणी और कार्यो से किसी को हानि नही पहुंचाता है एवं अपने अंहिसात्मक व्यवहार से सभी लोगों का प्रिय बनता है।

इस प्रकार सदाचार, सचरित्रता का पालन करते हुए शिक्षा द्वारा मूल्यों की प्राप्ति के लिए विद्यार्थी सदैव प्रयत्नशील रहता था ।

3. वैयक्तिक विशिष्टताओं का विकास

इस काल में शिक्षा का उद्देश्य यह भी था कि व्यक्तियों को इस योग्य बनाया जाए कि वह अपनी शारीरिक बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का अधिकतम विकास कर सकें । इस तरह से यह शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक एवं मानसिक स्तर का विकास करती है जिससे व्यक्ति समाज में जीवन जीने एवं शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व में अपना योगदान दे सकें ।

4. सांस्कृतिक संरक्षण एवं प्रचार

धर्म शास्त्र काल में शिक्षा का लक्ष्य अपने पूर्वजों की संस्कृति का संरक्षण करना था तथा साथ ही नैतिकता को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था, वैदों को भूलना मध पीने के पाप के समान था ।

उपर्युक्त उद्देश्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परम्परागत भारतीय हिन्दु परम्परा में शान्ति अध्ययन अपने व्यापक रूप में था, यद्यपि यहाँ शान्ति अध्ययन में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान था । वेद, पुराण, उपनिषद या अन्य पौराणिक धर्म ग्रन्थों को ले ले, सभी के मूल में जीवन मूल्यों की स्थापना, बौद्धिक एवं सामाजिक विकास, आध्यात्मिक एवं शारीरिक विकास के साथ-साथ प्रेम, शान्ति भाईचारा सौहार्द आदि मूल्यों को स्थापित करने पर जोर दिया गया है मूल रूप से वैदिक काल में शान्ति शिक्षा भारत में प्रकारान्तर से विद्यमान रही है ।

4.3.1 वैदिक साहित्य एवं शान्ति अध्ययन

विश्व के सर्वाधिक पुराने ग्रन्थों-वेद में शांति को केवल मनुष्य तक सीमित नही रखा गया है अपितु इसे सम्पूर्ण बह्रामाण्ड से जोड़कर देखा गया । इस कारण स्वास्ति वाचक का आज भी धार्मिक कर्मकाण्ड के दौरान सबसे पहले वाचन होता है ।

ऊँ द्यो: शांतिअन्तरिज ..... शांति रोधी ऊ शान्ति ।

इसका अर्थ यह है कि "हे प्रभु आपकी कृपा से भूलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी सभी शान्ति देने वाले हों। जल औषधि वनस्पति आदि हमें शान्ति प्रदान करें । सभी देव, ब्रह्मा सभी शान्ति देने वाले हों । अधिभौतिक अधिवैदिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की शान्ति हों । इस शान्ति में सदैव वृद्धि हो।

इस स्वास्ति वाचक का अर्थ अपने आप में वैदिक साहित्य में शान्ति के महत्व को स्पष्टतया दर्शाता है । यह हमारी परम्परा रही है कि हम शान्ति को एक जीवन मूल्य के रूप मे स्वीकार करें । वैदिक साहित्य में केवल मात्र शान्ति को लेकर ही नही लिखा गया है अपितु समूचे ब्रहमाण्ड की भूमिका को लेकर लिखा गया जिसमें जीवन के हर पहलु में शान्ति के महत्व को स्थापित गया है ।

इसी तरह से यह कहा गया है कि :

क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात .....

यहाँ भी क्षमा व अहिंसा के विचार को स्थापित किया गया है । यह शान्ति की अवधारणा दर्शाता है कि क्रोध में आकर भी हमें संयम को नही त्यागना चाहिए बल्कि शान्ति पूर्ण तरीके से ही विवादों को हल करना चाहिए ।

यहाँ इस दोहे में स्वयं विष्णु भगवान के माध्यम से यह अपील की गयी है कि ऋषि भृगु द्वारा लात मारने के बाद भी भगवान ने क्रोध किए बिना ऋषि को क्षमादान दिया । यह परम्परागत भारतीय हिन्दु संस्कृति की सहिष्णुता एवं शान्ति की विचार धारा का परिचायक है ।

वैदिक साहित्य में भी "खाण्डयोपनिषद" में अहिंसा को मनुष्य एवं सभी प्राणियों के मध्य नैतिकता के सम्बन्ध में प्रयुक्त किया गया है । क्योंकि इसमें शान्ति, अहिंसा एवं नैतिकता को जोडकर देखा गया है उपनिषद बताता है कि यदि हम नैतिक है तो शान्ति एवं अहिंसा को स्वत: ही अपना लेते है।

महाभारत काल के शान्ति पर्व में भी अहिंसा संबंधी विचार प्रकट किए गढ़ है जब महाभारत के भीषण युद्ध और उसकी विभिषिका से त्रस्त होकर पाण्डवों ने राज-पाठ ग्रहण किया तो । कुछ समय वाद उन्हें वितृष्णा हो गयी तथा वे सब कुछ छोड़कर शान्ति की खोज में हिमालय पर चले गए ।

प्राचीन हिन्दु धर्म ग्रन्थ राम-चरित मानस में शान्ति का विचार समाहित है, यदि राम चाहते तो बिना पूर्व सूचना के रावण का वध कर सकते थे, लेकिन उन्होंने समर्थ होने के बावजूद शान्ति, मित्रता व भाईचारे का महत्वपूर्ण सन्देश भिजवाया ।

इस तरह से यदि संपूर्ण भारतीय दर्शन का नियोग यदि हम दो पंक्तियों करना चाहे तो वे इस प्रकार है ।

सर्वे भवन्तु सुखीन: सर्वे सन्तु निरामया

सर्व भद्रानि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भाग भवेत"

अर्थात सभी सुखी हो सभी निरोगी हो, सभी एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहे एवं किसी को कोई दुःख ना हो इसी विचार को लेकर ही हमारा सम्पूर्ण भारतीय दर्शन खड़ा है ।

वैसे परम्परागत भारतीय हिन्दु समाज व संस्कृति का मूल मंत्र वसुदेव कुटुम्बकम" रहा हैं, पानी हम सम्पूर्ण वसुधा को अपने कुटुम्ब की तरह मानते हैं । यह केवल भारतीय संस्कृति समाज दर्शन है जिसने ऐसा अभूत पूर्व एवं विरल विचार संपूर्ण दुनिया को दिया है ।

प्राचीन भारतीय पुराण एवं उपनिषद में कहा गया है :

"पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाय स्पर्भी या वायु ज्वलिन च तेज:

भव सशब्द मदता सदैव सर्वे नम शान्ति कर भवन्तु ।"

अर्थात गन्धयुक्त पृथ्वी रसयुक्त जल, स्पर्श करने वाली वायु तजोमयी अग्नि, शब्दयुक्त आकाश ..... सव मेरे प्रात: काल को मंगलकारी बनाए । तथा सभी मुझे शान्ति प्रदान करे ।

महाभारत शान्ति पर्व में जहां शान्ति सम्बन्धी विचारों को प्रकट किया गया है वहीं अनुशासन पर्व में अहिंसा संबंधी विचारों की विषद व्याख्या की गयी है ।

"अद्रोह: सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा निरा

अनुग्रहस्थ दायम च सता धर्म: सनातन: ।"

अर्थात मन वचन एवं कर्म के द्वारा सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अद्रोह अर्थात मित्रता करना और प्राणी मात्र के ऊपर अनुग्रह करके उसे सुख पहुँचाना आदि सनातन धर्म ही परम धर्म है ।

अहिंसा के सम्बन्ध में महर्षि वेद व्यास ने कहा है कि :

"अष्टादभपुराणेषु व्यासस्य वंचनं मादियम

परोपकारे पुणयायम पापाय परर्पीडनाम् ।"

अर्थात दूसरों पर उपकार करना सबसे बड़ा पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना सबसे बड़ा पाप है । अत: हिंसा करना पाप के सदृश्य बताया गया है ।

विष्णु संहिता में क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, अहिंसा इन सभी को धर्म बताया गया है कि :

"अहिंसा परमों धर्मो अहिंसा परम सुखम्

अहिंसा धर्म शास्पेषु सर्वेषु परमं पद्म

देवतातिनि शुत्रुषा सतत धर्म शीलता

वेदाध्ययनमज्ञाध तीर्थामिगमंत तथा

अंहिसाया वरारोह कलां नार्हन्ति षोडशीय् ।"

अत: स्पष्ट है कि भारतीय हिन्दु परम्परा एवं वैदिक साहित्य में शान्ति अध्ययन का विचार समाहित है, वस्तुत: देखा जाए तो शान्ति हमारे जीवन का आधार रही है हम शान्ति के अन्तर्गत केवल बाह्य शान्ति तक सीमित नही है अपितु मानसिक एवं आध्यात्मिक शान्ति को भी जीवन का महत्वूपर्ण अंग मानते है । जब हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की शान्ति की बात करते

है, जब हम सम्पूर्ण ग्रहों की शान्ति की बात करते है तो इसके अन्तर्गत सूक्ष्म व स्थूल दोनो तरह की शान्ति अर्न्तनिहित है ।

4.4 जैन धर्म एवं शांति अध्ययन

जैन गन्थों में ऐसा कहा गया है कि जो ज्ञान व्यक्ति को सद जीवन की ओर प्रेरित करे वही विद्या है इसलिए ज्ञान ऐसा हो जो व्यक्ति और समाज के लिय हितकारी हों ।

दसवें कालिक सूत्र में कहा गया है कि "मनुष्य को पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तभी वह अहिंसा का पालन कर सकता है अज्ञानी व्यक्ति तो पाप-पुण्य, करणीय-अकरणीय का भेद ही नही जानता तो वह ठीक प्रकार से आचरण कैसे कर सकता है ।

जैन परम्परा में भी शान्ति अध्ययन, शान्ति-शिक्षा की अवधारणा पर आधारित है । जिसमें शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन किया है ।

1. मन एवं इन्द्रियों के संयम का उद्देश्य

हिंसा की प्रमुख जड़ मन एवं इन्द्रियों का असंयम होना है, जैन परम्परा में इन्द्रियों को संयामित करके वैराग्य भाव रखना प्रमुख उद्देश्य है सांसारिक पदार्थो के प्रति राग की निवृत्ति हो जाने पर चित्त शान्त हो जाता है एवं आत्मशक्ति प्राप्त होती है ।

2. प्राणी मात्र की सेवा भावना का विकास

सामाजिक जीवन को इस प्रकार प्रभावित किया जाए जिससे वह मानव का कल्याण कर सकें ।

3. व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास

जैन परम्परा में इस प्रकार के आचरण स्थापित किए गए है । जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास हो उसे इस प्रकार की शिक्षा दी गयी जिससे वह गुरू के उपदेश को सुनकर उपयुर्क्त बातों को ग्रहण करें एवं निरर्थक बातों को छोड़ दें । इसके अतिरिक्त धार्मिक गोष्ठियों, धर्म एवं दर्शन के विभिन्न शाखाओं में शिक्षा एवं ज्ञान की प्रगति का वैचारिक आदान-प्रदान पर भी बल दिया ।

जैन परम्परा में शान्ति अध्ययन

अगर हम सम्पूर्ण जैन दर्शन के सार को एक शब्द में लिखना चाहे या जैन दर्शन के निचोड़ को एक शब्द में वर्णन करें तो वह है शान्ति / अहिंसा ।

वस्तुत: शान्ति व अहिंसा का जितना विषद वर्णन जैन धर्म या दर्शन में हुआ है उतना अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है । सम्पूर्ण जैन धर्म अहिंसा पर आधारित है एवं इसका प्रादुर्भाव भी अहिंसा के कारण हुआ था ।

अप्रादुर्भावत: खलुरागादीनां भवत्यहिंसेति

तेषामेवोत्पत्तिहिंसेति जिनागमस्य संक्षेप:

अर्थात् अपने शुद्धोपयोग रूप प्राण का घात रागादिक भाव से होता है । अत: रागादिक भावों का अभाव ही अहिंसा है । शुद्धोपयोग रूप प्राणघात होने से उन्हीं रागादिक भावों का सद्भाव हिंसा है । परम अहिंसा धर्म प्रतिपादक जैन धर्म का यही रहस्य है ।

शान्ति के लिए आगे जैन दर्शन में लिखा है ।

यत्खलुकषाय योगात्प्राणानं द्रव्यभाव रूपाणाम्
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा

जिस पुरूष के मन में, वचन में, कार्य में, क्रोधादिक कषाय प्रकट होते हैं, उसके शुद्धोपयोग रूप भाव प्राणों का घात तो पहले होता है, क्योंकि कषाय के प्रादुर्भाव से भावप्राण का व्यपरोपण होता है, यह प्रथम हिंसा है । पश्चात यदि कषाय की तीव्रता से दीर्घश्वासोह्रास से हस्त पादादिक से वह अपने अंग को कष्ट पहुँचाता है अथवा आत्मघात कर लेता है तो उसके द्रव्य प्राणों का व्यपरोपण होता है, यह दूसरी हिंसा है । फिर उसके कहे हुए मर्मभेदी कुवचनादिकों से या हास्यादि से लक्ष्य पुरूष के अंतरंग में पीड़ा होकर उसके भावप्राणों का व्ययरोपण होता है - यह तीसरी हिंसा है और अन्त में इसकी तीव्र कषय और प्रमाद से लक्ष्य पुरूष को जो शारीरिक अंग भेदन आदि पीड़ा पहुँचायी जाती है, सो परद्रव्यप्राण व्ययपरोपण होता है । यह चौथी हिंसा है । कषाय से अपने पर के भावप्राण व द्रव्यप्राण का घात करना यह चौथी हिंसा का लक्षण है ।

भावार्थ यह है कि जैन धर्म में हिंसा को चार प्रकार में बांटा गया वे हर तरह से अहिंसा को स्थापित करते हैं । जैन धर्म में 5 व्रत है जिन्हें पंच महाव्रत के नाम से जानते हैं । ये पंच महाव्रत हैं (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) अपरिग्रह (5) ब्रहमचर्य ।

यहॉ अहिंसा को सर्वोपरि माना है इस संदर्भ में जैन साहित्य में लिखा भी गया है ।

जिस व्रत में वचन, मन और शरीर से स्वप्न में भी त्रस स्थावर प्राणियों का घात। नहीं प्रवृत्त होता है वह आद्यवृत प्रथम अहिंसा महाव्रत कहा गया है । इस प्रकार अहिंसा सामान्य रूप में हिंसा विपरीत अर्थ है परन्तु यह शान्ति का पर्याय है क्योंकि जब मन, कर्म, वचन से हिंसा त्याग दी जायेगी तो स्वतः ही शान्ति प्राप्त हो जायेगी । शान्ति का सम्बन्ध बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार की शान्ति से है । मन से अहिंसक होना आन्तरिक शान्ति का परिचायक है एवं पूर्णयवा: अहिंसक होना सम्पूर्ण शान्ति का द्योतक है ।

हिंसा के चार प्रकार होते हैं ।

(1) आरम्भी हिंसा (2) उद्योगी (3) विरोधी (4) संकल्पी

(1) आरम्भी हिंसा

ग्रहस्थ संबंधी कार्य में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं ।

(2) उद्योगी हिंसा

कृषि, वाणिज्य आदि कार्य में जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं ।

(3) विरोधी हिंसा

आत्मरक्षा के लिए, देश रक्षा के लिए, धर्म रक्षा के लिए शरणागत की रक्षा करने के लिए, असहाय स्त्री एवं बालक की रक्षा के लिए धर्मनीति के अनुसार विरोधियों के साथ युद्ध करने से जो हिंसा होती है उसको विरोधी हिंसा कहते हैं ।

(4) संकल्पी हिंसा

दूषित भावना सहित, दूसरे जीवों को मारने का भाव उत्पन्न होने को संकल्पी हिंसा कहते हैं ।

अत: मनुष्य को सभी प्रकार की हिंसा से बचना चाहिए । जैन मत में कहा गया है अहिंसा यदि अमृत है तो हिंसा विष, अहिंसा से प्रेम, प्यार, मैत्री, एकता स्थापित होती है ।

अहिंसा नाम का महाव्रत जो सत्य महाव्रतादिरूप समस्त व्रतों का समूह है उसका कारण है - उन सबकी स्थिति इस अहिंसा महाव्रत के आश्रित है । साथ ही वह अठारह हजार शीलों के स्वामित्व आदि का भी आधार है उसके बिना इन शीलों के स्वामित्व आदि की सम्भावना नहीं है ।

जिनेन्द्र भगवान के मार्ग में तो अहिंसा अन्ययोग व्यवच्चेद से कही है अर्थात अन्य मतों में ऐसी अहिंसा का योग ही नहीं है । इस जिनमत में तो हिंसा का सर्वथा निषेध ही है और अन्यमतियो ने जो अहिंसा कही है सो योगमात्र से ही कही है अर्थात् कहीं अहिंसा का तो कहीं हिंसा का पोषण किया है सो स्वेच्छापूर्व उन्नमत्त की भांति कहीं है भावार्थ - जिनागम में हिंसा का सर्वथा निषेध है किन्तु अन्य मतियों ने पागल के जैसे कहीं तो हिंसा का निषेद्य किया है और कहीं उसका पोषण किया है ।

हिंसा की व्याख्या करते आचार्य उमास्वामी कहते हैं

"प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपण हिंसा"

अर्थात् प्राणों का नाथ करना ही हिंसा है । प्रदत्त योग अर्थात् राग द्वेष से की हुई प्रवृति हिंसा होती है ।

व्युत्थानावास्थायां रागादीनां वशप्रवृतायाम्
भ्रियंता जीवो भावा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा

(46, पुरूषार्थ सिद्धयुपाय:)

जो प्रमादी जीव कषायों से वशीभूत होकर गमनादि क्रिया यत्नपूर्वक नहीं करता वह "जीव मरे अथवा नहीं मरे" हिंसा के दोष का भागी अवश्य होता है । क्योंकि हिंसा कषाय भावों से उत्पन्न होती है और इसके कषाय भाव का सद्रश्य है । इस वाक्य से प्राणों को पीड़ा न होते हुए भी हिंसा होती है । यदि पूर्व कथित प्राण व्यपरोपण मात्र लक्षण कहा होता तो अव्याप्तिदूषण आता ।

इसके अन्तर्गत आगे कहा गया है कि बिना किसी के प्राणों का घात हुए भी हिंसा हो जाती है ।

यस्मात्सकषाय: सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्
पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राणयन्तराणां तु ।

(46/ पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

हिंसा शब्द का अर्थ घात करना है परन्तु घात दो प्रकार का है एक आत्मघात, दूसरा परघात । जिस समय आत्मा में कषाय भावों की उत्पत्ति होती है उसी समय आत्मघात हो जाता है । पीछे अन्य जीवों की आयु पूरी हो गई हो अथवा पाप का उदय आया हो तो उनका भी घात हो जाता है अन्यथा आयु कर्म पूर्ण न हुआ हो, पाप का उदय न आया हो तो कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उनका घात उनके कर्मों के अधीन है, परन्तु आत्मघात तो कषायों की उत्पत्ति होते ही हो जाता है आत्मघात तथा परघात दोनों की हिंसा है ।

जैन धर्म के 24वें तीर्थकर भगवान महावीर ने कहा था 'जीयो और जीने दो' यह विचार सम्पूर्ण जैन दर्शन का सार तत्व है । वे कहते जीने का जैसा तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को जीने देना तुम्हारा कर्तव्य है । यह शान्ति के मार्ग का प्रथम सोपान है अगर व्यक्ति स्वयं अहिंसक हो एवं दूसरों को जीने का पूर्ण अधिकार दे तो लोगों में ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, नफरत स्वत: ही समाप्त हो जायेगी और शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा ।

यर्थाथ में अहिंसा धर्म मानव जीवन का सबसे बड़ा पुरूषार्थ है और इसे सर्वोत्तम कर्तव्य मानकर मन वचन और कर्म से पालन करने का निश्चय करना चाहिए । अहिंसा का पालन करके मानव अपनी मुक्ति का द्वार अपने आप खोल लेता है ।

जो मन, वचन और कर्म से पूर्ण अहिंसक है उनके समीप सभी प्राणी बैर भाव को त्याग कर उसके मित्र बन जाते हैं और वह प्राणी सबसे अभय होकर पृथ्वी पर विचरण करता है । वहीं तत्वयोगी, वहीं कर्मयोगी और वही सम्यकदर्शी है जिसने अहिंसा जैसे पावन धर्म को जीवन में उतार दिया है ।

वास्तव में अहिंसा एक ऐसा पावन गुण या पवित्र कर्तव्य है जो सृष्टि पर ऐसी व्यवस्था करता है जिससे मानव सुख शान्ति से जीवित रह सकता है और जिससे समस्त बुद्धि का प्रकाश फैलता है । इसी कारण जैन धर्म में अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म कहा है । हमारे सम्पूर्ण धार्मिक ग्रंथ हमारे ही क्या विश्व के समस्त धार्मिक ग्रंथ अहिंसा का गुणगान करते हैं और मनुष्यों को बार-बार पग-पग पर अहिंसामय जीवन व्यतीत करने को कहते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शान्ति और अहिंसा जैन धर्म का सार तत्व है । शान्ति को व्यापक अर्थ में अहिंसा, दया, करूणा, क्षमा, अक्रोध आदि तत्वों से समाविष्ट किया गया है । इसलिए भगवान महावीर कहते हैं ।

संपूजकानां प्रतिपालकाना, यतीन्द्र समान्यतपोद्यनानाम्
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्ति भगवाजिनेन्द्र:

अर्थात यही धर्म, सभी भक्त राजा संत, तपस्वी व देश व सभी नागरिकों को शान्ति पूर्ण जीवन निर्वाह करें ।

4.5 बौद्ध धर्म एवं शांति अध्ययन

बौद्ध-धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध थे । भगवान बुद्ध ने वर्षा तक वन में तप किया तब कहीं जाकर उनको ज्ञान प्राप्त हुआ । बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था । वे राजा के पुत्र थे, लेकिन एक बार मृत व्यक्ति को देखकर उन्हें इस जीवन से विरक्ति हो गई और वे अपना सम्पूर्ण राजपाट पत्नी व बच्चों को छोड़कर वन गमन कर गये । वर्षो तक साधना के बाद सिद्धार्थ को बोध गया में वह अमर ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे वो सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध बन गये ।

गौतम बुद्ध अहिंसा, शान्ति व प्रेम की मिसाल थे । उन्होंने अपने प्रवचन व धर्मग्रन्थों में शान्ति व अहिंसा पर सर्वाधिक जोर दिया । बोद्ध धर्म में अनेकों ग्रंथ एवं अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जो सिद्ध करते हैं कि शान्ति एवं अहिंसा प्रचुरता से बौद्ध धर्म ग्रंथों में है ।

बौद्ध परम्परा बोधिसत्व शब्द का अत्यन्त महत्व है, जिसका शाब्दिक अर्थ है (भावी बुद्ध) । बोद्ध धर्म की महायान शाखा में बोधिसत्य के आदर्श के प्रति विशेष गुरूत्व प्रदान किया

है, एवं बोधिसत्व मानवता के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं । बोधि कारक धर्मो में बौद्ध परम्परा में महाकरुण को प्रथम स्थान दिया है । यह महाकरूण दया, प्यार, क्षमा और शान्ति की पर्याय है ।

महाकरूणारम्भा देव पुत्र सत्वानां

वर्या सत्वधिनिष्ठनेति विस्तरः

(आर्यगमशीर्ष, महायान सूत्र ग्रंथ)

अर्थात बोधिसत्वों की चर्चा महाकरूणा से आरम्भ होती है तथा दुःखार्त जीवो को आलम्बन करके इस करूणा की प्रवृति होती है ।

"समस्त जीवों का हित सुख-सम्पदा ही बोधि सत्व का जीवन है । जीव के दुःख से ही वे दुःखित रहते हैं, जीव का सुख ही उनका सुख है । दूसरों के दुःख के निवारण को वे सदैव तत्पर रहते हैं ।

भावार्थ है कि बुद्ध दुनिया से दुःख, कहर, पीड़ा, नफरत हटा देना चाहते हैं और जब तक वे इसे दूर नहीं करते हैं तब तक वे विमुख नहीं होने का संकल्प लेते हैं, जो प्रकारान्तर में शान्ति की प्रक्रिया का सहायक अंग बन शान्ति परम्परा को संबल प्रदान करते हैं ।

शान्ति के सन्दर्भ में बौद्ध धर्म के दो प्रमुख अंग हीनयान व महायान में लिखा है कि पारमिता यद्धपि शान्ति अध्ययन या शान्ति नहीं है तथापि शान्ति प्राप्ति के सोपान के रूप में अवश्य महत्व रखती हैं ये पारमिता निम्न है ।

1. दान
2. शील
3. शान्ति
4. वीर
5. ध्यान

उपर्युक्त सभी पारमिता यूं तो शान्ति के साधन हैं, परन्तु इनमें सभी पारमिता प्रकारान्तर में शान्ति का ही पर्याय है ।

बौद्ध धर्म की क्षमाशीलता एवं शान्ति की परम्परा से प्रभावित होकर ही विश्व प्रसिद्ध कलिंग युद्ध की विजय के बाद सम्राट अशोक महान द्वारा अपना सब कुछ त्याग कर बुद्ध की शरण में चला गया था, जो शान्ति का सबसे बड़ा उदाहरण है, जो वर्तमान में युद्ध की विभीषका से बचाता है अपितु शान्ति शिक्षा या शान्ति की स्थापना में महती भूमिका अदा करता है ।

4.6 ईसाई परम्परा एवं शान्ति अध्ययन

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा मसीह भी शान्ति व अहिंसा को स्वीकार करते हैं । वे शान्ति एवम् अहिंसा को धर्म मानते हैं । ईसाई धर्म के महान् दार्शनिक संत फ्रांसिस ने शान्ति के महत्व को स्थापित करते हुए लिखा है:-

हे प्रभु मुझे अपनी शान्ति का यंत्र बना ।
जहाँ घृणा है, वही मैं प्रेम ला सकूँ ।
जहाँ अपराध है वही मैं क्षमा ला सकूँ ।

4.7 सिक्ख परम्परा एवं शांति अध्ययन

सिक्ख धर्म के आदि गुरू नानक देव भी शान्ति, अहिंसा नैतिकता के हिमायती हैं । वे शान्ति के संदर्भ में कहते हैं:-

जो सिर काटे और का अपना रहे बचाये ।
धीरे-धीरे नानका बदला कहीं न जाये । ।

अर्थात् जो दूसरों का बुरा सोचते हैं, एक दिन उस स्वयं का ही बुरा है । अत: दूसरों का बुरा न सोंचें । यह भावना भी शान्ति प्राप्ति में सहायक है । यदि हम स्वयं अच्छे हो जायेंगे तो सारी सृष्टि स्वर्ग हो जायेगी और शान्ति स्वत: प्राप्त हो जावेगी ।

4.8 इस्लाम धर्म एवं शांति अध्ययन

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब ने भेदभाव, ऊँचनीच, शराब आदि बुराईयों पर रोक लगाई क्योंकि ये अशान्ति फैलाने के प्रमुख तत्व हैं । इस्लाम के प्रमुख धार्मिक ग्रन्थ कुरान शरीफ में लिखा है - हे प्रभु! तू हमकों मानवता की, शान्ति की प्रेरणा दे और अंतकाल में भलाई की शक्ति दे जिससे हम नरक से बचें ।

इसी प्रकार कुरान शरीफ में एक स्थान पर लिखा है कि मैं उस प्रभु से क्षमा चाहता हूँ जो मानवता के विरूद्ध प्रचलित है । उस ईर्ष्यालु, बुराई और पक्षपाती नीति पर चलने वाली बुराई से क्षमा चाहता हूँ । यहाँ यद्धपि शान्ति के लिये स्पष्ट संदेश नहीं दिया गया है परन्तु शान्ति की स्थापना में प्रभावी भूमिका निभाने वाले तत्वों का समावेश किया गया है । इसी प्रकार इस्लाम की पवित्र पुस्तक हदीस में भी प्रेम, शान्ति व अहिंसा से संबंधित विचार प्रकट किये गये हैं ।

4.9 पारसी धर्म मे शांति अध्ययन

पारसियों की धर्म पुस्तक जिन्द अवेस्ता में लिखा है "मनुष्य को नहीं चाहिए कि वह किसी दूसरे की हिंसा या हानि करके अपना लाभ या हित करे ।" वहीं आदमी बलवान है जो अपने अन्दरूनी शैतानों लोभ, क्रोध, काम, मान और असंतोष से युद्ध करने में समर्थ हो ।"

4.10 भक्ति/ संत परम्परा मे शांति अध्ययन

भारतीय परम्परा में भक्तिकाल में भी शान्ति पर काफी प्रयास किये गये हैं इस काल के अनेकों कवियों ने अपनी रचनाओं में प्यार, भक्ति आपसी भाईचारा व शान्ति अहिंसा को पर्याप्त महत्व दिया है । इस क्रम में सर्वप्रथम कवि कबीर दास जी आते हैं । उन्होंने भारतीय चिंतन धारा में एक परिच्छेद प्रारम्भ किया जो शान्ति, एकता आपसी भाईचारा और समानता के लिय मील का पत्थर साबित हुआ ।

"ऊँच-नीच सब गोरख धंधे, सब हैं उस अल्लाह के बंदे"

(कबीर)

यह शान्ति, एकता के मार्ग में सहायक तत्व हैं, क्योंकि शान्ति के लिये सबसे पहले हम स्वयं में सुधार करेंगे तब कहीं समाज में शान्ति होगी । ऊँच-नीच शान्ति की स्थापना के लिये बाधक तत्व हैं।

'घर-घर माही सांई रमता, कटुक वचन मत बोल रे ।'

(कबीर)

इस प्रकार कबीर ने तत्कालीन समय में मुस्लिम, हिन्दु संस्कृतियों को जोड़ने का प्रयास किया तथा अहिंसा का उपदेश देकर शान्ति का मार्ग प्रशस्त किया ।

मलूक दास

कबीर दास की तरह ही मलूकदास जी ने शान्ति, प्रेम तथा भाईचारे को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । वे संसार भर में शान्ति के आकांक्षी थे । वे समस्त संसार भर के दुःख दर्द दूर करना चाहते हैं ।

"जो दुःखिया संसार में, खोवो तिनका दुःख ।
दलिदर सौंपे मलूक को, लोगन दीजे सुक्ख । ।"

ऐसी भावना ही शान्ति की स्थापना के लिये पर्याप्त है ।

संत दादू दयाल

वे कहते हैं कि सभी मानव-मानव एक हैं, उनके बीच में कोई भेद भाव नहीं होना चाहिए ।

"जो पहुँचे ते कहीं गये तिनकी एके बात ।
सबे सयाने एक मत, तिनकी एके जात । ।"

वे कहते हैं कि न कोई बड़ा है न कोई छोटा, एक ही ईश्वर ने सबको जन्म दिया है, सब समान है । वे वर्ग विभेद को दूर करने के लिये सार्थक पहल करते हैं । वे आपसी वैमनस्य कटुता को दूर करने के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं । जो अन्ततः शान्ति स्थापना की पृष्ठभूमि है ।

नरसिंह मेहता

वे कहते हैं कि दूसरों की पीड़ा समझना व उसका निवारण करना ही सच्ची मानवता है, दया व प्रेम है। यदि मनुष्य के मन में सहानुभूति, शालीनता, मृदुता, न्यायप्रियता रहती है तो वह सच्चा मानव है । ये सभी शान्ति प्राप्ति के मूल स्तम्भ हैं ।

वैष्णव जन तो तेनें कहिए, जो पीर पराई जाने रे ।

संत तुकाराम

संत तुकाराम भी इसी परम्परा के संत हैं । वे शान्ति मानवता के बारे में कहते हैं:-

"धर्म भूताची ते दया संत कारण ऐसिया
नब्बे मांसे मत, साथी करनि सांगे संत ।"

आशय है कि प्राणी मात्र पर दया करना धर्म है । यह संत का लक्षण है इसे साक्ष्य रूप में मानते हैं । अतः दया, प्रेम, प्यार, भाईचारा आदि को बढ़ावा दिया गया है जो शान्ति धर्म को बढ़ावा देती है ।

इसी परम्परा के अनेक कवि जैसे सूरदास, मीराबाई, रसखान, तुलसी, नामदेव, स्वामी हरिदास आदि अनेक कवियों ने अपने दोहों, सवैयों, पदों आदि से मानव मात्र का कल्याण एवं शान्ति की कामना की है ।

तुलसी दास जी कहते हैं:-

तुलसी हाय गरीब की कबहुँ ना निश्फल जाये ।

मरे बैल की चाम से लोह भस्म हो जाये ।

तात्पर्य है कि गरीबों पर दया करो, उन्हें स्नेह करो, आपस में प्यार रखो । इन सब शिक्षाओं का अंतिम लक्ष्य समाज में आपसी भाईचारा व शान्ति स्थापित करना था । ये सभी संत भक्ति के साथ-साथ समाज में व्याप्त कुरीति, शोषण, भेदभाव के खिलाफ भी लेखन करते रहे और - प्रकारान्तर में इनका लेखन समाज में एक संदेश के रूप में जाता था जो उनके अनुयायियों में शान्ति एवं एकता स्थापित करने के काम आता था, उनकी यह शिक्षा ही शान्ति शिक्षा थी ।

4.11 सारांश

इस प्रकार हम सारांश रूप में यह कह सकते हैं कि परम्परागत भारतीय समाज में जैसे हिन्दु परम्परा, बौद्ध परम्परा, जैन परम्परा आदि में शान्ति शिक्षा का पर्याप्त महत्व है । प्रत्येक परम्परा में औपचारिक या अनौपचारिक रूप से शान्ति शिक्षा को स्पष्ट किया गया है ।

इसके अतिरिक्त भक्ति/संत परम्पराओं में भी शान्ति शिक्षा को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया है। मूलकदास संत दादू दयाल, नरसिंह मेहता, संत तुकाराम आदि के विचारों तथा दर्शन में शान्ति को ही महत्व प्रदान किया गया है ।

4.12 अभ्यास प्रश्न

1. परम्परागत भारतीय दर्शन में शान्ति अध्ययन की विवेचना कीजिए ।
2. हिन्दु परम्परा की शांति अध्ययन में क्या भूमिका है ?
3. वैदिक दर्शन का शान्ति अध्ययन में क्या योगदान है ?
4. जैन दर्शन की अहिंसा के बारे में क्या संकल्पना है ?
5. बौद्ध दर्शन एवं शान्ति अध्ययन पर एक निबन्ध लिखें ।
6. इस्लाम, ईसाई, सिक्ख एवं पारसी धर्म का शान्ति अध्ययन में क्या योगदान है ।
7. भारतीय भक्ति एवं संत परम्परा में शान्ति अध्ययन की व्याख्या को ?

4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, वी.पी., प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1965
2. अलतेकर ए.एस., स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्शियन्ट इन्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, वारानसी, 1977
3. सालेटॉर, बी.ए., ऐन्शियन्ट इन्डिया पॉलिटिकल थोट एण्ड इनस्टिट्यूशन्स ।

4. शर्मा आर.एस., पॉलिटिकल आइडियास एण्ड इनस्टिट्यूशन इन ऐन्शियन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, वारानसी 1959
5. गाँधी, एम. के., मय रिलीजन, नवजीवन पब्लिशिंग हॉउस, अहमदाबाद, 2007
6. तिवारी, के. एन., वर्ल्ड रिलीजनस् एण्ड गाँधी, क्लासिकल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1988

अध्याय - 5

मानवाधिकार और शान्ति में अन्तर- सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मानवाधिकार का अर्थ

5.3 मानवाधिकार का विकास

5.3.1 प्रथम पीढ़ी के मानवाधिकार

5.3.2 द्वितीय पीढ़ी के मानवाधिकार

5.3.3 तृतीय पीढ़ी के मानवाधिकार

5.3.4 समूह आधारित अधिकार

5.4 मानवाधिकार के विभिन्न आयाम

5.4.1 मानवाधिकार और मानव सुरक्षा

5.4.2 मानवाधिकार और राज्य संप्रभुता_

5.5 शान्ति और मानवाधिकार में अन्तर-सम्बन्ध

5.6 मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ

5.7 भारत में मानवाधिकार

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य मानवाधिकारों की अवधारणा को समग्र रूप से के साथ ही उसमें नित नये जुड़ते आयामों की पहचान करना है । इस अध्याय के अध्ययन के द्वारा हम यह की कोशिश करेंगे कि, मानवाधिकर किस तरह से शान्ति की अवधारण से संबंधित है । प्रस्तुत अध्याय हम यह भी जानने की चेष्टा करेंगे कि, किस प्रकार मानवाधिकार और मानव गरिमा को सुनिश्चित कर विषमता को दूर किया जा सकता है तथा सकारात्मक शान्ति की स्थापना की जा सकती है । इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात हम निम्न से परिचित हो सकेंगे :

- मनवाधिकार की अवधारणा
- मानवाधिकार एक प्रकिया के रूप में
- मनवाधिकार व मानव सुरक्षा
- मनवाधिकार व सम्प्रभुता
- मनवाधिकार मानव विकास व शान्ति

- मनवाधिकार और संपोष्य विकास
- मनवाधिकार तथा अंतर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संस्थाएं
- मनवाधिकार तथा शान्ति का अंर्तसंबंध
- भारतीय व्यवस्था में मानवाधिकार

5.1 प्रस्तावना

मानवीय चेतना के विकास से ही मनुष्य अपनी मनुष्यता की खोज में अनवरत रूप मे लगा हुआ है । किसी भी सभ्यता व संस्कृति के इतिहास को देखें तो मनुष्य की यह खोज प्रतिबिंबित होती है । मनुष्य जब आदिम अवस्था से समूहों में रहने की प्रेरणा प्राप्त करता है तो कहीं न कहीं वो स्वयं के अस्तित्व के साथ दूसरे सहभागियों के अस्तित्व को स्वीकार कर उनके अधिकारों को एक प्रकार से मौन स्वीकृति प्रदान करता है । बहुत स्पष्ट तो नहीं किन्तु कहीं न कहीं इसे मानवाधिकारों की स्वीकृति के रूप में स्वीकारा जा सकता है । कालान्तर में होने वाले विकास ने मानवाधिकारों के स्वरूप को परिमार्जित करने का प्रयास किया । चाहे वह प्लेटो, अरस्तू के दर्शन से लेकर कौटिल्य के दर्शन तक हो, अथवा हॉब्स, लॉक, रूसो का सामाजिक समझौते का दर्शन हो, फांस, ब्रिटेन, अमेरिका और अनन्य तृतीय विश्व के देशों की क्रातियां हों अथवा अंतत: संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में 1948 में घोषित "मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र" रहा हो । प्रत्येक दर्शन में मानवाधिकारों को पहचानने और उनकी गरिमा को स्थापित करने की चेष्टा दिखाई देती है । निश्चित रूप से मानवाधिकारों की यह खोज, मानव गरिमा की एक खोज है, जिसमें सहिष्णुता व सम्मान के साथ विकास का भाव भी अर्न्तनिहित है । मानव सम्मान व गरिमा की यह खोज मात्र 1948 के 'सार्वभौमिक मानवाधिकारों की घोषणा' पर आकर ही नहीं रूक गई, अपितु इसमें नित नए आयाम जुड़ते जा रहे हैं, जो इसे समग्र व सुन्दर बना रहे है ।

5.2 मानवाधिकार का अर्थ

मानवाधिकार सामान्य अर्थो में वे अधिकार हैं जो व्यक्ति को मनुष्य होने के नाते प्राप्त हुए हैं, और जिनके बिना व्यक्ति का गरिमा पूर्ण समग्र विकास सम्भव नहीं है । चूंकि मनुष्य अपने मानव होने के अस्तित्व को हस्तांतरित नहीं कर सकता इसलिये उसके मानवाधिकार भी हस्तांतरणीय हैं । मानवाधिकार उन परिस्थितियों को इंगित करता है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रकृति द्वारा प्रदत अपनी अंर्तनिहित क्षमताओं को प्राप्त कर उनका विकास करता है, जो उसकी गरिमा को सुनिश्चित करता है । जन्मस्थान, जाति, वर्ण, धर्म, लिंग इत्यादि कारकों के इतर प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर जीवन की जिजीविषा निहित है और इससे इन्हें वंचित नहीं किया जा सकता है । व्यक्ति की आवश्यकतायें एक सामाजिक व्यवस्था का आधार तय करती हैं जहां व्यक्ति अपने मानव होने के अस्तित्व के साथ-साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । सामाजिक व्यवस्था में मानव अस्तित्व की पहचान मानवाधिकारों को स्वीकार करने से शुरू होती है । प्रत्येक कालखण्ड में हर क्षेत्र में जब व्यक्ति समूहों में रहने की शुरूआत करता है, और कुछ सामाजिक संहिताओं, कानूनी संहिताओं एवं व्यवस्थाओं का निर्माण कर

सामाजिक व्यवहार का एक मापदण्ड तैयार करता है तो वह व्यक्ति के अधिकारों (मानवाधिकारों) की स्वीकृति होती है । यद्यपि प्राचीन दर्शन में अधिकार एक अवधारणा के रूप में दिखाई नहीं देता जैसा कि, आधुनिक राजनीतिक चिन्तन में प्रतिबिंबित होता है, किन्तु उसके तत्वों की पहचान कर निश्चित रूप में हम उन्हें अधिकारों की श्रेणी में रख सकते हैं । मानवाधिकार की आधुनिक संकल्पना के विकास की शुरुआत हम यूरोप के पुनर्जागरण में देख सकते हैं, जहां से मानव गरिमा को अक्षुण रखने की बात शुरू होती है, और अंततः यह 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों के सार्व भौमिक घोषणा पत्र में यह अपने चरम पर पहुंचता है, जहां समस्त वैश्विक इकाईयां मानव गरिमा को स्वीकार कर, बिना किसी भेद-भाव के मानवाधिकारों को मान्यता प्रदान करती हैं । लगातार होते युद्धों, विशेषकर प्रथम विश्व युद्ध एवं द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका; जहां राज्यों द्वारा व्यक्ति के अनन्य अधिकारों का दमन किया गया, और बहुत से उद्वरणों में राज्य संरचना द्वारा अपनी ही सीमा में रहने वाले व्यक्तियों के अधिकारों के निर्ममता पूर्वक दमन के सन्दर्भ में 'मानवाधिकारों का सार्व भौमिक घोषणा पत्र' व्यक्ति के अधिकार एवं विश्व शान्ति की दिशा में एक सकारात्मक और विश्वास भरा कदम था, जो कम से कम सैद्वान्तिक तौर पर समस्त वैश्विक इकाईयों द्वारा स्वीकार किया गया । एक व्यवस्था के तहत हम एक दूसरे से इस तरह से अर्न्तसंबंधित हैं कि, एक की असुरक्षा दूसरे की असुरक्षा का कारण बनती है, इसलिये शान्ति की स्थापना के लिये सभी का एक समूह के रूप में, एक व्यवस्था के रूप में सुरक्षित रहना आवश्यक है । सुरक्षा का द्वन्द वास्तव में सैन्य सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा का अंर्तविरोध एक द्वन्द है । सुरक्षा की अवधारणा को अराजक व्यवस्था के तहत प्राप्त नहीं किया जा सकता । किसी क्षण कोई ऐसा संतोष जनक सोपान नहीं है, जहां हम ऐसी अवस्था में सुरक्षित महसूस कर सकें । क्यों कि ये सोपान जिन अवयवों पर अवलम्बित हैं, वे अवयव ही नितान्त परिवर्तनशील हैं, और बहुत हद तक काल्पनिक भी । व्यवस्था की संरचना और इसमें अर्तनिहित गतिशीलता, इस सुरक्षा के द्वन्द के चक्र को इस अर्थ में पूरा करती है कि, पूर्ण सुरक्षा के तरफ बढाया कोई कदम, दूसरे कारकों के मध्य उसी अनुपात में भय की मात्रा का संचार करती है । वास्तविक संदर्भों में पूर्ण संरक्षा का बोध जो किसी अन्य के लिये भय का वाहक नही बनती मानवाधिकारों के उचित सम्मान और उनको बनाये रखने में ही निहित है । इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता कि, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक स्वीकार्यता राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर शान्ति, विकास और लोकतान्त्रिक मूल्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक है । मानवाधिकार की अवधारणा में यह संचेतना निहित है कि, मानव गरिमा के लिए आवश्यक स्वतन्त्रता और अधिकार के मूल्य जो जीवन के केन्द्र में है, को किसी भी तरह के अतिक्रमण से सुरक्षित रखा जाय चाहे वह सामाजिक स्तर पर हो, राज्य स्तर पर हो अथवा वैश्विक स्तर पर । मानवाधिकार का आशय व्यक्ति की अंर्तनिहित क्षमताओं के विकास के साथ अपेक्षाओं का विकास भी है । मानवाधिकार विशद अर्थो में ऐसे अवसरों के चुनाव की उपलब्धता से भी है जो व्यक्ति के क्षमताओं का पूर्ण विकास करने में सहायक हो ।

5.3 मानवाधिकारों का विकास

मानवाधिकार के विकास की शुरूआत मानव चेतना के बोध से मानी जा सकती है । जब व्यक्ति ने अपने को मनुष्य तथा उसके साथ रहने वाले समान प्रकृति के व्यक्ति को भी मनुष्य को मनुष्य मानकर विकास की दिशा में कदम बढाया, उसी क्षण कहीं न कहीं मानवाधिकार को भी स्वीकार कर लिया गया । मनुष्य ने अपने विकास के लिये आवश्यक कुछ मूलभूत तत्वों की पहचान की जो उसे व अन्य समान प्रकृति वाले लोगों को मनुष्यता की श्रेणी में लाता था । ये मूल भूत तत्व ही मानवाधिकार का आधार थे । '

यूनानी और रोमन चिन्तन की शुरूआत में और विशेष रूप से पुनर्जागरण के पश्चात पाश्चात्य दर्शन में इस बात को निरन्तर जानने का प्रयास किया गया कि, व्यक्ति और समाज, व्यक्तिगत अधिकार और स्वतन्त्रता विधि का शासन और अन्यान्य ऐसी अवधारणाओं का आपस में क्या अंतर्सम्बंध हैं ? यद्यपि यह अवधारणा कि सभी व्यक्तियों को उनके धर्म, जाति, वर्ण लिंग, भाषा इत्यादि के भेद-भाव के बिना समान अधिकार है, एक नवीन अवधारणा के रूप में विकसित हुआ है । इस अवधारणा की संकल्पना यह इंगित करती है कि सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेद भाव के जीवन जीने का अधिकार, स्वतंत्रता, संपति, अभिव्यक्ति इत्यादि का अधिकार होगा । यद्यपि इस अवधारणा के विकास की शुरूआत हमें प्राचीन दर्शन में दिखाई देती है, तथापि वह मानवाधिकार के संबंध में इस अर्थ में अपूर्ण है कि वह पूरी समग्रता के साथ इस अवधारणा को नहीं देखते और इसमें पूर्णता का अभाव परिलक्षित होता है ।

अरस्तू जहां एथेन्स में सभी व्यक्तियों के स्वतन्त्रता की वकालत करते हैं, वहीं यह भी कहते है कि, दासों को यह अधिकार इसलिये नहीं है क्यों कि वे व्यक्ति की श्रेणी में नहीं आते । 1215 ई० के मैग्ना कार्टा को समस्त पाश्चात्य जगत मानव अधिकार के विकास की दिशा में ऐतिहासिक कदम मानता है, वह भी इस अर्थ के पूर्ण नहीं है कि, सम्राट जॉन से जो स्वतन्त्रतायें और छूट हासिल किये गये थे, वो सामंत वर्ग के हितों से संबंधित था । इसी तरह से हॉब्स, लॉक, रूसो, जे०एस० मिल इत्यादि का दर्शन भी व्यक्ति के अधिकारों की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होते हुये भी मानवाधिकारों के संबंध में समग्र एवं संपूर्ण नहीं प्रतीत होते । अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा (1776) भी इस दिशा में एक ऐतिहासिक कदम माना जाता है; जो जीवन, स्वतन्त्रता और प्रसन्न रहने के अधिकार को अदेय अधिकार मानता है, मानवाधिकारों के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण होते हुये भी यह विकास पूर्ण नहीं था; क्योंकि, अमेरिकी अश्वेतों को अभी भी ये अधिकार प्राप्त नहीं थे । अमेरिकी समाज का यह विभाजन कहीं न कहीं इस महत्वपूर्ण घटनाक्रम के महत्व को क्षीण कर रहा था । 1789 की फ्रांसीसी क्रांति जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर बल दिया, इस दिशा में एक मील का पत्थर था जिसने इन अधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों की श्रेणी में रखा; किन्तु फ्रांसीसी क्रांति ने गैर यूरोपीय समुदाय को इन अधिकारों से वंचित रखा । इस अर्थ में इन अधिकारों का क्षेत्र व्यापक न हो कर संकीर्णता के दायरे में सीमित हो गया । इन अधिकारों के पैरोकार यूरोपीय देशों ने गैर यूरोपीय देशों विशेषकर अफ्रीका व एशिया में रहने वाले लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार

कर दोहरा मापदण्ड पेश किया, और निहित स्वार्थो के कारण मानवाधिकार वैश्विक स्तर पर समग्र रूप से विकसित न हो सका और सिर्फ कुछ व्यक्तियों या समूह का अधिकार बनकर सीमित रह गया ।

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका ने कम से कम सैद्वान्तिक रूप से यह सिद्ध किया कि, मानवाधिकारों का एकाकी पक्ष वैश्विक शान्ति को कायम नहीं रख सकता और सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र के उस संकल्प के परिप्रेक्ष्य में जिस कारण "युद्ध की विभीषिका से आने वाली पीढीयों की रक्षा करने के लिये" संयुक्त राष्ट्र अस्तित्व में आया, सबसे महत्वपूर्ण कदम के रूप में 1948 के घोषित मानवाधिकारों का "सार्वभौमिक घोषणा पत्र" एक नवीन आशा के साथ अस्तित्व में आया । यद्यपि यह घोषणा पत्र सभी वैश्विक इकाइयों को सैद्वान्तिक तौर पर समान रूप से स्वीकार्य होने के बावजूद कानूनी रूप से बाध्य नहीं था । एक सकारात्मक बात यह थी कि बहुतायत में राष्ट्रीय सरकारों ने अपने कानूनों में और संविधान में इन मानवाधिकारों को यथोचित स्थान प्रदान कर यह विश्वास जगाया कि भविष्य में सभी व्यक्तियों के मानवाधिकार रंग, लिंग, जाति, वर्ग तथा अन्य भेद-भाव के बिना सुरक्षित रहेगा । मानवाधिकार वह अधिकार है जिसे व्यक्ति किसी भी रंग, प्रजाति, लिंग, धर्म के होते हुये भी समान रूप से मानव होने के कारणवश धारण करता है । प्राकृतिक अधिकार मानवाधिकार जैसे अनेकों अवधारणायें, विकास के क्रम की एक चर है जो प्रत्येक समय में परिस्थिति अनुरूप अपना रूप बदलती रही हैं । मानवाधिकार का मुख्य आधार प्रत्येक व्यक्ति के मध्य समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय एवं एक समान नागरिक अधिकारों को प्रदान करने के आदर्श पर स्थापित है । मानवाधिकार समानता, गैरविभेदीकरण व व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास, गरिमा और प्रसन्नता के लिये आवश्यक है । स्टोइक दर्शन के अनुसार मानव अपना सम्पूर्ण विकास दो प्रकार के समुदायों के माध्यम से करता है । पहला समुदाय स्थानीय समुदाय, जिससे वह प्रत्येक दिन की क्रियाविधि के कारणवश सम्बन्धित है, और दूसरा मानव समुदाय है जिससे वह मानवीय मूल्य धारण करने के कारणवश सम्बन्धित है । मानवाधिकारों का विकास एक सतत ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत हुआ है, जो अनवरत रुप से जारी है । मानवाधिकार जहां व्यक्ति के समग्र राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा अन्य अधिकारों को समाहित करते हुये पूर्व में व्यक्ति की गरिमा को बनाये रखने तक सीमित था, वही शनै शनै व्यक्ति से समूह की तरफ अग्रसारित हो रही है । आज व्यक्ति अधिकारों के साथ-साथ, समूह अधिकारों की महत्ता को स्वीकार किया जाने लगा है, विशेष रुप से हासिये पर गये समूहों के। टाकवेली ने भी कहा था कि, प्रजातंत्र के विस्तार को अब रोका नही जा सकता परन्तु यदि बहुसंख्यक वर्ग के हितों के समक्ष अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा को सुरक्षित करने का उपाय अब नही होगा तो प्रजातंत्र एवं प्रजातांत्रिक संस्थाएं स्वत: ध्वस्त हो जाएंगी । प्रजातंत्र को स्थापित करने, उसे बनाये रखने और उसे परिमार्जित करने हेतु मानवाधिकारों के उचित सम्मान की आवश्यकता है । सिर्फ प्रजातंत्र ही नहीं अपितु मानव मूल्यों की स्थापना जैसे कि, वैश्विक सहिष्णुता और अहिंसा के लिये भी मानवाधिकारों को बनाए रखना अति आवश्यक है । मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणापत्र भी मानवाधिकारों के प्रति सम्मान को स्वतंत्रता, न्याय,

और वैश्विक शान्ति का आधार मानता है । संयुक्त राष्ट्र के चार्टर और सार्वभौमिक घोषणापत्र इस ओर इंगित करते हैं, कि हम मानवीय समाज में इस तरह का प्रशासन और व्यवस्था सुनिश्चित करें जिससे मूलभूत मानवाधिकारों की रक्षा और उनका संवर्धन होता रहे । मानवाधिकारों की रक्षा और उनका सम्मान विश्व शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिये आवश्यक शर्त है, विशेष रुप से बदली हुयी वैश्विक सुरक्षा की परिस्थितियों में । वैश्विक स्तर पर बढ़ते हुये उग्रवादी और आतंकवादी खतरों से एकांगी तौर पर लड़ने में सफलता नहीं मिल सकती । विश्व के समस्त लोगो को उनके मानवाधिकारों और सम्मान के सुरक्षा की गारंटी निश्चित रुप से एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपाय साबित हो सकता है । इस दृष्टि से देखें तो मानवाधिकारों का कूटनीतिक, सामरिक और वैयक्तिक महत्व है । यद्यपि इस असंतुलित वैश्विक शक्ति संतुलन, असमान प्रशासनिक गुणवत्ता, आर्थिक और सामाजिक विभेद, विभिन्न मूल्य व्यवस्थाएं तथा मानवाधिकारों का बड़े पैमाने पर उल्लंघन एक बड़े चुनौती के रुप में सामने आ रहा है । तथापि मानवाधिकारों के अभाव में वास्तविक और स्थायी मानव सुरक्षा संभव नहीं है । मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र इस बात का निर्देश देता है कि, सामूहिक प्रयास द्वारा गरीबी को दूर कर वैश्विक समृद्धि का विकास किया जाय तथा विधि के शासन एवं अविभेदकारी व्यवस्था की स्थापना की जाय । ऐसे समाज में जहाँ मानवाधिकार को पूरा सम्मान मिलता है, और मानवीय मूल्यों की स्थापना होती है, वहाँ संघर्ष की सम्भावना, कम हो जाती है । यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि, वास्तविक और स्थायी शान्ति की स्थापना राजनीतिक हित और ध्रुवों को साध कर अथवा हथियारों की आपूर्ति और उसको संरक्षित करने से नहीं है । यह सिर्फ युद्ध का एक अभाव है । सही अर्थो में शान्ति की स्थापना आधारभूत मूल्यों के द्वारा निर्मित परस्पर विश्वास और मानव मूल्यों, विशेष रुप से मानव सम्मान और मानवाधिकार की रक्षा में अंतर्निहित है । मानवाधिकार के विकास के क्रम को तीन पीढ़ियों में विभाजित किया गया । मानवाधिकारों के इस विभाजन को सर्वप्रथम 1979 में चेक गणराज्य के विधिवेत्ता कारेल बसाक ने स्ट्रासबर्ग के अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्था में प्रतिपादित किया । वस्तुत: यह विभाजन यूरोपीय विधि और मूल्य में निहित था ।

5.3.1 प्रथम पीढी के मानवाधिकार

प्रथम पीढ़ी के मानवाधिकार स्वतंत्रता और राजनितीक जीवन में सहभागिता से सम्बन्धित था । यह मूलत:नागरिक और राजनीतिक प्रकृति का था, और व्यक्ति को राज्य के अतिक्रमण से सुरक्षित रखने के निमित्त था । इस तरह के मानवाधिकार की श्रेणी में विशेष रुप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विश्वास की स्वतंत्रता और वोटिंग अधिकार आदि सम्मिलित था । इस पीढ़ी के अधिकारों की प्रेरणा अमेरिकी क्रांति और फ्रांसिसी क्रांति में दृष्टिगत होती है । ये अधिकार सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 3 से 21 में परिलक्षित होते है ।

5.3.2 द्वितीय पीढी के मानवाधिकार

द्वितीय पीढ़ी के मानवाधिकार के मानवाधिकार समानता से सम्बन्धित थे, जिनको प्रथम विश्व युद्ध के बाद महसूस किया गया । ये अधिकार मूलत: सामाजिक, आर्थिक और

सांस्कृतिक प्रकृति के थे । ये अधिकार विभिन्न स्थानों और विभिन्न परिस्थितियों में रहने वाले नागरिकों को समान स्थिति और व्यवहार का विश्वास दिलाते थे । ये अधिकार सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनु0 22 से 27 में निहित है । ये अधिकार रोजगार, आवास, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों से जुड़े हुये हैं ।

5.3.3 तृतीय पीढी के मानवाधिकार

तृतीय पीढ़ी के मानवाधिकार के मानवाधिकार नागरिक और सामाजिक अधिकारों सेआगे बढ़ते हुये विभिन्न विकासवादी दृष्टिकोणों में परिलक्षित होते हैं जैसे- 1972 का स्टाकहोम घोषणा पत्र, 1992 का पर्यावरण और विकास पर रियो घोषणा पत्र इत्यादि । यद्यपि इन अधिकारों पर एक लम्बी बहस चल रही है तथापि सम्प्रभुता की अवधारणा इन अधिकारों को बाध्यकारी बनाने में एक बाधा के रुप में दिखायी देता है । तृतीय पीढ़ी के मानवाधिकार अभी विकास के क्रम में हैं, और इनका दायरा अनवरत रुप से विस्तृत होता जा रहा है । जिसमें

1. समूह और सामूहिक अधिकार
2. स्व-निर्धारण का अधिकार
3. आर्थिक और सामाजिक विकास का अधिकार
4. स्वस्थ वातावरण का अधिकार
5. प्राकृतिक संसाधनों का अधिकार
6. सम्प्रेषण और संचार का अधिकार
7. सांस्कृतिक विरासतों में सहभाग का अधिकार
8. सम्पोष्य विकास का अधिकार

इत्यादि सम्मिलित हैं । यद्यपि कुछ राष्ट्रों ने इन अधिकारों को सांविधानिक दर्जा देने का प्रयास किया है जैसे न्यूजीलैंड में पर्यावरण के संसदीय आयुक्त (Parliamentary Commissioner for the Environment) तथा हंगरी में भविष्य की पीढीयों के संसदीय आयुक्त (Parliamentary Commissioner for Future Generations)

5.3.4 समूह-आधारित अधिकार

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक व्यवस्था में बड़े ही महत्वपूर्ण बदलाव आये। इसके पश्चात ही सर्व प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में वैश्विक समुदाय ने राष्ट्र राज्यों के अतिरिक्त व्यक्तियों के मानवाधिकार को स्वीकार किया । व्यक्तियों को यह अधिकार उनके मानव हाने के नाते प्राप्त हुआ और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये अधिकार व्यक्ति को राज्य के सापेक्ष प्राप्त हुये थे । मानवाधिकारों का विकास क्रमिक रुप से होता गया और नसे-नये आयामों ने इसे विस्तृत स्वरुप प्रदान किया है । पर्यावरणीय असंतुलन और इसके ह्रास से होने वाले दुष्प्रभाव ने वैश्विक समुदाय को यह सोचने पर विवश किया है कि स्वस्थ वातावरण, स्वच्छ हवा और प्राकृतिक संसाधन प्रत्येक व्यक्ति का ही अधिकार नहीं, अपितु आने वाली पीढ़ियों की धरोहर भी है ।

पर्यावरणीय आन्दोलनो में यह बात प्रकट हुयी है कि पर्यावरणीय क्षति से अधिकतम लाभ सम्पन्न वर्ग ने कमाया और विपन्न वर्ग और अधिक विपन्न होने के साथ अपने संसाधनों को भी (वैयक्तिक अथवा सामूहिक) बचाने में असफल रहा । अत: आवश्यकता इस बात की है कि, हासिये पर गये समुदायों को भी इस बात का अधिकार मिले कि वह नीति निर्णय में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके और पर्यावरणीय असंतुलन का बोझ सिर्फ उसके सिर न रहे और वो भी पर्यावरणीय सुरक्षा की दृष्टिकोण से न्यायोचित अधिकार जैसे स्वच्छ पेयजल, हवा, पर्यावरणीय इत्यादि प्राप्त कर सके । देशज समूहों को उनके अस्तित्व के कारण यह अधिकार है कि वो उस सीमायें स्वतंत्र रुप से निवास कर सकें, उनके अस्तित्व से उनकी जमीन के सम्बन्ध को स्वीकार किया जाना चाहिये क्योंकि यह उनकी संस्कृति, उनके आध्यात्मिक जीवन और उनके आर्थिकी का मूलभूत आधार है ।

"समूह आधारित सम्पत्ति के अधिकार" को सर्व प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय विधि अध्ययन केन्द्र (Center for International Environmental Law, CIEL) वर्ष 2000 में प्रतिपादित किया । CBPR (Community Based Property Rights) की अवधारणा स्थानीय समुदायों के विधिक अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण की दृष्टि से उपयोगी है । समूह आधारित सम्पत्ति का अधिकार पुरातन काल से स्थापित समुदाय के अधिकार जो कि परम्परागत रुप से उपयोग में लाया जा रहा था, से सम्बन्धित है । समूह आधारित सम्पत्ति का अधिकार स्थानीय समुदाय से अपनी सत्ता और अधिकारिता प्राप्त करता है, न कि उस राज्य से जहाँ वह स्थापित है । इसलिये इस बात की महत्ता बढ़ जाती है कि किसी भी विकासवादी योजना के लिये जिससे किसी क्षेत्र विशेष, समुदाय इत्यादि के अधिकारों का अतिक्रमण होता हो, वहां राज्य या अन्य संस्था उनकी पूर्वानुमति प्राप्त कर ही विकास योजनाओं की शुरूआत करें अन्यथा अधिकारों का अतिक्रमण एक नये संघर्ष को जन्म देता है जो शान्ति और विकास के लिये घातक है ।

5.4 मानवाधिकार के विविध आयाम

मानवाधिकार व्यक्ति और समूहों को विधिक रुप से प्रदत्त गारन्टी युक्त सुरक्षा है, जो उनके मौलिक स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा करता है । इसके तहत सम्पूर्ण नागरिक सांस्कृतिक, आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक अधिकार आते है, जो समान रुप से सभी जगह लागू हैं । मानवाधिकारों का सम्मान समाज में विसंगतियों संघर्षों और तनावों को दूर करने का एक युक्तियुक्त आधार प्रदान करता है, विशेषकर उन परिस्थतियों में जब विभिन्न हित आपस में टकरा रहे होते हैं । मानवाधिकार, शान्ति और विकास का एक सुसंगत आधार प्रदान करते हैं । विकास के क्रम में विभिन्न अवधारणाएं और आयाम सामने आये हैं, जो कहीं न कहीं मानवाधिकार को विस्तृत आधार प्रदान करतें हुये एक नयी दृष्टि भी देते हैं ।

5.4.1 मानव सुरक्षा की अवधारणा

मानव सुरक्षा की अवधारणा 1994 के महबूब उल हक के यू. एन. डी. पी. रिपोर्ट के पश्चात वैश्विक स्तर पर ज्यादा पहचानी जाने लगी । मानव सुरक्षा की अवधारणा मानवाधिकार

की अवधारणा को पुष्ट करता है, और यह मांग करता है कि मानवाधिकार प्रदान करने के साथ ही व्यक्ति को वो सारी परिस्थितियां मी सुलभ होनी चाहिये जिसमें वह अपने आप को किसी भी रुप में (भौतिक सामाजिक-आर्थिक मनोवैज्ञानिक आदि) असुरक्षित न महसूस कर सके । मानव सुरक्षा की अवधारणा इस तथ्य को इंगित करता है कि, सीमाओं की सुरक्षा मात्र से ही राष्ट्र की सुरक्षा नहीं है, अपितु उसमें रहने वाले लोगों की व्यापक सुरक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण है । सुरक्षा अध्ययन इस बात को दर्शाते हैं कि गरीबी, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन और सुशासन का अभाव राज्यों की सुरक्षा को कमजोर करने का कार्य करतें हैं, विशेष रुप से विकासशील और अविकसित राष्ट्रों के संदर्भ में । जबकि सामाजिक आर्थिक विकास को वास्तविक सुरक्षा का सार्वभौमिक आधार माना गया है ।

5.4.2 मानवाधिकार और राज्य सम्प्रभुता

सीधे तौर पर देखें तो व्यक्ति को प्रदत्त मानवाधिकार और राज्य की सम्प्रभुता में कोई हद नजर नही आता किन्तु जब हम इसका विश्लेषण करेंगें तो पायेगें कि राज्य के कार्य करने की प्रकृति ही इस द्वंद का निर्माण करती है । वस्तुत: मानवाधिकार व्यक्ति को निश्चित रुप से उस सम्भावना से बचाने के लिये प्रदान किये गये, जहाँ राज्य स्वयं एक आक्रान्ता के रुप में दिखाई देता है । व्यक्ति को ये सम्पूर्ण अधिकार राज्य के विरुद्ध ही प्राप्त हुये हैं । कई अफ्रीकी और एशियाई देशों के नागरिकों के ऊपर स्वयं राज्य द्वारा किये गये अत्याचार, कहीं न कहीं संयुक्त राष्ट्र की सामूहिक सुरक्षा पर आधारित नवीन अवधारणा "सुरक्षा दायित्व" (Responsibility to Protect) को उचित ठहराते हैं, और मानवाधिकार की सुरक्षा के निमित्त राज्य की सम्प्रभुत पर अंकुश लगाते हैं । सुरक्षा की अवधारणा ही राज्यों को असीमित अधिकार प्रदान करती है (उसकी सीमा मे रहने वाले लोगों की सुरक्षा के नाम पर), उन अधिकारों के उपयोग की अनुमति प्रदान करती है तथा इसको वैधानिक स्वरुप भी प्रदान करती है । इस अर्थ तक ये व्यक्ति की स्वतंत्रता और राज्य द्वारा महसूस किये जा रहे खतरे के मध्य सम्बन्ध को दर्शाता है । इसलिये लोकतांत्रिक राज्यों में, स्वेच्छाचारी राज्यों की तुलना में व्यक्ति उस सीमा तक अपने अधिकारों और स्वतंत्रता का उपयोग करता है जिस सीमा तक वह कोई खतरा महसूस नही करता । यदि राज्य उदारवादी -लोकतांत्रिक मूल्यों का संरक्षण करते हुये मानवाधिकार को उचित सम्मान प्रदान करता है, उस अर्थ तक व्यक्ति के मानवाधिकार और राज्य की सम्प्रभुता के बीच कोई संघर्ष नहीं दिखता, संघर्ष तब उत्पन्न होता है जब राज्य व्यक्ति के मानवाधिकारों का संरक्षक न होकर उसका आक्रांता बन जाता है । सम्प्रभुता आज पुरानी अवधारणा तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसका आशय राज्य में ऐसे प्रशासन से है, जहाँ विधि का शासन हो, उसकी परिधि में रहने वाले लोगों के मानवाधिकारों का सम्मान हो और उनकी मूलभूत स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा जाय ।

5.5 शान्ति और मानवाधिकार में अन्तर-सम्बन्ध

वर्तमान समय वैश्विक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर और वैयक्तिक स्तर पर विभिन्न तनाव और संघर्ष से गुजर रहा है । वैश्विक स्तर पर तेजी से फैलता हुआ उग्रवाद, सामाजिक अलगाव, तनाव, नस्लवाद इत्यादि समस्याएं आज विश्व जगत के समक्ष हैं । मानवाधिकार न सिर्फ वैयक्तिक स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा करता है, अपितु सामाजिक स्तर पर एक समरुपता का भाव भी पैदा करता है । एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के मानवाधिकार का सम्मान, सामाजिक समरसता के लिये आवश्यक है । आज की ज्वलंत समस्याओं के केन्द्र में कहीं न कहीं मानवाधिकार की समस्या निहित है, चाहे वह नस्लवाद के रुप में हो अथवा बढ़ते हुये उग्रवाद के रुप में । व्यक्ति के वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और सामूहिक अधिकारों का अतिक्रमण कहीं न कहीं उसे नकारात्मक दिशा की ओर ले जाता है । परन्तु यहां यह भी कहना समीचीन होगा कि, सिर्फ यही पक्ष समस्याओं के लिये उत्तरदायी नहीं है अपितु यह एक महत्वपूर्ण कारकों में एक है ।

व्यक्ति और समाज का विकास उसकी सुरक्षा से बहुत गहरे से जुड़ा हुआ है । सुरक्षा विकास के लिये आवश्यक है, और सुरक्षा के लिये विकास । वास्तव में यह विभिन्न बहुलताओं द्वारा, अपनी इच्छाओं और मांगो का विभिन्न स्तरों पर उचित स्थान के लिये संघर्ष के रुप में प्रस्फुटित और परिलक्षित होता है । समुदाय की इच्छाओं और मूल्यों को राजनैतिक और सामाजिक संरचनाओं से जोड़कर एक सुरक्षा का भाव पैदा करना चाहिये, और ये सुरक्षा का एहसास मानवाधिकारों के उचित सम्मान द्वारा ही सम्भव है । संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर भी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा और वैश्विक मानवाधिकारों के मध्य गहरे सम्बन्ध को दर्शाता है ।

5.6 संयुक्त राष्ट्रसंघ और मानवाधिकार

मानवाधिकारों का संरक्षण और उसको बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्रसंघ के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में भी यह आधारभूत सिद्धान्त के रुप में रहा है । चार्टर की प्रस्तावना, व्यक्ति के मूलभूत मानवाधिकार, उनके गरिमा, उनके अस्तित्व और पुरुष तथा महिला के समान अधिकारों के प्रति अपना विश्वास प्रकट करती है । मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र मानवाधिकारों के प्रति सम्मान और व्यक्ति के गरिमा को विश्व में स्वतंत्रता न्याय और शान्ति का आधार मानता है । संयुक्त राष्ट्र संघ का अपने अस्तित्व के समय से ही (1945 से) यह निरंतर प्रयास रहा है कि, विभिन्न माध्यमों से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य मानवीय उपायों द्वारा मानवाधिकार को पुष्ट करते हुए अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का सकारात्मक समाधान ढूंढा जाय। वैश्विक समाज के व्यक्ति को "भय से स्वतंत्रता" तभी प्राप्त हो सकती है, जब व्यक्ति के मानवाधिकार को सुरक्षित रखा जाय । संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 55 और 56 सदस्य राष्ट्रों को मानवाधिकार को मानने और उनके प्रति सम्मान के लिए बाध्य करते हैं । चार्टर का अनुच्छेद 62 और 68 भी संयुक्त राष्ट्र का मानवाधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता और विश्वास को दर्राता है । यद्यपि संयुक्ता राष्ट्र का चार्टर और उसके अंतर्निहित सिद्धांत मानवाधिकारों के प्रति विश्वास और निष्ठा को दर्शाते हैं

और अपने विभिन्न उपबंधों में सदस्य राष्ट्रों को मानवाधिकार के प्रति सजग रहने को कहते हैं, तथापि व 1976 के मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा ¼ International Bill of Human Rights) के अस्तित्व में आने तक संयुक्त राष्ट्र चार्टर में मानवाधिकार के विभिन्न उपबंध विधिक प्रकृति के नहीं थे । इस कमी को दूर करने के लिए, मानवाधिकारों के विभिन्न उपबंधों को जोड़ते हुए 1976 में मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अंगीकृत और लागू किया गया । संयुक्त राष्ट्र संघ विभिन्न निकायों की स्थापना कर मानवाधिकारों के विभिन्न पहलुओं को संरक्षित करने का यत्न करता है । संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाएं जो मानवाधिकारों से संबंधित हैं, निम्नवत हैं-

मानवाधिकार आयोग - इस आयोग की स्थापना आर्थिक और सामाजिक परिषद द्वारा फरवरी 1946 में हुयी । इस आयोग की स्थापना का उद्देश्य मानवाधिकार संबंधित मुद्दों पर अपनी रखना है। यह उन छह कार्यकारी आयोगों में से एक है, जिसकी स्थापना आर्थिक और सामाजिक ने की है । आयोग को निम्न बिन्दुओं पर सुझाव और रिपोर्ट देने को निर्देशित किया गया-

- मानवाधिकार की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा (International Bill of Human Rights) ।
- नागरिक स्वतंत्रता संबंधी, जिसमें विशेष रूप से महिलाओं की स्थिति, सूचना की स्वतंत्रता और अन्य ऐसे मामले ।
- अल्पसंख्यक वर्ग की सुरक्षा के संबंध में ।
- जाति, धर्म, रंग, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर विभेद से सुरक्षा संबंधी ।
- अन्य मानवाधिकार संबंधित मामले ।

वर्तमान में इस आयोग में 53 सदस्य हैं । आयोग में बहुमत के आधार पर निर्णय लिए। जाते हैं ।

- अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हेतु उप-आयोग ।
- महिलाओं की स्थिति हेतु आयोग ।
- संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवाधिकार आयुक्त - यह सामान्य सभा द्वारा 20 दिसम्बर 1993 के प्रस्ताव द्वारा अस्तित्व में आया ।

मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के प्रमुख उपबंध - 10 दिसम्बर 1948, का मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा पत्र आम जनमानस की उसके मानवाधिकारों के संघर्ष की विजय थी । इस घोषणा पत्र में 30 अनु0 हैं । इसके विभिन्न उपबन्धों को निम्न भागों में बाँटकर, मानवाधिकार के पक्ष देख सकते हैं-

- **सामान्य**- अनु0 1 सभी व्यक्तियों के स्वतंत्र जन्म लेने और गरिमा तथा अधिकारों के समान होने की बात करता है । अनु०2 इस घोषणा पत्र के विभिन्न अधिकारों को सभी व्यक्तियों के जाति, रंग धर्म, भाषा, राजनीति और विचार आदि के विभेद के बिना समान रुप से सभी के लिये लागू करने की बात करता है ।

- **नागरिक एवं राजनैतिक** - जीवन जीने का अधिकार एवम् स्वतंत्रता(अनु03), दास प्रथा और देह व्यापार का निषेध (अनु04), अमानवीय व्यवहार पर प्रतिषेध (अनु05), विधि के समक्ष समानता (06 से 11), आने-जाने की स्वतंत्रता (अनु013), विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनु019),इत्यादि एवम् राजनीतिक मानवाधिकार में सम्मिलित है ।
- **आर्थिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक अधिकार** - आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार(अनु022) काम का अधिकार एवम् रोजगार चयन स्वतंत्रता(अनु023), शिक्षा का अधिकार (अनु026) इत्यादि सम्मिलित हैं ।
- **मानवाधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा** - मानवाधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अन्तर्गत निम्न समाहित हैं-

1. मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र 1948;
2. नागरिक और राजनैतिक अधिकारों का कोवेनान्ट, 1966 (कुल 53, ठानु0);
3. आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का कोवेनान्ट 1966 (कुल 31 अनु0);
4. नागरिक और राजनैतिक अधिकारों का अतिरिक्त प्रोटोकाल ।

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों की प्रसंविदा 3 जनवरी 1976 से कार्य कर रही है । अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों की प्रसंविदा, सार्वभौमिक घोषणापत्र के विधिक प्रकृत के न होने की कमी को दूर करता है । यह एक ऐसी मशीनरी उपलब्ध कराता है जिसमें व्यक्ति मानवाधिकार सम्बन्धी अपनी शिकायत कर सकता है । मानवाधिकारों का संरक्षित एवम् पुष्ट करने की दिशा में 25 जून 1993 का वियना घोषणा पत्र भी एक महत्वपूर्ण कदम है जो मानवाधिकारों के सर्वमान्यता और अविभाज्यता की वकालत करता है और सबसे महत्वपूर्ण; विकास के अधिकार को मानवाधिकार के रुप में स्वीकार करता है ।

इसके अतिरिक्त इस दिशा में मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से क्षेत्रीय स्तर पर भी प्रयास किये गये हैं, जिसमें महत्वपूर्ण हैं- मानवाधिकारों का अमेरीकी कन्वेन्शन(1969), यूरोपीय सामाजिक चार्टर, मानवाधिकारों का अफ्रीकी चार्टर (1981), यूरोपीय सुरक्षा और सहयोग के लिये हेलसिंकी एक्ट (1975)तथा अरब मानवाधिकार आयोग इत्यादि ।

5.7 भारत में मानवाधिकार

भारतीय राष्ट्र निर्माता शुरु से ही मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में सजग रहे हैं और मानवाधिकारों को निरन्तर बढ़ावा देना और संरक्षित करने का कार्य किया है । भारतीय संविधान में मानवाधिकारों के विविध पक्षों को यथोचित स्थान दिया गया है । भारतीय संदर्भ में मानवाधिकारों का विश्लेषण दो तरह से कर सकेतें हैं-

1. भारतीय संविधान के तहत मानवाधिकार एवम्
2. 1994 का मानवाधिकार सुरक्षा कानून ।

भारतीय संविधान के भाग 3 में मूल अधिकारों के रुप में मानवाधिकार के संरक्षण के भाव को. पूर्णरुपेण अंगीकृत एवम् आत्मसात किया गया है । इसके अतिरिक्त भी नागरिक

एवम् राजनैतिक अधिकार तथा आर्थिक, सामाजिक एवम् सांस्कृतिक अधिकार अन्य अनुच्छेदों एवम् उपबन्धों में भी दृष्टिगत होते हैं, जैसे कार्य करने का अधिकार (अनु041), आराम करने का अधिकार (अनु043), सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने का अधिकार (अनु038) इत्यादि ।

28 सितम्बर 1993 को भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने अध्यादेश के द्वारा एक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया जिसका उद्देश्य राष्ट्र के भीतर उठने वाली मानवाधिकार सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण के लिये था । यह अध्यादेश 8 जनवरी 1994 को कानून के रुप में अस्तित्व में आया । 1994 का मानवाधिकार सुरक्षा कानून एक मानवाधिकार आयोग की स्थापना की बात करता है जिसमें -

1. एक अध्यक्ष होगा, जो कि माननीय उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहा हो ।
2. एक सदस्य होगा, जो माननीय उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश होगा ।
3. एक सदस्य, जो कि उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश होगा तथा
4. दो ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हे मानवाधिकार सम्बन्धी ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव होगा।

इसके अतिरिक्त अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष, अनुसूचित जाति- जनजाति आयोग के अध्यक्ष और महिला आयोग की अध्यक्षा इसके विभिन्न कार्यो के निष्पादन के समय (बसंनेम इ जव र) इसके सदस्य माने जायेंगे ।

मानवाधिकार आयोग ने भारत में मानवाधिकार के सरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है, विशेष रुप से नागरिक स्वतंत्रता के संदर्भ में । यद्यपि आयोग स्वयं से सीधे कोई कार्य नही कर सकता, और इसके कार्य की प्रकृति सलाहकारी है, तथापि आयोग ने मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है । पुलिस उत्पीड़न, कश्मीरघाटी, पूर्वोतर एवम् देश के अन्य क्षेत्रों में मानवाधिकार हनन के वादों के संदर्भ में मानवाधिकार आयोग ने राज्य संरचनाओं एवम् संस्थाओं को लताड़ लगाकर उचित दिशा में कार्य करने को बाध्य किया है तथा आम जनमानस का सामान्य रुप से राज्य संरचना पर अपना विश्वास बनाये रखने एवम् शान्ति, तथा विकास की दिशा में आगे बढ़ने का सम्बल प्रदान किया है । शान्ति तथा विश्वास निर्माण की दिशा में आयोग ने महत्वपूर्ण कार्य किया है ।

5.8 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकतें हैं कि, मानवाधिकारों के अभाव में समतामूलक समाज का निर्माण नहीं हो सकता और बिना समतामूलक समाज के शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती । स्थायी और सकारात्मक शान्ति के लिये मानवाधिकार एक आवश्यक शर्त है । मानवाधिकार मानव गरिमा को सुनिश्चित करने और व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास के लिये आवश्यक है । मानवाधिकारों का पुष्ट एवम् संरक्षित कर हम उग्रवाद एवम् नस्लवाद जैसी समस्याओं को बहुत हद तक कम कर सकतें हैं । मानव विकास एवम् सुरक्षा के लिये मानवाधिकार एक आवश्यक शर्त है। अन्तत: हम कह सकते हैं कि, वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति एवम् विकास के लिये, मानव गरिमा और स्वतंत्रता को बनाये रखने तथा मूल्यों के संवर्धन के लिये मानवाधिकार एक आवश्यक शर्त है ।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. मानवाधिकार क्या है? इसके विकास के विभिन्न चरणों को बतायें ।
2. विभिन्न पीढ़ी के मानवाधिकारों की विवेचना करें ?
3. 3. मनवाधिकार, समतामूलक विकास की आवश्यक शर्त है । विवेचना करें ।
4. मानवाधिकार व शान्ति का अंतर्सम्बन्ध क्या है ?
5. वैश्विक शान्ति और विकास के लिये मानवाधिकार कैसे और क्यों आवश्यक हैं ?
6. संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार संरक्षण की भूमिका पर टिप्पणी करें ।

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दाधीच, नरेश (सम्पादित), दुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड इन्टरनेशनल एण्ड इन्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
2. मिश्रा, ए. डी., एवं एस. नारायानासामी, वर्ल्ड क्राईसिस एण्ड द गाँधीयन वे, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2009
3. कृष्ण कुमार रितु एवं कमला रत्तू, समग्र गाँधी दर्शन : गाँधी चिन्तन और वर्तमान प्रसंग, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2009
4. रितुप्रिया शर्मा, गाँधी और मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2008
5. मोहन्ती, जगन्नाथ, ह्यूमन राइटस एडुकेशन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2008
6. दाधीच, नरेश (सम्पादित), विमन, कॉफ्लिक्ट रेसोल्यूशन एण्ड कल्चर : गाँधीयन परस्पेक्टिव, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
7. कुमार, महेन्द्र, थ्योरिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1981

इकाई-6

शान्ति प्रयास और संयुक्त राष्ट्र संघ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा पत्र में अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना की व्यवस्थाएँ

6.2.1 महासभा

6.2.2 सुरक्षा परिषद्

6.2.3 अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये खतरों और उल्लंघन पर व्यवस्थाएँ

6.2.4 अन्तरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिये शान्तिपूर्ण तरीके

6.3 अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की अभिवृद्धि और संयुक्त राष्ट्र संघ

6.3.1 संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य प्रणाली एक आकलन

6.3.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की शान्ति स्थापना प्रयास में आने वाली बाधाएं

6.4 सारांश

6.5 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य निम्न तथ्यों को समझाना हैं -

- अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर में शान्ति की व्यवस्थाएँ ।
- अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना में सुरक्षा परिषद् की भूमिका ।
- अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका ।
- अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना में आने वाली मुख्य बाधाएँ ।

6.1 प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना 24 अक्टूबर, 1945 को हुई थी, जिसने अपनी स्थापना के 60 वर्षों से अधिक पूर्ण कर लिए हैं । संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् नये अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के मानकों को निर्धारित करना जिससे राष्ट्र राज्य आपस में एक-दूसरे के साथ आचरण कर सके, अनुच्छेद 2 में इन्हें स्पष्ट किया है । ये मानक थे - (1) सार्वभौमिक समानता (2) निहस्तक्षेप (3) युद्ध के द्वारा विवादों को न सुलझाना (4) विवादों को हल करने का शान्तिपूर्ण तरीका ।

यही नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ संस्थागत स्तर पर शान्ति की स्थापना के लिए एक अधिक व्यापक और परिष्कृत संगठन था जिसमें यह सभा एक विश्वमंच और जनमत के निर्माण का प्रभावी माध्यम थी । सुरक्षा परिषद् शान्ति स्थापना के लिये प्रभावी प्रयास करने का साधन थी और शान्ति स्थापना के व्यापक अधिकार उसे प्राप्त थे । आर्थिक तथा सामाजिक विकास की प्राथमिकताओं को निर्धारित करने के लिए सामाजिक एवं आर्थिक परिषद् थी । इस क्रम में

औपनिवेशिक देशों में शान्तिपूर्ण सत्ता हस्तान्तरण के लिये न्यास परिषद् स्थापित की गई । सभी गतिविधियों को समन्वित करने के लिये सचिवालय और विवादों को कानूनी दृष्टि से सुलझाने और निर्णय देने के लिये अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किया गया । यों यह कहना अनुचित नहीं होगा कि राजमय द्वारा अन्तरराष्ट्रीय संबंधों को संचालित करने का यह सशक्त माध्यम था जिसे सदस्य देशों के स्थायी प्रतिनिधियों ने एक नया रूप प्रदान किया । उनके राजमय से ऐसा आभास होता - कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में नयी प्राथमिकताओं को प्राप्त करना है । यों संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ को अपनी भूमिका को निभाने में कई कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा है ।

6.2 संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा पत्र में अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना की व्यवस्थाएँ

अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में शान्ति स्थापित करने के लिये यह आवश्यकता प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ही अनुभव की जाने लगी कि एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन की इस कार्य के लिये आवश्यकता है । दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इस आवश्यकता को ओर भी गम्भीरता से लिया गया और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में इस विचार को ओर व्यापक रूप से स्थापित किया गया । हम उन व्यवस्थाओं और सिद्धान्तों का अध्ययन यहाँ कर रहे हैं ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना 24 अक्दूबर, 1945 में हुई । इस संगठन का, संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र रहा है । इसके अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा के अनुसार 'हम सब संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिये व्यक्ति के अधिकारों में अपनी आस्था को दोहराते हैं और एक समानता के अधिकारों पर आधारित अन्तरराष्ट्रीय समाज की स्थापना करते हैं । जो अपने सम्बन्धों में सशस्त्र साधनों का उपयोग नहीं करेगा एवं सभी की उन्नति और समृद्धि के लिये अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्थाओं का प्रयोग करेगा जिससे सबकी उन्नति हो सके । यह घोषणा मुख्य रूप से संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र के अनुच्छेद एक में हुई है । इसके अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य हैं-

(1) अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाये रखना, अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये खतरों को टालने के लिये प्रभाव सामूहिक कदम उठाना, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आक्रामक व्यवहार और शांति व्यवस्था के उल्लंघन को रोकना एवं शान्तिपूर्ण तरीकों से विवादों को सुलझाना, जिनसे कि अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के भंग होने का खतरा हो ।

अनुच्छेद एक में शान्ति व्यवस्था के लिये व्यापक दृष्टिकोण को विकसित किया गया है जिसमें-

1. शान्ति व्यवस्था को बनाये रखने
2. शान्ति के लिये खतरों को समझते हुए सामूहिक कार्यवाही
3. अन्तरराष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझाने की बात कही गयी है।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिये यह आवश्यक माना गया कि राष्ट्र राज्य अपने व्यवहार में सार्वभौमिक समानता के सिद्धान्त पर कार्य करेंगे, जिसका

आधार है प्रत्येक राष्ट्र चाहे वह छोटा हो या बड़ा, वे सब बराबर है । दूसरा यह कि राष्ट्र राज्य अपने आपसी विवादों को शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझायेंगे । ये दो सिद्धान्त मुख्य रूप से राष्ट्र राज्यों के बीच शान्ति की स्थापना लिये मुख्य आधार है ।

अन्तरराष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ के दो अंगों की व्यापक व्याख्या करना आवश्यक है । इनमें पहला अंग है महासभा **(General Assembly)** और दूसरा है सुरक्षा परिषद् **(Security Council)**

6.2.1 महासभा

संयुक्त राष्ट्र संघ का महासभा एक मुख्य अंग है । इसके सभी सदस्य ही संयुक्त राष्ट्र के सदस्य हैं। वर्तमान में महासभा के सदस्यों की संख्या 192 है । वैसे महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रमुख मंच है जहां सभी सदस्य समानता के सिद्धान्त आधार पर कार्य करते हैं । महासभा संयुक्त राष्ट्र संघ से संबंधित सभी गतिविधियों पर विचार विमर्श करती है । महासभा के कार्यों से जुड़े अनुच्छेद 10 का उल्लेख किया जा सकता है । इसके अनुसार महासभा को यह शक्ति प्रदान की गई है वह घोषणा पत्र के अधिकार क्षेत्र से जुड़े किसी भी प्रश्न या मुद्दे पर चर्चा कर सकती है और उस पर कार्यवाही के लिये अपनी सिफारिश करने का कार्य कर सकती है ।

महासभा को अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के प्रश्न पर विचार करने और कार्यवाही करने संबंधी व्यवस्था का उल्लेख अनुच्छेद 11 में किया गया है, जिसमें शान्ति और सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर सुरक्षा परिषद् द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रश्नों पर ही विचार-विमर्श का अधिकार प्राप्त है । इस अनुच्छेद में सुरक्षा परिषद् की स्थिति मजबूत दृष्टिगत होती है किन्तु यहाँ 1950 के शान्ति के लिये एकता प्रस्ताव (Uniting for peace resolution) महत्त्वपूर्ण है जो सुरक्षा परिषद् की आम सहमति न बनने की स्थिति में शान्ति और व्यवस्था के लिये निर्णय लेने की महत्त्वपूर्ण शक्तियां महासभा को प्राप्त हो जाती है । इस प्रस्ताव के उल्लेख के पश्चात् हम यह स्पष्ट रूप से समझ ले कि महासभा अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये विचार-विमर्श का महत्त्वपूर्ण मंच है, जहाँ सभी राष्ट्र अपने विचारों को अभिव्यक्ति करते हुए शान्ति की आवश्यकता और उसकी उपयोगिता को स्थापित करते हैं ।

6.2.2 सुरक्षा परिषद्

सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्णायक अंग है । सुरक्षा परिषद् में 1965 के पश्चात् 15 सदस्य देश है जिनमें से पाँच स्थायी सदस्य है और 10 अस्थायी सदस्य है, जिन्हें 2 वर्ष के कार्यकाल के लिये महासभा द्वारा चुना जाता है । इसके स्थायी सदस्य है अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रान्स और साम्यवादी चीन (1971 के पश्चात् साम्यवादी चीन को राष्ट्रवादी चीन के स्थान पर सदस्यता दी गई है) ।

सुरक्षा परिषद् की शक्तियाँ, मुख्य रूप से उसके सदस्यों ने अनुच्छेद 24 में प्रदान की है । इसके अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रभावी कार्यवाही के लिये उसके सदस्य सुरक्षा परिषद्

को यह प्रमुख दायित्व प्रदान करते हैं कि वह अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना करे और इसकी स्थापना के लिये वह सदस्य देशों की ओर से कार्यवाही कर सकती है ।

कार्यवाही करने के लिये सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करेगी । इसके लिये सुरक्षा परिषद् को स्पष्ट रूप से शक्तियां प्रदान की गई है । अनुच्छेद 25 सदस्य देशों के लिये सुरक्षा परिषद् को कार्य योजना निर्धारित करने का अधिकार प्रदान करते हैं और अनुच्छेद 26 सुरक्षा परिषद् को सैनिक कार्यवाही का अधिकार भी प्रदान करता है।

हम अपने विश्लेषण के लिये निषेधाधिकार; टमजव च्वूमतद्ध की चर्चा कर सकते हैं । इसके अनुसार स्थायी सदस्यों की सहमति के आधार पर ही सुरक्षा परिषद् अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये गतिविधि कर सकती है । वीटो पावर सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को एक विशेष स्थिति प्रदान करता है और वे ही प्रभावी अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । वैसे यह व्यवस्था अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आलोचना का कारण भी रही है और राष्ट्र राज्यों की समानता के सिद्धान्त के विरोध में है ।

6.2.3 अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये खतरों और उल्लंघन पर व्यवस्थाएँ

संयुक्त राष्ट्र संघ को अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्ति व्यवस्था के लिये व्यापक अधिकार प्राप्त हैं जो उसकी भूमिका को और भी अधिक महत्तपूर्ण बनाते हैं । 1945 में जो व्यवस्थाएं की गईं उनका उल्लेख आवश्यक है । घोषणा पत्र के अनुच्छेद 39 में सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार है कि वह यह निर्धारित करें कि अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये किसी खतरे का अस्तित्व है अथवा अन्तरराष्ट्रीय शान्ति भंग हुई है । इन खतरों पर कार्यवाही करने से पहले वह सम्बन्धित विवाद के पक्षों से विवाद को सुलझाने के तरीकों सुलझाने की बात करेगी । अनुच्छेद 40 के अनुसार इन तरीकों की असफलता पर भी सुरक्षा परिषद् विचार करते हुए आगे की कार्यवाही करने का अनुमोदन करेगी । इस क्रम में अनुच्छेद 39 और 40 पर यह कहा जा सकता है कि वे सुरक्षा परिषद् को अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और व्यवस्था से सम्बन्धित व्यापक अधिकार प्रदान करते हैं ।

अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और व्यवस्था को बनाये रखने के लिये सुरक्षा परिषद् को अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है । ये प्रतिबन्ध आंशिक है और विभिन्न सम्बन्धों को रोकते हैं जिनमें सम्पर्क और संसाधनों की उपलब्धता संघर्षरत देशों को प्राप्त नहीं होती है । इस अनुच्छेद का आशय यह है कि सुरक्षा परिषद् विवादों को सम्बन्धों को बाधित करने के माध्यम से रोकना चाहती है ।

अनुच्छेद 42 सुरक्षा परिषद् को अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिये शक्तियां प्रदान करता है जिसके अन्तर्गत वह यह आकलन करती है कि अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत की कार्यवाही प्रभावी नहीं हो पायी और विवाद से जुड़े पक्षों पर सैनिक कार्यवाही की आवश्यकता है, जिसे क्रियान्वित करने का दायित्व संयुक्त राष्ट्र संघ पर है । अनुच्छेद 42 सुरक्षा परिषद् सैनिक गतिविधियों का प्रदान करता है । अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में यह अनुच्छेद शान्ति के लिये सैनिक गतिविधि के औचित्य को स्थापित करने वाली व्यवस्था है । सातवें अध्याय की यह व्यवस्था सामूहिक सुरक्षा के विचार की कल्पना को व्यावहारिक रूप प्रदान करने से जुडी है,

जो अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के विचार से टकराहट में है । यहीं पांचों स्थायी सदस्यों की सहमति से जुडा निषेधाधिकार भी है इस पर शान्ति आन्दोलनों से जुडे विद्वानों को आपत्ति है ।

6.2.4 अन्तरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिये शान्तिपूर्ण तरीके

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में सुरक्षा परिषद् को विवादों को सुझाने के लिये शान्तिपूर्ण तरीकों की सिफारिश करने का अधिकार प्राप्त है । अनुच्छेद 33 के अनुसार विवाद से जुड़े पक्ष निम्न तरीको से अपने विवाद सुलझायेंगे । वार्ता, जाँच, मध्यस्थता, पंचार, न्यायिक निर्धारण इनको क्षेत्रीय या परस्पर विवादों को निपटाने के तरीकों का प्रयोग करेंगे जिनसे कि अन्तरराष्ट्रीय शांति को खतरा उत्पन्न होता है । सुरक्षा परिषद् जब चाहे विवादों से जुडे पक्षों को इन तरीकों से अपने विवाद सुलझाने के लिये कह सकती है । 34 सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार देता है कि वह जब चाहे तब विवाद से जुडे मुद्दों की जाँच कर है और यह निश्चित कर सकती है विवाद अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये कितना बड़ा खतरा है । अनुच्छेद 34 सुरक्षा परिषद् को इस आकलन का मौका देता है कि वह अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा के लिये खतरों का आकलन और उसके स्वरूप को निर्धारित करे ।

अनुच्छेद 35 के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी सदस्य देश ऐसे किसी भी प्रश्न को सुरक्षा परिषद् अथवा महासभा के सामने ला सकता है जो अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये खतरा है । वैसे इस तरह के विवादों को गैर संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देश भी उठा सकते हैं ।

अनुच्छेद 36 में सुरक्षा परिषद् विवादों से जुड़े पक्षों से यह आग्रह कर सकती है कि वे अनुच्छेद 33 में उल्लेखित शान्तिपूर्ण तरीकों से अपने विवादों को निपटा ले । यदि सुरक्षा परिषद् को यह लगता है कि शान्तिपूर्ण तरीकों से विवाद नहीं सुलझ रहा है तो वह संयुक्त राष्ट्र संघ घोषणा के अनुसार अन्य तरीकों के प्रयोग की सिफारिश कर सकती है ।

विवादों को शान्तिपूर्ण तरीकों से सुलझाने की व्यवस्था सुरक्षा परिषद् और संयुक्त राष्ट्र संघ को शान्ति स्थापना के लिये महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्तपूर्ण भूमिका है । ये व्यवस्थाएँ संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़े विभिन्न संगठनों के योगदान को भी स्पष्ट करते हैं ।

6.3 अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की अभिवृद्धि और संयुक्त राष्ट्र संघ

अपने निर्माण के 65 वर्षों से संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा से जुड़े कई विवादों को सुलझाने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । हम अपने विश्लेषण में विवादों का उल्लेख नहीं कर रहे हैं वरन् हम उन प्रवृत्तियों का उल्लेख कर रहे हैं जिनसे कि अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना और संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़ी विभिन्न परिस्थितियाँ स्पष्ट होती हैं ।

3.1 संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य प्रणाली : एक आंकलन

वैसे संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में तत्कालीन शक्ति संतुलन का प्रतिबिम्ब है । इसके प्रमाण रचरूप महाशक्तियों के पारस्परिक संबंधों का आकलन आवश्यक है । महाशक्तियों के बीच शांति और उसकी स्थापना के लिये आम सहमति और उसकी स्थापना के लिये एकमत होना आवश्यक था । मूलत: विशेषाधिकार इसका व्यावहारिक अर्थ है । यही नहीं, संगठन के संचालक में अमेरिका, सोवियत संघ, इंग्लैण्ड, फ्रांस और राष्ट्रवादी चीन इसी संतुलन को अभिव्यक्ति देते हैं । अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के व्याख्याकार यह स्वीकार करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना होने के साथ ही अन्तरराष्ट्रीय संबंध में शक्ति संतुलन बदल गया । विशेषकर साम्राज्यवाद के अंत ने फ्रांस और इंग्लैण्ड की स्थिति को पूरा ही बदलकर रख दिया । यही नहीं, राष्ट्रवादी चीन का अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में हस्तक्षेप साम्यवादी चीन के उदय के साथ ही समाप्त हो गया । जो विद्वान संयुक्त राष्ट्र संघ को महाशक्ति अन्तरराष्ट्रीय संबंधों की अवधारणा मानते हैं, वे इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने व्यावहारिक रूप में शीत युद्धकालीन व्यवस्था से संचालित होता है और इस मंच का उपयोग दोनों महाशक्तियाँ क्रमश: अमेरिका और सोवियत संघ, शीतयुद्ध के संघर्ष को ही संचालित करने के लिये करते हैं । परिणाम यह रहा कि 1956 में ही शीतयुद्ध में लिप्त पक्षों को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश मिल गया, जबकि शीतयुद्ध के तनावों में शिथिलता का आभास होता है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के क्रम में ही दो और नये विकासों का उल्लेख 1990 के दशक से पहले के विश्लेषण में किया जा सकता है-पहला है एशिया और अफ्रीका के देशों मे स्वाधीनता का उदय, जिसके फलस्वरूप अन्तरराष्ट्रीय राजनय के नये केन्द्रों का उदय होना और ये देश अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में न केवल बहुमत में थे वरन् इन राज्यों ने अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में अपनी नयी प्राप्त स्वाधीनता का अहसास अपनी विभिन्न मांगों के प्रति व्यापक अन्तरराष्ट्रीय चेतना व विकास के द्वारा करवाया । ये सब राज्य अपने औपनिवेशिक देश से परिचित थे और लगातार विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय मंचों के माध्यम से अपने आपको अभिव्यक्त भी कर रहे थे । अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के इस वंचित पिछडे और विकासशील समूह ने अपने बहुमत का संपूर्ण अहसास 1970 और 1980 के दशक में करवाया । अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के प्रभावी सत्ता सम्पन्न अल्पमत ने इन राज्यों के प्रभावों को रोकने के लिये जो राजनय किया उसे बहुमत बनाम अल्पमत का राजनय कहा जा सकता है ।

अन्तरराष्ट्रीय संबंधों को दूसरे महत्त्वपूर्ण बदलाव के अन्तर्गत साम्यवादी चीन का उल्लेख किया जा सकता है । 1949 में साम्यवादी चीन की स्थापना अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में प्रभावी असहमति से हुई जिसके द्वारा अमेरिका ने न केवल साम्यवादी चीन की संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्यता को रोका वरन् उसे अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में मान्यता भी नहीं दी । किन्तु अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में चीन के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण 1970 के दशक में अमेरिका ने न केवल चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया वरन् उसे सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता भी दी । साम्यवादी चीन का प्रयास रहा कि वह विकासशील देशों का संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रभावी व्याख्याकार बन जाये ।

इन अन्तरराष्ट्रीय बदलावों के दौरान दो प्रमुख घटनाओं का उल्लेख है- पहली घटना 1950 में कोरिया युद्ध के समय उत्पन्न गतिरोध को समाप्त करने के लिये शांति के एकता प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया । इस क्रम में 1965 में सुरक्षा परिषद् के पुनर्गठन का उल्लेख किया जा सकता है । इस समय यह अहसास तेजी के साथ होता है सुरक्षा परिषद् समकालीन अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के बदलाव का प्रतिनिधित्व नहीं करती है अत: उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर इस प्रभाव को दूर किया जा सकता है । वैसे वर्तमान प्रसंग में यह चर्चा गलत नहीं होगी कि अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में प्रभावशाली अन्तरराष्ट्रीय मंच के रूप में प्रयोग की प्रशंसा की गई रंगभेद नीति विरोधी आंदोलन का संचालन कर भारत ने अपनी विशेष भूमिका निभायी । तीसरी दुनिया के देशों में भारत अग्रणी रहा है जिसने 1993 में जिनेवा स्थिति विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू. एच. ओ.) की 25 लाख डॉलर का तथा वियना स्थित संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (यूनिडो) को 16 लाख डॉलर कीमत के सामानों की आपूर्ति की है । इसके अलावा विश्व खाद्य कार्यक्रम के लिए 11 लाख डॉलर, राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन की 6 लाख 79 हजार डॉलर तथा खाद्य और कृषि संगठन को 5 लाख 2 हजार 500 डॉलर का सामान दिया गया ।

1990-91 में अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में व्यापक परिवर्तन का दौर आरम्भ हुआ । इसके अन्तर्गत 1990-91 में खाड़ी युद्ध का उल्लेख आवश्यक है जिसमें अमेरिकी सैनिक गतिविधियों के प्रस्ताव को सोवियत संघ की सहमति प्राप्त थी और अमेरिकी नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सैनिक कार्यवाही की, जिसमें इराक की शीघ्र पराजय ने अमेरिका को न केवल सैनिक प्रभुत्व प्रदान किया वरन् अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में विशेषकर शांति के लिये उत्पन्न खतरों को दूर करने के लिये नयी भूमिका का आरम्भ हुआ । इस से 1987 से 1993 तक के वर्षों में शांति रक्षक दल गठित किये गये जिसमें कुल 10 हजार सैनिक थे, लेकिन 1993 में इनकी संख्या 80 हजार से अधिक हो गई है । शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् से संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति स्थापना कार्यों का महत्व बहुत बढ़ गया है जिनमें पूर्व यूगोस्लाविया, सोमानिया हेती, रवांडा, खाड़ी क्षेत्र उल्लेखनीय हैं ।

शांति सेवाएँ वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्थाओं का स्थायी अंग गई हैं । उन्हें शांति की रचनात्मक स्थापना और पूर्ण त्याग की भावना से कार्य करने के लिये शांति का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है । संयुक्त राष्ट्र संघ में शांति बनाए रखने की व्यवस्था कई कालखण्डों से गुजरी है जिसमें कुछ कार्यकाल तो नये प्रयोगों का रचनात्मक विकास के विस्तार का नजर आता है । साथ ही कठिन असफलताओं और भ्रांतियों के कालखण्ड भी नजर आते हैं । सन् 1980 के दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य क्षेत्रीय संगठन एक निराशाभरी रणनीति, राजनैतिक, आर्थिक और मानवतावादी प्रश्नों पर गंभीर और भयावह संघर्षों का कालखण्ड दृष्टिगत होता है । वर्तमान में उन प्रारूपों को बदलने की आवश्यकता और उन नये नियमों तथा पद्धतियों की आवश्यकता है जो तनावों की व्यवस्था कर सकें । शीतयुद्धोत्तर विश्व में डॉगहेमरशोल्ड के शांति व्यवस्था संबंधी उपाय अव्यावहारिक हो गये हैं । 1989 से 1993 तक

90 सशस्त्र संघर्ष हुए हैं । 1993 में एक भी राज्य के बीच संघर्ष नहीं हुआ है । सभी 47 सशस्त्र संघर्ष आंतरिक संघर्ष ही थे ।

3.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की शान्ति स्थापना प्रयास में बाधाएँ

वर्तमान में इस बात की आवश्यकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति व्यवस्था बनाये रखने के विभिन्न प्रयासों को आधुनिक और सुव्यवस्थित बनाया जाये । संयुक्त राष्ट्र संघ विशेषकर सुरक्षा परिषद् इस समय कठिन चुनौती का सामना कर रही है, जहाँ उसकी विश्वसनीयता दाव पर है । शांति की स्थापना के लिये नई भूमिका विशेषकर यूरोप, लेटिन अमेरिका और हिन्द चीन में नई व्याख्याओं को जन्म देती है, जिसकी मुख्य आवश्यकता है सुरक्षा परिषद् की प्रभावहीनता को समाप्त करने की ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्थाओं को सुधारने के लिये यह प्रस्ताव दिया जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ से विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया जाए । क्लार्क सोहन के प्रस्ताव में व्यापक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन सुझाए गए हैं । उनके अनुसार महासभा विश्व व्यवस्थापिका के रूप में परिवर्तन हो जाए और सुरक्षा परिषद् कार्यकारी परिषद् बन जाए जो महासभा के प्रति उत्तरदायी हो और उसे हटाने का अधिकार भी महासभा को प्राप्त हो । साथ ही साथ यह निषेधाधिकार से भी मुक्त हो । इस प्रस्ताव का महत्व यह है कि इसमें बदली हुई विश्व व्यवस्थाओं को भली-भाँति प्रतिबिम्बित किया गया है । वैरने इस प्रस्ताव के स्वीकार होने का कोई अवसर नहीं है । यों सिडनी डी बेली ने विशेषाधिकार को नकारात्मक है । उनके अनुसार यह सहयोग को विकसित नहीं करता है बल्कि कार्यवाही को रोकता है जिससे संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रतिष्ठा घटती है ।

वैसे वर्तमान में अन्तरराष्ट्रीय बदलावों को ध्यान में रखते हुए महासभा के प्रस्ताव नवम्बर, 1965 के अनुसार सुरक्षा परिषद् की संख्या बढ़ाकर ग्यारह से पन्द्रह कर दी जाए । इसमें पांच स्थायी सदस्य, पांच अफ्रीकी, एशियाई देश, एक पूर्वी यूरोपीय देश, दो लेटिन अमेरिकी देश और दो पश्चिमी यूरोप एवं अन्य देशों के लिए निर्धारित किए गए । पश्चिमी देश इस प्रस्ताव के लिए बहुत मुश्किल से सहमत हुए । जहां तक पश्चिमी देशों का सवाल है वे जापान एवं जर्मनी के लिए स्थायी सदस्यता के प्रश्न के लिए तैयार हैं । जापान इस विचार पर सहमत है कि भारत के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय शक्तियों-ब्राजील, इजिप्ट और नाईजीरिया को भी सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता दे दी जाए । एक भारतीय टिप्पणी के अनुसार यदि जर्मनी स्थायी सदस्य होता है तो यूरोपीय देशों को अत्यधिक प्रतिनिधित्व मिल जाएगा । यह आभास भी हो सकता है कि यह 7 देशों के आर्थिक समूह और उसके सैनिक संगठन नाटो का राजनैतिक स्वरूप है । यों वर्तमान में इस प्रश्न पर सबकी सहमति है कि सुरक्षा परिषद को विस्तृत किया जाए किन्तु बदली हुई परिस्थिति में सुरक्षा परिषद् के विस्तार की संभावनाएँ कम हैं । इस प्रश्न पर भारत के दृष्टिकोण का आकलन आवश्यक है । भारत इस बात का आग्रह करता है कि उसे सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता मिलनी चाहिए क्योंकि वह बड़ी जनसंख्या वाला देश है और उसने संयुक्त राष्ट्र संघ में गतिविधियों एवं पक्ष में वातावरण बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । भारत ने सुरक्षा परिषद् को विस्तृत करने के अलग-अलग आधारों

पर जो रचायी सदस्यता के मापदण्ड निर्धारित किए जाते हैं उनका विरोध किया है । यह सुझाव दिया जाता है कि जापान एवं जर्मनी की स्थायी सदस्यता बिना किसी क्षेत्रीय सहमति के अनिवार्य कर दी जाए । भारतीय प्रतिनिधि टी. पी. श्रीनिवासन ने विस्तार के लिए गठित कार्यदल को यह बतलाया कि महासभा सदस्यता और सुरक्षा परिषद् के अनुपात को 1945 के आधार पर ही बनाया रखा जाए । उस हिसाब से वर्तमान में सुरक्षा परिषद् की सदस्यता 29 होनी चाहिए । भारत के स्वयं के सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य होने की आशा, पाकिस्तान के विरोध और पश्चिमी शक्तियों के नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण अधिक कठिन हो गयी है । सन् 1994 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सचिवालय ने एक महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उसका नाम था-विचार के लिए प्रारूप । महासभा के सचिव बुतरस घाली का नये प्रश्न पर चिन्तन मुख्यत: विकासशील देशों की कार्यसूची ही नजर आती है जब संयुक्त राष्ट्र संघ में 1994 में प्रतिवेदन का प्रारूप प्रस्तुत किया तब विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने समूह 77 के प्रस्ताव का विरोध किया और मानव विकास के प्रस्तावों को अस्वीकार किया और आगे चलकर महासचिव ने भी इसे बीच में ही छोड दिया । वैसे बदलाव के ये प्रस्ताव मूलत: उत्तर-दक्षिण विवाद का, उनके दबावों का स्वरूप लेते जा रहे है जिससे संयुक्त राष्ट्र के बदलाव में बाधा आ रही है ।

शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् यह प्रश्न लगातार उठ रहा है कि बदले हुए अन्तरराष्ट्रीय संदर्भों संयुक्त राष्ट्र संघ की उपयोगिता स्वत: ही कम हो गई है । अत: अमेरिका अपने वित्तीय साधनों को संयुक्त राष्ट्र संघ के लिये क्यों जुटायें । परिणाम यह है कि संयुक्त राष्ट्र में दिन-प्रतिदिन वित्तीय संकट बढ़ता जा रहा है जिससे अपने आवश्यक कार्य को सम्पन्न करने में बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं। इसके स्थायी सदस्य अपना ऋण नहीं चुका रहे हैं जिसमें अमेरिका अग्रणी देश है । उस पर कुल बकाया राशि अब 1.18 अरब डॉलर हो गई है । रूस पर भी करोंडों डॉलर बकाया है । जब उसके सदस्य राष्ट्रों पर ही 3.1 अरब डॉलर की राशि बकाया हो गई है तो वह अपने बकाया कार्यों को कैसे पूरा कर सकता है ।

अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में शीत युद्ध की समाप्ति यों तो अन्तरराष्ट्रीय संबंधों से तनावों की समाप्ति तो लगती है, किन्तु अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के दबाव पूरी तरह से समाप्त नहीं हुए हैं वरन् व्यापक सैद्धान्तिक संदर्भों में यह लगता है कि अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में कुछ प्रश्नों पर आपसी तनावों में वृद्धि हुई है और सैद्धान्तिक संदर्भों में ही मानव अधिकार के प्रश्नों ने ही नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में प्रजातांत्रिकरण और उदारवादी सिद्धान्तों को अधिक आघात पहुँचाया है ।

अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के बदलाव के क्रम में भारत की अधिक सक्रिय भूमिका आवश्यक है क्योंकि विकासशील राष्ट्रों की आवश्यकताओं, उनके दबावों और उनकी स्थितियों का एक रचनात्मक आकलन भारत के पास है और उसका प्रभाव उपयोगी हो सकता है ।

यों यह कहा जाता है कि शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् अन्तरराष्ट्रीय संबंध एकध्रुवीय हो गये हैं और अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में एक ही शक्ति है जिसका कोई अर्थ है । वैसे समय के साथ-साथ यह साफतौर पर उभरकर आया है कि यह अन्तरराष्ट्रीय संबंधों की बहुत ही सरलतम

व्याख्या है सही तो यह है कि अन्तरराष्ट्रीय संबंधों में सत्ता के नये केन्द्र उभरकर सामने आ रहे हैं और इनमें भारत भी एक मुख्य केन्द्र है । इन सभी शक्तियों के आपसी संबंध और दृष्टिकोण संयुक्त राष्ट्र की कार्यप्रणाली और को प्रभावित करेंगे । इन सभी राज्यों की नयी रचनात्मक भूमिका संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्ति प्रदान करेगी ।

कुछ क्षेत्रों में यह माना जाता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ 1990-91 के दौरान अमेरिकी नीतियों को बढ़ावा देने का माध्यम बनकर रह गया है । जो शक्तियां उसे इस स्थिति से उबार सकती थीं वे कमजोर, असंगठित, उदासीन और निष्क्रिय होती गयीं । यूरोपीय राष्ट्र, जापान, रूस और चीन सभी अमेरिका की दखलंदाजी को नजरअंदाज किये हुए है । इन परिरिथतियो में संयुक्त राष्ट्र व्यवस्थाओं को प्रजातांत्रिक तथा कमजोर देशों को संरक्षण देने वाली बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के लिये अधिक आवश्यक है कि ऐसे समूहों की आवश्यकताओं और चेतना विकसित करने वाले मंच के रूप में फिर से स्थापित किया जाये और उन प्रक्रियाओं को तीव्र किया जाये जो इस काम को आगे बढ़ाती हैं ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की 60वी वार्षिक तीन दिवसीय बैठक में विश्व के लगभग 170 देशों के राष्ट्राध्यक्षों व प्रधानमंत्रियों ने विश्वव्यापी गरीबी और विशेष रूप से अफ्रीका के उप सहारा देशों में भूखमरी के कगार पर पहुँच चुके आम लोगों के लिये आर्थिक सहायता के मुद्दे पर विचार किया गया।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के आकड़ों को देखा जाए तो दुनिया के सर्वाधिक धनाढ्य 500 लोगों की आम गरीबी रेखा से नीचे गुजर बसर रही 41 करोड़ 60 लाख की आबादी की आय के बराबर है । वर्ष 2005 में युगांडा, लाइबेरिया, चाड और सूडान जैसे देशों में चल रहे आंतरिक संघर्षों में 15 करोड लोगों को अपने घरों में विस्थापित होना पड़ा है । इसी वर्ष जुलाई में विकसित देशों के संगठन (जी-8) की ग्लेनईगल्स में बैठक के दौरान इन अफ्रीकी देशों को अनुदान बढाने पर जब चर्चा प्रारम्भ हुई तो अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश और ब्रिटिश प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर के बीच मतभेद स्पष्ट हो गए। वर्ष 2002 में धनी देश इस बात पर सहमत हुए थे कि वे अपनी राष्ट्रीय आय के प्रत्येक सौ डॉलर से सेंट की राशि निर्धन देशों को अनुदान स्वरूप देंगे । बुश ने भी इस पर अपनी पूर्ण सहमति दी थी लेकिन बाद में इस बात पर असहमति जतायी । पिछले वर्ष के आंकडों के मुताबिक अमेरिका ने राष्ट्रीय आय के प्रत्येक 100 डॉलर में से केवल 16 सेंट की राशि ही सहायता कार्यक्रमों के लिए दिलवायी गई ।

महासभा की बैठक में विश्व के नेताओं के समक्ष जिन मुद्दों पर विचार विमर्श हुआ वे इस तरह रहे- विकास, मानवाधिकार, आतंकवाद, परमाणु अप्रसार और शांति स्थापना के प्रमुख रहे हैं । विकास के मुद्दे पर सहस्राब्दी के विकास संबंधी लक्ष्यों को ध्यान में रखकर चर्चा की गई । दुनिया में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए गठित किए गए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग के स्थान पर मानवाधिकार परिषद् का गठन किए जाने पर भी बैठक के दौरान सदस्य राष्ट्रों के बीच सहमति बनाने का प्रयास किया गया । विभिन्न देशों के विवादों को निपटाने में सहायता के लिए संयुक्त राष्ट्र के नए घटक शांति स्थापना आयोग की स्थापना पर भी विचार किया गया । सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह रही कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने सभी सदस्य देशों से आतंकवादी गतिविधियां रोकने और अपनी सीमाओं के अंदर आतंकवाद भड़काने को गैर

कानूनी करार देने तथा अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए कदम उठाने को औपचारिक अनुरोध किया । सुरक्षा परिषद् सदस्य देशों ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव 1624 के तहत उठाए जाने वाले उपायों के प्रति समर्थन जताया । यह प्रस्ताव सभी प्रकार की आतंकवादी गतिविधियों को सुरक्षा एवं शांति के लिए सबसे गंभीर खतरों को मानते हुए उनकी कड़े शब्दों में आलोचना करता है, उन्हें चाहे किसी भी समय अंजाम दिया गया हो तथा उन्हें अंजाम देने वाला कोई भी हो ।

6.4 सारांश

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिये 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई । इस संगठन के विचार का मूल आधार यह रहा है कि अन्तरराष्ट्रीय शान्ति को स्थापित करने के लिये एक व्यापक और अधिक परिष्कृत संस्था की आवश्यकता है, इस दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र एक व्यापक संगठन है जिसने विभिन्न स्तरों पर अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है । संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सामूहिक सुरक्षा के विचार के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना का प्रयास किया गया है, जिसमें सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को अधिक महत्व ही नहीं दिया गया वरन उनकी सहमति अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिये अनिवार्य थी । संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र में महासभा को अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के प्रश्न पर एक मुख्य मंच के रूप में स्थापित किया गया है । जहाँ सभी समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है, 1950 के शान्ति के लिये एकता प्रस्ताव के अन्तर्गत इस मंच का महत्त्व और अधिक बढ गया । अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना के लिये सुरक्षा परिषद् की भूमिका को अधिक सक्रिय और निर्णायक बनाया गया है । सुरक्षा परिषद् का अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये खतरों और उसे दूर करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है । सुरक्षा परिषद् को अन्तरराष्ट्रीय विवादों को सुलझाने में शान्तिपूर्ण तरीकों के प्रयोग और समरूप विशेष के लिये आकलन का विशेषाधिकार है । संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा शान्ति स्थापना के लिये सैनिक गतिविधि के निर्णय लेने का अधिकार भी सुरक्षा परिषद् की शक्तियों में निहित है । ऐसी स्थिति में महासभा एवं सुरक्षा परिषद अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की अभिवृद्धि में संयुक्त राष्ट्र संघ के लिये विशेष भूमिका निभाते है । यों संयुक्त राष्ट्र संघ पिछले 65 वर्षों से अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये उपयोगी भूमिका निभा रहा है । यों संयुका राष्ट्र संघ अन्तरराष्ट्रीय शक्ति संतुलन के दबावों से मुक्त नहीं है । अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के दबाव संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य प्रणाली को प्रभावित करते है । 1945 के पश्चात् शीतयुद्ध के फलस्वरूप और फिर 1990-91 में शीत युद्ध के अन्त ने संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका को प्रभावित किया है । एशियाई, अफ्रीकी और लेटिन अमेरिकी देशों में स्वतंत्रता और उसके पश्चात् की राजनीति ने संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णयों को भी प्रभावित किया है यहीं नहीं इन देशों की स्वतंत्रता ने अन्तरराष्ट्रीय संबंधों को अधिक प्रजातांत्रिक बनाया है और अन्तरराष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में नये आयामों को जोड़ा है जिसका आकलन लगातार किया जाना चाहिये ।

6.5 अभ्यास प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के कार्यों का मूल्यांकन कीजिये।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के लिये किये गये कार्यो को स्पष्ट कीजिये ।
3. सुरक्षा परिषद् के अन्तरराष्ट्रीय शान्ति के उत्तरदायित्व को स्पष्ट कीजिये ।
4. अन्तरराष्ट्रीय शान्ति स्थापना की बाधाओं का उल्लेख कीजिये ।

6.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार, महेन्द्र, थ्योरिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1981
2. जैतली, अनाम, इन्टरनेशनल पोलिटिक्स : मेजर कन्टेम्पोररी ट्रेन्डस् एण्ड इशूज, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1984
3. दाधीच, नरेश (सम्पादित), टुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड : इन्टरनेशनल एण्ड इन्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
4. क्लार्क, ग्रीनवाईल तथा सोन, लुईस बी., वर्ल्ड पीस थ्रू वर्ल्ड लॉ, केम्ब्रिज, मॉस 1962
5. पंत, पुष्पेश एवं जैन, श्रीपाल, अंतर्राष्ट्रीय संबध, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2005

इकाई - 7

अहिंसा

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अहिंसा का अर्थ एवं परिभाषा

7.2.1 हिंसा का अर्थ

7.2.2 हिंसा का स्वरूप

7.2.3 अहिंसा का अर्थ

7.2.4 अहिंसा की परिभाषा

7.3 अहिंसा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7.4 अहिंसा की आवश्यकता

7.4.1 अहिंसा की विशेषताऐं

7.5 अहिंसा के विविध प्रकार

7.5.1 निषेधात्मक अहिंसा

7.5.2 भावात्मक अहिंसा

7.5.3 मनोवैज्ञानिक अहिंसा

7.6 अहिंसा का क्षेत्र

7.6.1 अहिंसा व्यापक और विधायक

7.6.2 अहिंसा उच्च सक्रिय भावना है

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत अहिंसा की अवधारणा को समझ सकेंगे, इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- अहिंसा का अर्थ एवं परिभाषा समझ सकेंगे,
- अहिंसा की ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- अहिंसा की आवश्यकता एवं विशेषताओं को जान सकेंगे,
- अहिंसा के विविध रूपों की जानकारी प्राप्त करेंगे तथा
- अहिंसा का क्षेत्र समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

मानव जाति अपने प्रारम्भिक काल से ही निरन्तर सभ्यता की ओर ही प्रयाण करती रही है । संभवत: यही कारण होगा कि मनुष्य जाति का निरन्तर विकसित, चेतन और उन्नतशील होने का निश्चित रूप से मानव समुदाय में व्याप्त उददात मूल्यों ने उसकी इस विकास-यात्रा में अवश्य सहायता की होगी । इन उददात मूल्यों में अहिंसा का मूल्य शाश्वत व सर्वश्रेष्ठ है । इस उददात मूल्य की स्थापना तथा प्रतिष्ठा हेतु संसार के सभी प्रमुख धर्म मानवीय जीवन में मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेम, करुणा, त्याग, सद्भाव दया जैसे अहिंसक मूल्यों पर बल देते हैं । अहिंसा प्रारम्भ काल से ही अपने विधेयात्मक रूप में प्रतिष्ठित रहकर मैत्री, करूणा, प्रेम, दया, सद्भावना और विश्व उन्नयन की आकांक्षा का दिग्दर्शन कराती रही है । मित्रता का भाव अथवा संत्रस्तों के प्रति करूणा की भावना बिना अहिंसक-दृष्टि के सम्भव नहीं हो सकती । विश्व-बन्धुत्व के प्रति अनुराग अथवा प्राणी के प्रति अपनी आत्मा के समान सोचने का उपक्रम अहिंसा के आग्रही में ही देखा जा सकता है।

आज का युग फिर विश्व परिदृश्य में विविध प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है । सारे विश्व में अक्रमकता एवं युद्ध की संस्कृति बनी हुई है और इसके परिणाम स्वरूप युद्धक अस्त्र-शस्त्र के निर्माण हेतु मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का बहुत बड़ा भाग उपयोग में आ रहा है । जिसका फलित गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण, अस्वास्थ्य, प्रदूषण, प्रकृति प्रकोप, विस्थापना विकास में अवरोध आदि है । प्रत्येक देश आन्तरिक एवं बाह्य शान्ति एवं सुव्यवस्था को बनाए रखने के लिए अपनी सुरक्षा व्यवस्था हेतु अपार मानवीय एवं अन्य संसाधनों का उपयोग करता है । हिंसा व अशान्ति का निराकरण हिंसा में खोजने की मनोवृति के फलस्वरूप सुरक्षा व्यवस्था हेतु विध्वंसात्मक युद्धक अस्त्र-शस्त्रों को जुटाया जाता है । इसके अतिरिक्त इन अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण उपयोग हेतु विश्वभर में व्यापक स्तर पर अनुसंधान तथा प्रशिक्षण दिया जाता है । इस प्रकार संहारक कार्य हेतु उन अतिबौद्धिक मानवीय मस्तिष्क को उपयोग में लिया जाता है जिनका शान्तिपूर्ण औS कल्याणकारी कार्यो में उपयोग लिया जा सकता है । एक प्रकार से वर्तमान विश्व व्यवस्था में हिंसा अधिक सफल दिखाई देती है तथा ऐसी हिंसा समाज एवं विश्व में स्थायी शान्ति बनाए रखने के नाम से की जाती है ।

वस्तुत: विश्व में स्थायी रूप से शान्ति व्यवस्था कायम करने में हिंसा की शक्तियां सक्षम नहीं है और यह कोई तर्क विरूद्ध बात भी नहीं है क्योंकि असत् को सत् का प्रादुर्भाव नहीं होता । यह एक महान सत्य है । फिर हिंसा से अहिंसा की स्थापना कैसे सम्भव हो सकती है ।

आज विश्व के सामने पर्यावरण प्रदूषण पारिस्थितिकी असन्तुलन, जनसंख्या विस्फोट आदि समस्याओं ने मानव अस्तिव पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है । प्रकृति के प्रति मानव जाति की अनवरत हिंसा ने पूरे विश्व में पर्यावरण की गम्भीर समस्या पैदा की है किन्तु यदि प्रकृति की अनवरत हिंसा होती रही तो स्वयं प्रकृति निष्क्रिय होकर बैठी नहीं रहेगी । वर्तमान में हिंसा केवल युद्ध और मानव तक सीमित नहीं है बल्कि वह समाज की संरचनाओं में तथा प्रकृति के प्रति व्यवहारों में फैल चुकी है । सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में जब हिंसक परिस्थितियों का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है तो हमारा ध्यान समाज में व्याप्त विषमता, अन्याय, शोषण,

शासन उत्पीड़न इत्यादि की और जाता है । विश्व का कोई भी विकसित, अविकसित या विकासशील राष्ट्र ऐसा नहीं है जहां उपर्युक्त सामाजिक हिंसा विद्यमान नहीं है । प्रश्न है कि विश्व एवं समाज से इन हिंसक तत्त्वों को कौन मिटाए तथा इन्हें कैसे मिटाया जा सकता है । राष्ट्र की सरकारें अकेले इन समस्याओं से जूझ नहीं सकती है, न ही कोई धर्म इस प्रकार की हिंसाओं को समाज से समाप्त कर सकते । इन समस्याओं से जूझने तथा समाधान हेतु अहिंसा में शिक्षित और प्रशिक्षित विशाल जनसमूह की आवश्यकता है । यह सत्य भी है कि आज विश्वव्यापी हिंसा की संस्कृति के उन्मूलन के लिए अहिंसा के मौलिक और सृजनात्मक चिन्तन विवेचन अध्ययन और प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता और अनुकूलता है तथा जिसमें अहिंसा के विचार विवेचन और अनुभव को बल और दिशा मिली है । वैज्ञानिक आविष्कार, औद्योगिक क्रान्ति राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और दो विश्व युद्धों ने मिलकर अहिंसा के नये चिन्तन और प्रयोगों को जन्म दिया ।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व शान्ति व अहिंसक समाज की कल्पनाओं के साथ अनेक सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं का कई अहिंसक आन्दोलनों का उदय हुआ जिसमें अहिंसा विचार कार्यक्रम शिक्षण-प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों में कार्य किया गया । कहीं अहिंसा के शिक्षण-प्रशिक्षण का अर्थ है शान्ति सैनिकों को प्रशिक्षित करना, कहीं इसका अर्थ है सत्याग्रह का प्रशिक्षण देना, कहीं इसका अर्थ है शान्तिपूर्ण निराकरण का प्रशिक्षण देना, कहीं इसका अर्थ है मानसिक तनाव दूर करने के लिए आसन-प्राणायाम और ध्यान का प्रशिक्षण देना । अलग-अलग रूप से इन सबका अपना महत्त्व है । परन्तु जब हम अहिंसा की बात करते हैं तो यह समग्र अहिंसा के बीज महात्मा गाँधी, विनोबा एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने इस तरह बोये है कि उनके परिणाम स्वरूप अहिंसा का चिन्तन और आचरण आधुनिक विश्व की विचारधारा में आशापूर्ण तेजस्विता और मौलिकता प्राप्त करता हुआ प्रतीत होता है ।

7.2 अहिंसा का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यत: अहिंसा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पहले इसका ज्ञान किया जाए कि हिंसा क्या होती है, और जब हिंसा का ज्ञान होता है तो स्वत: अहिंसा का अर्थ एवं स्वरूप भी सामने आता है ।

7.2.1 हिंसा का अर्थ

हिंसा क्या है ? इस प्रश्न के समाधान में कहा जा सकता है कि किसी प्राणी को प्राण-विहीन करना, दूसरे से प्राण विहीन करवाना या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा किसी प्राणी को प्राण-विहीन करते हुए देखकर उसका अनुमोदन करना, किसी प्राणी पर शासन करना, दास बनाना, किसी भी प्रकार की पीड़ा देना, सताना या अशान्त करना भी हिंसा है । गाँधीजी ने हिंसा की अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि "कुविचार हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है । जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है ।" गाँधीजी के अनुसार अहम् या अहमत्व

पर आधारित जितनी भी मानुषिक क्रियाएं हैं, वे सभी हिंसा ही हैं, जैसे- स्वार्थ, प्रभुता की भावना, जातिगत विद्वेष, असन्तुलित एवं असंयमित भोगवृति विशुद्ध भौतिकता की पूजा, अपने व्यक्तिगत और वर्गगत स्वार्थो का अंधसाधन, शस्त्र और शक्ति के आधार पर अपनी कामनाओं की संतृप्ति करना अपने अधिकार को कायम रखने के लिए बल का प्रयोग तथा अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का अपहरण आदि । जैन ग्रंथ आचारांग के अनुसार किसी प्राणी की स्वतन्त्रता का किसी भी रूप में हनन भी हिंसा है ।

तत्वार्थ सूत्र में उमास्वाति ने हिंसा को परिभाषित करते हुए कहा है कि प्रमाद से जो प्राणघात होता है वहीं हिंसा है । प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्राण क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवती सूत्र में कहा गया है कि जीव आभ्यन्तर श्वासोच्छवास तथा बाह्य श्वासोच्छवास लेने के कारण प्राण कहा जाता है । जिस शक्ति से हम जीव का किसी न किसी रूप में जीवन देखते हैं, वह शक्ति प्राण है, जिनके अभाव में शरीर प्राणहीन हो जाता है ।

7.2.2 हिंसा का स्वरूप

हिंसा के दो रूप हैं - भाव हिंसा और द्रव्य हिंसा । मन में कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) का जाग्रत होना भाव हिंसा है और मन के भाव को वचन और क्रिया का रूप देना द्रव्य हिंसा कहलाती है । अर्थात् मन, वचन और कार्य के दुष्प्रयोग से जो प्राण हनन या दुष्क्रिया होती है, वही हिंसा है ।

7.2.3 अहिंसा का अर्थ

अहिंसा सम्बन्धी अन्य प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि अहिंसा किसे कहते हैं तथा उसका वास्तविक अर्थ क्या है ? अहिंसा मानव जाति के उर्ध्वमुखी विराट चिंतन का सर्वोत्तम विकास बिन्दु है । लौकिक और लोकोत्तर - दोनों ही प्रकार के मंगल-जीवन का मूलाधार 'अहिंसा' है । व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व बन्धुत्व का जो विकास हुआ या हो रहा है, उसके मूल में अहिंसा की ही पवित्र भावना काम करती रही है । मानव सभ्यता के उच्च आदर्शो का सही-सही मूल्यांकन अहिंसा के रूप में किया जा सकता है ।

अहिंसा का सामान्य अर्थ है- अ + हिंसा । यानि हिंसा का अभाव । किसी प्राणी का घात न करना, अपशब्द न बोलना तथा मानसिक रूप से किसी का अहित न सोचना, एक शब्द में यदि कहा तो दुर्भाव का अभाव तथा समभाव का निर्वाह । मुख्य रूप से अहिंसा के दो प्रकार होते हैं । 1 निषेधात्मक तथा 2. विधेयात्मक ।

निषेध का अर्थ होता है किसी चीज को रोकना, न होने देना । अत: निषेधात्मक अहिंसा का अर्थ होता है किसी भी प्राणी के प्राणघात का न होना या किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना । अहिंसा का निषेधात्मक रुप ही अधिकाधिक लोगों के ध्यान में आता है किन्तु अहिंसा केवल कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं को न करने में ही नहीं होती है, अपितु कुछ विशेष

प्रकार की क्रियाओं के करने में भी होती है, जैसे-दया, करुणा, मैत्री, सहायता, सेवा, क्षमा करना आदि । यही सब क्रिया विधेयात्मक अहिंसा कहलाती है ।

7.2.4 अहिंसा की परिभाषा

भारतीय संस्कृति अध्यात्म-प्रधान संस्कृति है । अध्यात्म की आत्मा अहिंसा है । प्राचीन ऋषि-महर्षियों से लेकर वर्तमान के महापुरुषों तक ने न केवल अहिंसात्मक भावना पर बल दिया अपितु अहिंसा को आदर्श बनाने का हर सम्भव प्रयास किया है । भारत के प्राय: सभी दर्शनों में अहिंसा की अवधारणा मिलती है । विविध विद्वानों एवं दार्शनिकों ने अहिंसा को अपनी-अपनी दृष्टि से परिभाषित करने का प्रयास किया है ।

योग दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि ने अहिंसा के प्रतिफल पर प्रकाश डालते हुए यह कहा है कि 'अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सत्रिधौ वैरत्याग:' अर्थात् अहिंसा-प्रतिष्ठ व्यक्ति की सन्निधि में सब प्राणी वैरविहीन होते हैं । बौद्ध धर्म, दर्शन में भी अहिंसा को प्राण माना गया है ।

गौतम बुद्ध के अनुसार मैत्री और करुणा अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और सभी जीवों के प्रति दया का भाव ही अहिंसा है । उन्होंने अहिंसात्मक कर्म को सम्यक् कर्म बतलाया है तथा अहिंसा के मार्ग में बाधक शस्त्र, प्राणी, मांस, मदिरा और विष के व्यापार को त्याज्य कहा है । सम्यक् आजीविका के अन्तर्गत - वर्णित किया गया है ।

अहिंसा के आधुनिक व्याख्याकार महात्मा गाँधी के शिष्य पाश्चात्य विद्वान के लांजा डेलवास्टो के अनुसार "समस्त जीवों के प्रति दुर्भावना का पूर्ण तिरोभाव ही अहिंसा है ।" 'बन्दूक सिर तोड़ सकती है किन्तु सिर जोड़ नहीं सकती ।' अहिंसा कायरों की चादर नहीं है अपितु वीरों का भूषण है । 'अहिंसा धर्म केवल ऋषियों एवं सन्तों के लिए ही नहीं है । यह सर्व-साधारण जनता के लिए है ।' ये कथन गाँधीजी के अहिंसा सम्बन्धी विचार को ही परिपुष्ट करते हैं ।

'विश्वस्याहं मित्रस्य चक्षुषा पश्यामि'

मैं समूचे संसार को मित्र दृष्टि से देखूं ।

'तत्र अहिंसा सर्वदा सर्वभूतेष्वनभिद्रोह:' ।

पतंजलि योग के भाष्यकार ने बताया है कि सर्वप्रकार से, सर्वकाल में, सर्व प्राणियों के साथ अभिद्रोह न करना अहिंसा है ।

'गीता' में अहिंसा की व्याख्या करते हुए लिखा है -

समं पश्यन् हि सर्वत्र, समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं, ततो याति परां गतिम् । ।

ज्ञानी पुरुष ईश्वर को सर्वत्र समान रूप से व्यापक हुआ देखकर, हिंसा की प्रवृत्ति नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि हिंसा करना खुद अपनी ही घात करने के बराबर है और इस प्रकार हृदय के शुद्ध और पूर्णरूप से विकसित होने पर वह उत्तम गति को प्राप्त होता है, यानि उसे इस विश्व के बृहत्तम तत्त्व ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।

कर्मणा मनसा वाचा, सर्वभूतेषु सर्वदा ।

अक्लेशजननं प्रोक्ता, अहिंसा परमर्षिभि: । ।

मन, वचन तथा कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को किसी भी तरह का कष्ट नहीं पहुंचाना- इसी को महर्षियों ने अहिंसा कहा है ।

महात्मा गांधी ने अहिंसा की व्याख्या करते हुए लिखा है - 'अहिंसा के माने सूक्ष्म जन्तुओं से लेकर मनुष्य तक सभी जीवों के प्रति समभाव ।'

पूर्ण अहिंसा सम्पूर्ण जीवधारियों के प्रति दुर्भावना का सम्पूर्ण अभाव है । इसलिए वह मानवेतर प्राणियों, यहां तक कि विषधर कीड़ों और हिंसक जानवरों का भी आलिंगन करती है ।

आचारांग में उल्लिखित है कि

सच्चे पाणा सव्वे भूया, सबे जीवा सवे पत्ता

न हंतव्वा न अज्जायेत्वा, न परिद्येतव्वा

न परियावेयत्वा न उद्दवेयत्वा, एस धम्म शुद्धे । ।

सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्वों को न मारना चाहिये, न अन्य व्यक्ति के द्वारा मरवाना चाहिये, न उनके साथ प्राणापहार-उपद्रव करना चाहिए, न बलात्कार करना चाहिए, न परिताप देना चाहिए, यह अहिंसा रूप ही शुद्ध है । यद्यपि इस कथन के मूल में 'अहिंसा' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, किन्तु वस्तु एवं विषय की स्पष्टता के लिए इसमें अहिंसा शब्द बढ़ा दिया है क्योंकि इस कथन में जो भी बातें कही गई हैं, वे अहिंसा पर ही लागू होती हैं तथा इसमें जिस शुद्ध धर्म का प्रतिपादन हुआ है, उसे अहिंसा ही माना गया है ।

'मनुस्मृति' में अहिंसा की व्याख्या करते हुए लिखा हैं-

मनुस्मृति सदाचार-पालन का उपदेश देती है । उसके अनुसार अन्तरात्मा को सुख पहुंचाने वाला कर्म अहिंसा है । जिस कर्म को करने से अन्तरात्मा को परितोष होता है उस कर्म को सदा प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए और उसके विपरित कर्म को सदा परिवर्तित कर देना चाहिए । मनुस्मृति का सन्देश है कि समस्त प्राणियों को पीड़ा न पहुंचाते हुए हिंसा से रहित और दान तथा दम इस प्रकार के व्रत वाला मनुष्य स्वर्ग को जीत लेता है । मनुस्मृति में कतिपय पशु-पक्षियों के मांस-भक्षण का निषेध है । इसकी यह मान्यता है कि मांस न खाना अश्वमेघ यज्ञ करने के बराबर है । जो अपने सुख की इच्छा से अहिंसक जीवों को मारता है वह जीवन में या जन्मान्तर में कहीं सुख नहीं पाता ।

जैन धर्म में अहिंसा का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन किया गया है । ऐसा प्रतीत होता कि जैन धर्म के प्रत्येक क्रिया-कलाप में अहिंसा की दिव्य ध्वनि मुखरित हो रही है । जैन धर्म का मूल ही अहिंसा है । श्रमण भगवान महावीर ने कहा है- "हिंसा कभी भी धर्म नहीं हो सकता । इस विराट विश्व मे जितने भी प्राणी हैं वे चाहे छोटे हों या बड़े हों, पशु हों, या मानव हों, सभी की एक ही कामना है और वह है जीवित रहने की । सभी जीवित रहना चाहते हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता । जिस हिंसक व्यवहार को तुम अपने लिए पसन्द नहीं करते, उस व्यवहार को दूसरा किस प्रकार पसंद करेगा ? जिस दयामय व्यवहार को तुम पसन्द करते हो, उसे सभी पसन्द करते हैं । यही जीवन का सार है ।"

यहूदी धर्म विश्व के प्रमुख धर्मो में से एक है । उसका मन्तव्य है - किसी व्यक्ति के आत्मसम्मान को चोट न पहुंचाओ । किसी के सामने किसी व्यक्ति को अपमानित न करो । उसका अपमान करना उतना ही महान पाप है जितना कि किसी व्यक्ति का खून करना । वह व्यक्ति दुष्ट कहलाएगा जो किसी व्यक्ति को मारने के लिए हाथ उठाता है, शक्ति के अभाव में भले ही वह न मारे ।

यहूदी धर्म ने मानवता पर बल दिया है तथा इसे विकसित करने के लिए ईमानदारी, ब्रहमचर्य, सत्य, भक्ति सद्गुणों को महत्वपूर्ण माना । ईसाई धर्म के धर्म प्रवर्तक महात्मा ईसा थे । वर्तमान समय में विश्व के विविध अंचलों में यह धर्म फैला हुआ है । महात्मा ईसा ने कहा है कि "तू तलवार में रख ले, क्योंकि जो लोग तलवार चलाते हैं, वे सब तलवार से ही नष्ट किये जायेंगे ।" अन्यत्र भी बताया है - तुम अपने दुश्मन को भी प्यार करो और जो तुम्हें सताते हैं, उनके लिए भी प्रार्थना करो । अपने ही शत्रु से प्रेम करो, जो तुमसे वैर करे, उनका भी भला सोचो और करो । ईसा का यह सन्देश अहिंसा का कितना बड़ा उदाहरण है - यदि तू प्रार्थना के लिए चर्च में जा रहा है, उस समय तुझे याद आ जाए कि अमुक व्यक्ति अनबन है तो वापस लौट जा और विरोधी से अपने अपराधों की क्षमायाचना कर । अपने अपराधों की क्षमायाचना किये बिना तुझे प्रार्थना करने का अधिकार नहीं है ।

ईसा ने ईश्वर को प्रेम के रूप में चित्रित किया । वस्तुत: प्रेम ही ईश्वर है, वही अहिंसा है । जिसके हृदय में दया का साम्राज्य नहीं है, उसका ज्ञान शुष्क ज्ञान है । इस तरह ईसाई धर्म में अहिंसा की भावनाऐं मानव-सेवा और प्रेम के रूप में विकसित हुई हैं ।

7.3 अहिंसा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । सामाजिक व विवेकशील प्राणी होने के कारण मानव जाति का इतिहास अवनति का नहीं अपितु उन्नतिशील रहा है । अपनी विकास यात्रा के अन्तराल में मनुष्य समाज निरन्तर आदर्शो, नियमों, परम्पराओं आदि का निर्माण करता रहा है । इस विकास यात्रा में मनुष्य के अस्तित्व को बनाये रखने तथा उसकी संस्कृति व सभ्यता का उन्नयन करने में विभिन्न आदर्शो तथा उदात्त भावनाओं ने सहयोग किया है । निश्चित रूप से मानव आज उतना सभ्य एवं सुसंस्कृत नहीं हो सकता था, यदि उसकी विकास यात्रा में अहिंसा, मैत्री सहयोगी आदि ऐसे पावन व स्वच्छ मूल्य उनके अन्तःकरण में नहीं होते । अहिंसा का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना पुराना मानव सभ्यता का इतिहास है । आदिकाल से ही मनुष्य ने शाश्वत व समकालीन मूल्यों को अपनी सभ्यता व संस्कृति में समाविष्ट किया । इनमें से कुछ विशिष्ट मूल्य, जिन्होंने मानव जाति के अस्तित्व को न केवल बनाये रखा बल्कि संस्कृति व सभ्यता के विकास में भी उल्लेखनीय योगदान किया है । अहिंसा इन्हीं शाश्वत मूल्यों की श्रृंखला में प्रथम आवश्यक कड़ी है । मानव जाति के साथ अहिंसा प्रारम्भ से ही हमदर्द के रूप में साथ रही है । अहिंसा एक शक्ति है, एक पराक्रम है, एक वीर्य है । अहिंसा आन्तरिक ऊर्जा का विकास है ।

अहिंसा की संस्कृति ने विकास के विभिन्न काल में अहिंसा के विभिन्न शिखर छूए हैं । प्रश्न उत्पन्न होता है कि अहिंसा के आदि बिन्दु का निर्धारण कहां से किया जाये । वैज्ञानिक

अनुसंधान व विश्लेषण द्वारा विशेषत: डार्विन के उत्पति का सिद्धान्त विशेष रूप से यहां हमारी सहायता करता है । मनुष्य जब मनुष्य नहीं था, जब उसने वर्तमान मनुष्य के स्वरूप के आकार को नहीं पाया था, तब वह पशु कहलाता था । किन्तु भौगोलिक परिवर्तन, रहन-सहन में परिवर्तन, अस्तित्व की सुरक्षा आदि के कारण मनुष्य ने पशुओं से भिन्न श्रेणी का रूप धारण कर लिया । पशु रूप से मुक्ति पाने के उपरान्त मनुष्य के दोनों हाथ निर्माण व सृजन के लिए स्वतंत्र हो गये । मनुष्य की शारीरिक संरचना में रीढ़ की हड्डी का सीधा होना मस्तिष्क संरचना का विकास होने के कारण उसे निरन्तर चेतना के विकास का अवसर प्राप्त होता गया । अनुसंधान तथा पुरातन जीवाश्मों की गणना के उपरान्त इस मनुष्य की आयु 14 लाख से 20 लाख वर्ष पूर्व मानी जाती है । ये प्राप्त जीवाश्म मनुष्य के प्रथम अवस्था की स्थिति की ओर संकेत करते हैं । अत: अहिंसा के विकास एवं आदि बिन्दु के स्रोतों पर दृष्टिपात करने हेतु इसी 14-20 लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य से प्रारम्भ करना होगा । उस काल के मनुष्य की कोई भाषा संस्कृति, दर्शन, परिवार, समाज व्यवस्था आदि नहीं थे । वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राय: पशुवत व्यवहार ही करता था । कालान्तर में आदि मनुष्य ने किसी युगल के रूप में साथ इकट्ठे परिवार बनाकर रहना उचित समझा एवं इस प्रकार पुरातन आदम व्यवस्था में परिवार के संस्थान का प्रारम्भ हुआ ।

जब दो मनुष्यों ने विश्वास, समन्वय, सहयोग के आधार पर एक साथ रहना स्वीकार किया तथा एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति में अपनी उपयोगिता सिद्ध की तो इस अवस्था को हम अहिंसा के आदि बिन्दु की संज्ञा दे सकते हैं । कालान्तर में मनुष्य की चेतना विकसित होती गई । परिवार की सुरक्षा व समृद्धि के लिए प्रयास किये जाने लगे । इसी काल में मनुष्य का परिचय प्रकृति के कारण अग्नि से हुआ । वह समझ गया कि अग्नि उसके भोजन में तथा ठण्ड से मुक्ति दिलाने में सहयोगी हो सकती है । इस हेतु उसने अग्नि का संचय किया तथा इसके उपयोग करने के अन्तराल में साम्प्रदायिक भावना का विकास हुआ । अग्नि के चारों तरफ बैठकर उपयोग करने से तत्कालीन आदि मनुष्य की समाजिक संस्कृति विकसित हुई । इसके उपरान्त मनुष्य के जीवन में पशुपालन, कृषि आदि आने से मांसाहार पर उसकी निर्भरता कम होती गई तथा वह व्यवस्थित रूप से कृषि व अन्य साधनों द्वारा जीवनयापन करने लगा । यात्रा के इस अन्तराल में भी कई लाख वर्ष लगे, जिसका सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है । इस अन्तराल में अहिंसा एवं इसके समीपवर्ती मूल्यों ने व्यक्ति, परिवार एवं समाज के विभिन्न उत्कर्षों को छुआ है ।

अहिंसा का समुचित विस्तार होने के लिए अभी बहुत प्रयत्नों की आवश्यकता है, तथापि यह कहा जा सकता है कि यह विस्तार क्रमश: होता रहा है और आगे भी होते रहने की सम्भावना है ।

गांधीजी ने कहा- मेरी दृष्टि में तो मुझे निश्चित है कि न तो कुरान में, न महाभारत में कहीं भी हिंसा को प्रधान पद दिया गया है । पारस्परिक प्रेम की बदौलत ही कुदरत का काम चलता है । मनुष्य संहार पर अपना निर्वाह नहीं करते हैं । आत्म-प्रेम की बदौलत औरों के प्रति आदर भाव अवश्य ही उन्नत होता है । राष्ट्रों में एकता इसलिए होती है कि राष्ट्रों के अंगभूत

लोग परस्पर आदर-भाव रखते हैं । किसी दिन हमारा राष्ट्रीय न्याय हमें विश्व तक व्याप्त करना पड़ेगा, जैसा कि हमने अपने कौटुम्बिक न्याय को राष्ट्रों के एक विस्तृत कुटुम्ब के निर्माण में व्याप्त किया है । मानव प्रगति के इतिहास पर विविध बाधाएं आयी हैं । मनुष्य अपनी प्रस्तुत समस्याओं को कभी तेजी से और कभी मंद गति से हल करता रहा है । जब कभी बड़ी समस्या उपस्थित होती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य अहिंसा के मार्ग में आगे बढने के बजाय पीछे हट रहा है । परन्तु यह पीछे हटना स्थायी नहीं है । कभी-कभी तो पीछे हटना भविष्य में गति तेज होने का सूचक होता है, जैसे आदमी बड़ी छलांग मारने के लिए कुछ पीछे हटा करता है ।

प्राय: हम लोग अहिंसा की अपेक्षा हिंसा की शक्ति बहुत अधिक मानते हैं । यह हमारा भ्रम है । बात यह है कि साधारणतया हमने अहिंसा का उतना अभ्यास या अनुभव नहीं किया है, जितना हिंसा का। कहना चाहिए हमें हिंसा की अपेक्षा अहिंसा की निहित शक्ति का बहुत ही कम ज्ञान है । यदि व्यवहार में अहिंसा को अपना कार्य दिखाने का वैसा ही अवसर मिले, जैसा हिंसा को मिलता है तो इसका चमत्कार निश्चित रूप से सामने आयेगा । यह सत्य भी है कि मानव हृदय की आन्तरिक संवेदना की व्यापक प्रगति - ही तो अहिंसा है और इस संवेदना की व्यापक प्रगति को पुरातात्विक व ऐतिहासिक प्रमाण भी पुष्ट करते हैं ।

7.4 अहिंसा की आवश्यकता

अहिंसा तो सदैव आवश्यक है, पर जब हिंसा का वातावरण हो तो वह और अधिक आवश्यक हो जाती है । हिंसा जितनी अधिक होगी, अहिंसा की आवश्यकता भी उतनी अधिक होगी । जब मानव जाति हिंसा की चरम सीमा तक पहुँच चुकी है, ऐसे समय में अहिंसा ही उसकी सुरक्षा का एकमात्र उपाय है । यदि मानव को महाविनाश में विलीन नहीं होना है तो अहिंसा के चिन्तन और व्यवहार का उसे पुन: व्यवहार करना होगा । आज अत्यन्त आवश्यक है मानव के कल्याण में आस्था और अहिंसा के प्रयत्नों के विकास की । गांधीजी ने कहा है- "सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार कायम है, जिस प्रकार कि गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है ।" समाज में पग-पग पर अहिंसा की आवश्यकता है । यह एक ऐसा साधन है जो बड़े से बड़े साध्य को सिद्ध कर सकता है । अहिंसा ही एक ऐसा शस्त्र है, जिसके द्वारा बूंद रक्त बहाये वर्गहीन समाज का आदर्श प्रस्तुत किया जा सकता है क्योंकि अहिंसा का लक्ष्य यही है कि वर्गभेद या जाति भेद के ऊपर उठकर समाज का प्रत्येक सदस्य अन्य के साथ शिष्टता और मानवता का व्यवहार करे । वस्तुत: अहिंसा में ऐसी अद्भुत शक्ति है, जिसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को सरलता पूर्वक समाहित किया जा सकता है । अहिंसा के आधार पर सहयोग और सहभागिता की भावना स्थापित करने से समाज को बल मिलता है । मानव हृदय की आन्तरिक संवेदना की व्यापक प्रगति ही परिवार, समाज और राष्ट्र के उद्भव एवं विकास का मूल है ।

जिस बुद्धि ने अणु की सूक्ष्म शक्ति का विघटन किया है, वही बुद्धि अहिंसा की जीवन शक्ति का मार्ग समझने की शक्ति रखती है । मानव के कल्याण में आस्था रखनी चाहिए और

उन्मुक्त हृदय से अहिंसा के प्रयत्नों का हृदय से स्वागत करना चाहिए । हिंसा में सर्वत्र मृत्यु है । अहिंसा में जीवन का वेग जन्म लेता है । हिंसा भय का मूल है । अहिंसा अभय का मुख्य द्वार उद्घाटित करती है । हिंसा निर्बल का क्षोभ है और अहिंसा बली की धीर वृत्ति है, जिसके आदि, अन्त और मध्य में शांति, प्रेम और कैवल्य का अमृत भरा है । बिना अहिंसा के समाज (तथा प्राणी मात्र) रह ही नहीं सकता । यहां तक कि सेना आदि हिंसक संगठनों को भी अहिंसा का आसरा लेना पड़ता है ।

यह संसार अहिंसा के बल पर ही टिका है, हिंसा से तो इसका विनाश हो सकता है । संसार में अहिंसा आवश्यक है, इसीलिए तो समय-समय पर युद्ध आदि होते रहते हैं और जिस अनुपात में होते हैं, उस अनुपात में विनाश होता रहता है । परन्तु यह होते हुए भी संसार सर्वथा नष्ट न होकर बना हुआ है और आगे प्रगति होती जा रही है । इससे स्पष्ट है कि संसार में हिंसा की अपेक्षा अहिंसा की अधिकता है और वह संसार को टिकाये हुए है । यह समझना गलत है कि युद्ध आदि हिंसा-कार्य से संसार की प्रगति हो रही है । यह प्रगति हिंसा के होते हुए भी हो रही है तो इसका कारण यही है कि संसार में हिंसा की अपेक्षा अहिंसा का व्यवहार कहीं अधिक है । महात्मा गाँधी ने कहा है कि संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहां पर घृणा से प्रेम की मांग अधिक है, धोखेबाजी और जोर-जबरदस्ती की बीमारियां, पर सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य है । यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हुआ है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है । यह जगत प्रतिक्षण बदलता है, इसमें संहार की इतनी शक्तियां हैं कि कोई स्थिर नहीं रह सकता, लेकिन फिर भी मनुष्य जाति का संहार नहीं हुआ, इसका अर्थ यही है कि सब जगह अहिंसा ओत-प्रोत है । गुरुत्वाकर्षण शक्ति के समान अहिंसा संसार की सारी चीजों को अपनी तरफ खींचती है । प्रेम में यह शक्ति भरी हुई है । अगर अहिंसा हमारा जीवन-धर्म न होता तो इस मृत्यु लोक में हमारा जीवन कठिन हो जाता । जीवन तो मृत्यु पर प्रत्यक्ष और सनातन विजय रूप है । अगर मनुष्य और पशु के बीच कोई मौलिक और सबसे महान अन्तर है तो वह यही है कि मनुष्य दिनों-दिन इस धर्म का अधिकाधिक साक्षात्कार कर सकता है । संसार के प्राचीन और अर्वाचीन सब संत-पुरूष अपनी-अपनी शक्ति और मान्यता के अनुसार इस परम जीवन धर्म के ज्वलंत उदाहरण थे । निःसंदेह यह सच है कि हमारे अन्दर छुपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है । पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह धर्म मिथ्या है । इससे तो केवल यह सिद्ध होता है कि आचरण में कठिन है ।

आदमी को जीवन के लिए ही अहिंसा की आवश्यकता है । वह सुख-शांति चाहता है और इसके वास्ते उत्पादन और निर्माण-कार्य करना होता है, यह कार्य भी अहिंसा के बिना नहीं हो सकता, इसलिए भी अहिंसा आवश्यक है । 'मानवता का मूलभूत आधार अहिंसा है-प्राणीमात्र की स्वाभाविक प्रवृति अहिंसामय है । अतएव दैनिक जीवन में अहिंसा की व्यावहारिक आवश्यकता स्वत: सिद्ध है । अहिंसा संस्कृति की यही सबसे बड़ी सफलता है ।

7.4.1 अहिंसा की विशेषताऐं

अहिंसा क्षत्रिय गुण है । कायर व्यक्ति के द्वारा अहिंसा का पालन असम्भव है । जिसमें शक्ति है, जो शूर है वही किसी पर दया कर सकता है, जो निरीह प्राणी है, कायर है वह अपनी रक्षा के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाता है, वह दूसरों की रक्षा या दूसरों पर दया नहीं कर सकता है । "अहिंसा है जाग्रत आत्मा का गुण विशेष" । यह अन्य गुणों का स्रोत है, मूल है । अतएव इसकी सफल साधना बिना विचार, विवेक, वैराग्य, तपस्या, समता एवं ज्ञान के नहीं हो सकती । अहिंसा के द्वारा हृदय परिवर्तन होता है । यह मारने का सिद्धान्त नहीं, सुधारने का सिद्धान्त है । यह संहार का नहीं, उद्धार एवं निर्माण का सिद्धान्त है । यह ऐसे प्रयत्नों का पक्षधर है, जिसके द्वारा मानव के अन्तर में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किया जा सकता है अपराध की भावनाओं को मिटाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त -

1. अहिंसा सर्वश्रेष्ठ मानव धर्म है, इसमें पशुबल से अनन्त गुणी अधिक शक्ति एवं महानता है।
2. इसमें व्यक्ति के स्वाभिमान और सम्मान भावना की रक्षा होती है ।
3. यदि कोई व्यक्ति अथवा राष्ट्र अहिंसा का पालन करना चाहे तो सर्वप्रथम उसे अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार रहना चाहिए ।
4. अहिंसा की एक यह भी विशेषता है कि इसकी सहायता बालक, युवा, स्त्री-पुरुष सब ले सकते है।
5. अहिंसा जितना लाभ एक व्यक्ति को प्रदान कर सकती है, उतना ही एक जन-समूह को अथवा राष्ट्र को ।

मानवता के अन्तर्गत जिन-जिन गुणों का समावेश होता है, उनकी कोई खास सर्वमान्य सूची नहीं बनायी जा सकती । किसी विचारक या धर्म-प्रवर्तक ने किन्हीं खास बातों को मानव-धर्म का लक्षण माना, दूसरे ने दूसरी बातों को । इस प्रकार विविध महानुभाव मनुष्य को तरह-तरह के गुणों का आचरण करने का परामर्श प्रदान करते रहे हैं । आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने ग्यारह व्रतों का पालन आवश्यक ठहराया है-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर-श्रम, अस्वाद, निर्भयता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, स्पर्श भावना (सामाजिक समानता) । विनोबा ने इनमें नम्रता और दृढ़ता को और जोड़ दिया । प्राय: सभी आचार्यो या धर्माधिकारियों और नीतिकारों ने मनुष्य के लिए अहिंसा और सत्य को मुख्य है ।

7.5 अहिंसा के विविध प्रकार

गाँधी चिन्तन में अहिंसा को तीन विभागों में विभाजित किया गया है । जो निम्नांकित है-

7.5.1 निषेधात्मक अहिंसा

अहिंसा का सहज अर्थ करते हुए वे कहते हैं "हिंसा से निवृत होना ही अहिंसा है ।" हिंसा से निवृति का अर्थ बताते हुए कहा है-आत्म रक्षार्थ और आक्रामक-दोनों प्रकार की हिंसा निवृति है । मनसा, वाचा, कर्मणा, हिंसा का निषेध इसके अन्तर्गत आता है ।

7.5.2 भावात्मक अहिंसा

अहिंसा का प्रयोग मात्र व्यक्तिगत मोक्ष के लिए ही नहीं वरन् सामूहिक मोक्ष तक ले जाना गाँधी की मौलिकता है । उनके अनुसार अहिंसा, सत्यप्रेम, करुणा के अखण्ड रूप है । अहिंसा का स्वरूप धारण किए बिना अहिंसा पुष्ट नहीं हो सकती है । निर्दोष करुणा में सदैव सत्य का समावेश होता है। सत्याधारित करुणा ही अहिंसा का रूप धारण कर सकती है । करुणा स्वस्फूर्त होती है । गाँधी की अहिंसा के पीछे स्वस्फूर्ति गाँधी की करुणा ही है । भावात्मक अहिंसा सृजनात्मक होती है । अहिंसा के पीछे सत्य, प्रेम और करुणा का आधार है । अत: अहिंसा सृजनात्मक होगी न कि संहारक । यदि वह संहारक है तो द्वेष एवं विषमभाव की ।

7.5.3 मनोवैज्ञानिक अहिंसा

गाँधी चिन्तन में अहिंसा मात्र बाहर की क्रिया नहीं है, वरन् वह तो हृदय की निष्ठा है । अहिंसा स्थितप्रज्ञता की निशानी है । विचारों का संतुलन बनाये रखने एवं बुद्धि की समता को हिलने नहीं देना अहिंसा है । प्रज्ञा की स्थिरता ही अहिंसा का सार है । गाँधी दर्शन में अहिंसा का मतलब केवल हत्या नहीं करना, षड विकारों से दूर रहना ही नहीं है वरन् करुणा, दया, मैत्री, सेवा, त्याग, भद्रता, सरलता, विन्रमता सहिष्णुता, प्रेम आदि वृत्ति की जागति है । अहिंसा सत्य प्रेम करुणा का अखण्ड रूप है । अहिंसा प्रेम है जिसकी अभिव्यक्ति सेवा में होती है ।

7.6 अहिंसा का क्षेत्र

आकाश की भांति व्यापक है । अहिंसा को परिवार, कुटुम्ब, समाज या राष्ट्र तक ही सीमित नहीं किया जा सकता । उसकी गोद में जगत के समस्त प्राणी सुख की सांस लेते हैं । अहिंसा में साम्प्रदायिकता नहीं, ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं, वरन् एक सार्वभौमिक व्यापकता है जो संकुचितता और संकीर्णता को दूर कर एक विशाल सार्वजनिक भावना लिए हुए है । अहिंसा कितनी व्यापक एवं विशाल है, यह निम्न उक्ति से माना जा सकता है- "किसी भी विचार या पक्ष के विरोध में प्रतिरोध होते हुए भी अहिंसा यह अनुमति नहीं देती है कि हमारे दिलों में विरोधी के प्रति दुर्भाव या घृणा का भाव हो ।" अहिंसा की व्यापकता प्रत्येक व्यक्ति चाहता है । राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंच से भी आज अहिंसा की प्रतिष्ठा का चिन्तन चल रहा है । हिंसा चाहे चरम सीमा पर पहुंच जाये पर अहिंसा की मूल्य स्थापना या प्रतिष्ठा कम नहीं हो सकती, क्योंकि हिंसा हमारी स्वाभाविक अवस्था नहीं है । तूफान और उफान किसी अवधि विशेष तक ही प्रभावित कर सकते हैं, वे न स्थायी हो सकते हैं और न ही उनकी प्रतिष्ठा हो सकती है । अहिंसा को तेजस्वी और शक्तिशाली बनाए बिना उसकी प्रतिष्ठा की बात आकाश-कुसुम की

भांति व्यर्थ है । इसको स्थापित करने के लिए भावनात्मक परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन या मस्तिष्कीय परिवर्तन अनिवार्य है ।

7.6.1 अहिंसा व्यापक और विधायक

प्राय: यह समझा जाता है कि अहिंसा का अर्थ इतना ही है कि किसी की हत्या न की जाए अथवा इससे अधिक यह हो सकता है कि किसी को कष्ट न किया जाए, हानि न पहुंचाई जाए, अपशब्द न कहा जाए । इस प्रकार अहिंसा को निषेधात्मक या नकारात्मक माना जाता है और इसका क्षेत्र कुछ खास इने-गिने कार्यो को न करने तक सीमित समझा जाता है । किन्तु वास्तव में अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है जो आज हमारी दृष्टि से सामने हैं । किसी को न मारना, इतना तो है ही, कुविचार मात्र हिंसा है, उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है, उस पर कब्जा करना भी हिंसा है । अहिंसा का आचरण करने के लिए हिंसा से बचना चाहिए, यह तो केवल नकारात्मक या अभावात्मक भाषा है । अहिंसा में इसका समावेश आवश्यक है, पर इसके साथ उसका महत्वपूर्ण रूप भावात्मक या विधायक है । अहिंसा का अर्थ है- प्रेम, सद्भाव सेवा और आत्मीयता का व्यवहार । अहिंसा का साधक केवल प्राणियों को उद्वेग पहुँचाने वाली वाणी न बोलकर और कर्म न करके अथवा मन में भी उनके प्रति द्वेष भाव न आने देकर संतोष नहीं मानता बल्कि वह जगत में फैले हुए दुःखों को देखने समझने और उनके उपाय ढूंढने का प्रयत्न करता रहता है और दूसरों के सुख के लिए स्वयं प्रसन्नता पूर्वक कष्ट सहता है तथा आत्म कल्याण एवं समाज कल्याण हेतु इसका उपयोग करता है । लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों धर्मों की पालना में अहिंसा की व्यापकता के दर्शन होते हैं । लौकिक व्यवहार में अहिंसा का सम्यक् प्रयोग, जिसमें प्रतिकार भी सम्मिलित है, आवश्यक एवं विधायक भूमिका निभाता है । सम्यक् अहिंसा में प्रतिकार के साथ-साथ रचना का कार्य अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है । सेवा और रचनात्मक कार्यो से रिक्त प्रतिकार हिंसा है । या यों कहा जाए, यह दुर्बलों की अहिंसा है । इस प्रकार सम्यक् अहिंसा में शुद्ध भाव और विचार के साथ-साथ सेवा और रचना का भावात्मक कार्य दोनों अपेक्षित है ।

अहिंसक व्यवहार चाहे वह प्रतिकार के रूप में हो अहिंसक समाज के निर्माण के लिए आवश्यक होता है । इनसे मनुष्य में नैतिक क्रान्तिकारी और सृजनात्मक शक्ति विकसित होती है । इन तीनों प्रकार की शक्तियों कें उदय से हृदय-परिवर्तन के द्वारा अहिंसक समाज का निर्माण होता है । यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती है । अहिंसा शास्त्र के अन्तर्गत यह समीचीन माना जायेगा कि आधुनिक अहिंसा प्रयोगकर्ता गांधी की अहिंसा कोई आपातकालीन व्यवहार या दर्शन नहीं है । यह जीवन और चिन्तन की प्रक्रिया है, जिससे अधिक से अधिक समता, न्याय और अवशोषण पर आधारित समाज का निर्माण होता है । इसलिए गांधी की अहिंसा विचार, भाव, क्रिया-प्रक्रिया और शक्ति के अतिरिक्त एक व्यवस्था विशेष का नाम, जिसमें अन्याय, शोषण विषमता, कलह और परतंत्रता का अभाव रहता है । यह उस व्यवस्था का नाम है, जिसे अहिंसक समाज व्यवस्था अहिंसा का साकार रूप है । यह एक ऐसे समाज की कल्पना है, जिसमें सभी प्रेम से रहते हैं और एक दूसरे का सहयोग करते हैं । गांधी ने अपने

सपनों के भारत में यह इच्छा प्रकट की है कि मैं वैसे भारत के लिए कार्य करूंगा जिसमें गरीब से गरीब यह अनुभव कर सकेगा कि उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का मोल है, वैसा भारत जिसमें कोई ऊंच और नीच वर्ग में नहीं बांटा जाएगा, सभी जाति के लोग पूर्ण सहयोग के साथ रहेंगे, जहाँ छुआछूत और मद्यपान का अभाव होगा और स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर ही अपने अधिकारों का उपयोग करेंगी । चूँकि हमें विश्व के अन्य देशों के साथ शान्ति से रहना है, । न तो किसी का शोषण करना है और न शोषित होना है । सभी के हितों की चिन्ता करनी है । स्पष्ट है कि गांधी अहिंसा को एक व्यवस्था का रूप प्रदान करना चाहते हैं । अहिंसक व्यवस्था में सिद्धान्तविहीन राजनीति, बिना श्रम के धन, विवेक रहित भोग, चरित्रहीन शिक्षा, नैतिक शून्य व्यवसाय, समर्पण रहित पूजा और मानवता - विज्ञान के लिए कोई स्थान नहीं होता । यह सर्वोच्च समाज की व्यवस्था है, जो विकेन्द्रित राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा तंत्र मुक्ति में ही सम्भव है । अत: अहिंसा का क्षेत्र विकेन्द्रीकरण और तंत्र मुक्ति । अहिंसक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य, शिक्षा न्याय, स्वास्थ्य और मानव के दृष्टिकोण सभी को रखा जा सकता है । अपने हिन्द में गाँधी ने प्रचलित हिंसा पूर्ण व्यवस्था की कटु आलोचना की ओर एक नयी व्यवस्था की ओर संकेत किया । उनको दृष्टि में अहिंसा एक सच्चे जनतंत्र के साथ जुड़ी है । अत: यह राज्य के आचरण का विषय है । जहाँ कहीं भी पूर्वाग्रह, अज्ञान अन्धविश्वास और सत्ता के अपहरण का अभाव है तथा विचार की स्वतंत्रता, धर्म निरपेक्षता, अल्पमत की सुरक्षा सहिष्णुता और सभी प्रकार के साधनों का उपयोग सबके लिए होता है, वहां अहिंसक राज्य है । अहिंसक राज्य कोई निरपेक्ष और पूर्ण व्यवस्था का सूचक नहीं है । कोई राज्य अधिक से अधिक अहिंसक हो सकता है । अहिंसक शिक्षा में हाथ, हृदय और मस्तिष्क तीनों को समुचित पोषण मिलता है तथा उससे व्यक्ति का चरित्र निर्माण होता है । शीघ्र और कम खर्च कम कठिनाई से न्याय को उपलब्ध कराने वाली न्याय व्यवस्था अहिंसक है । संयम और प्रकृति की सहायता से की जाने वाली चिकित्सा अहिंसक है। जहाँ शान्ति के लिए अस्त्र-शस्त्रों तथा पुलिस और सेना का कम प्रयोग किया जाता है तथा अधिक से अधिक स्वयं सेवक सत्याग्रही उपलब्ध होते हैं, वहां शान्ति की सच्ची और अहिंसक व्यवस्था होती है । गांधी के अनुसार विश्व की आवश्यकताओं की वस्तुओं पर अधिकार जमाने से भी अहिंसा धर्म का उल्लंघन होता है । अत: मानव में सही दृष्टिकोण को उत्पन्न करना अहिंसा के लिए आवश्यक है । अहिंसक व्यवस्था में पहले व्यक्ति का जीवन बदलता है, वह अपनी आवश्यकताओं को धीरे-धीरे कम करता है । उसकी आजीविका ईमानदारी पर आधारित होती है तथा वह जीवन के हर क्षेत्र में संयम से काम लेता है । वह अपने को समाज का सेवक मानने लगता है । अत: वह समाज के लिए ही उत्पादन करता है, समाज की भलाई के लिए ही खर्च करता है । ऐसी परिस्थिति में आजीविका में पवित्रता का आना स्वाभाविक हैं । गांधी इसे अहिंसा कहते हैं । अत: अहिंसा न केवल आत्म-कल्याण अपितु पर-कल्याण हेतु भी सामर्थ्य रखती है । लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों धर्मो के निर्वहन हेतु अहिंसा कारगर है । लौकिक धर्म में जहाँ समाज कल्याण निहित है, वहीं लोकोत्तर धर्म में आत्मकल्याण निहित है । इस प्रकार अहिंसा की व्यापकता एवं विधायकता निश्चित रूप से स्थापित होती है ।

7.6.2 अहिंसा उच्च सक्रिय भावना है

आदमी बिना खास विचार किए, रूढ़ि या परम्परा के तौर से अहिंसक व्यवहार कर सकते हैं, वह अच्छा तो है, पर वह वास्तव में अहिंसा नहीं है । अहिंसा तो तभी है, जब आदमी इसका खूब विचारपूर्वक पालन करे और इसमें आने वाली बाधाओं के प्रति सजग रहे, उनका दृढ़ता से सामना करे और इसके लिए प्रत्येक प्रकार का कष्ट करें । महात्मा गाँधी का कथन है- रूढ़ि या आवश्यकता के कारण पाली जाने वाली अहिंसा में भौतिक परिणाम भले ही आवे किन्तु अहिंसा स्वयं में एक ऊँचे प्रकार की भावना है और उसका आरोपण तो उसी आदमी के सम्बन्ध में किया जा सकता है, जिसका मन अहिंसक है और जो प्राणी मात्र के प्रति करूणा और प्रेम से युक्त होता है । जो मोक्षदायी है, परम धर्म है, जिसके निकट हिंसक प्राणी अपनी हिंसा छोड़ देते हैं, दुश्मन वैर-भाव का त्याग करते हैं, कठोर हृदय पिघल जाते हैं, वह अहिंसा कोई अलौकिक शक्ति है, वह बहु तपस्या के बाद किसी-किसी का ही वरण करती है ।

अहिंसा वास्तव में एक उदात्त अवस्था तथा दैवीय गुणों का द्योतक है, जिसमें सक्रियता भी हैं, जीवन भी है तथा कल्याण एवं मंगल की कामना भी है । इन्हीं देवी गुणों का वर्णन गीता में निम्नत: किया गया है - 1. अभय, 2. सत्व संशुद्धि अर्थात् सत्त्व गुण में से सुखाशक्ति रूप अशुद्धता को त्याग देना, 3. ज्ञानपूर्वक कर्म करने की स्थिति, 4. दान, 5. धर्म अर्थात् इन्द्रिय दमन, 6. यदा अर्थात् कर्त्तव्य-निष्ठा, 7. स्वाध्याय, 8. तप, 9. आर्जव अर्थात् अकपट बर्ताव, 10. अहिंसा, 11. सत्य, 12. अक्रोध, 13. त्याग, 14. शान्ति, 15. अपैशुन्य अर्थात् किसी की निन्दा या चुगली न करना, 16. दया, 17. अलोलुपत्व अर्थात् लोभ न होना, 18. मार्दव, अर्थात् दूसरों के दुःख से दुःखी होना, 19. ह्रीं अर्थात् अनुचित आचरण में लज्जा, 10. अचापल (चंचल न होना), 21. तेज, 22. क्षमा, 23. धृति या धैर्य, 24. शौच (शरीर और मन की शुद्धि), 25. अद्रोह और नातिमानता अर्थात नम्रता ।

अहिंसा मानव जाति के लिए जन्म से मृत्युपर्यन्त आवश्यक है । अहिंसा के दर्शन का सूक्ष्म दृष्टि से विचार किये बिना न तो अहिंसा की साधना की जा सकती एवं न प्रयोग । अहिंसा उच्च सक्रिय भावना के रूप में जिनका दर्शन कराती है, वे हैं - प्रेम और सहयोग की भावना का विकास, निर्भयता का विकास और रचनात्मक कार्य में श्रद्धा करना ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा- परस्पर सहयोग से रहो, प्रेम से रही तभी हम बढ़ेंगे । इससे स्पष्ट है कि हिंसा का मूल है - खण्ड- खण्ड होना । अपनत्व या प्रेम का अभाव ही हिंसा का मूल है । आज सम्पूर्ण विश्व में जाति, वर्ग, भाषा, प्रान्त को लेकर दंगे हो रहे हैं । अपने-अपने दलों को जो हिंसा को प्रश्रय मिल रहा है, धर्म और सम्प्रदाय को लेकर रक्त बहाया जा रहा है, उसका कारण है प्रेम का अभाव, अखण्ड व्यक्तिव का अभाव । यदि यह सोचा जाता है कि मैं मानव हूँ इससे अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ तो यही भावना मानव-मानव के बीच की भेद रेखा को पार कर प्रेम एवं सहयोग के वातावरण का निर्माण करेगी, जिससे अहिंसा का अवतरण स्वत: हो जायेगा ।

7.7 सारांश

अहिंसा का सम्बन्ध मानव समाज के साथ आदि से है । इसके बिना सृष्टिक्रम, प्राणियों का पालन-पोषण और रक्षण सम्भव नहीं हो सकता । संसार के सभी प्रमुख धर्मो के प्रवर्तकों ने प्रेम, सेवा और सहयोग का सन्देश दिया है । यद्यपि अहिंसा एक सार्वभौमिक सार्वकालिक और सार्वजनिक है, तथापि विश्व के सभी भू-भागों में इसके विकास हेतु वैचारिक आन्दोलन एवं प्रयत्न की गति में अन्तर देखा जाता है । भारतीय संस्कृति में अहिंसा पर अत्यधिक बल दिया गया है । इसमें अहिंसा प्राचीन से ही अनेक रूपों, सन्दर्भों और अनेक विध-समसामयिक प्रारूपों को लेकर उत्तरोत्तर विकसित होती देखी जाती है । वस्तुत: अहिंसा भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व है । जिसका प्रभाव दार्शनिक विश्लेषणों, विवेचनों, संगठनों और राजनीतिक क्रियाकलापों में सरलता से देखा जाता है। अहिंसा मानवीय अस्तित्व एवं का आधारभूत शाश्वत नैतिक मूल्य है । मानव जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए भारतीय संस्कृति में सदा से ही विश्व बन्धुत्व, समानता, सह-अस्तित्व, मैत्री, करुणा जैसे अहिंसक मूल्यों पर बल दिया जाता रहा है । फलस्वरूप भारतीय चेतना अहिंसा की गौरवशाली परम्परा का एक विकसित इतिहास प्रस्तुत करती है ।

आज का युग विश्व के इतिहास में ऐसा आया है जिसमें मानव धर्म, अहिंसा के और सृजनात्मक चिन्तन, विवेचन, अध्ययन और प्रचार-प्रसार की अत्यन्त अनुकूलता है अहिंसा विश्व समग्र चैतन्य को एक धरातल पर खड़ा कर देती है । इससे समानता, सह-अस्तित्व एवं भाई-चारे की भावना को संपोषण मिलता है । जैन दर्शन में कहा गया है एगे आया' आत्मा एक है, एक रूप है, एक समान है ।, कुल, समाज, राष्ट्र, स्त्री, पुरूष के रुप में जितने भी भेद विद्यमान हैं वे बाह्य स्तर पर ही परिलक्षित होते हैं वास्तव मे आन्तरिक एवं अस्तित्व के स्तर पर किसी भी प्रकार का भेद विद्यमान नहीं है । अशांत व हिंसक मानव की विकृत भेद बुद्धि का उपहार है और अहिंसा में इस प्रकार की भेद बुद्धि के लिए कोई नहीं है । वर्तमान में वैश्वीकरण आदि नवीन चिन्तकों ने अहिंसा के प्रयोगात्मक स्वरूप को अवकाश दिया है अत: विश्व नागरिकता की कल्पना को अहिंसा द्वारा मूर्त रूप मिल सकता है । दूसरा कोई ऐसा आधार नहीं है विभिन्न परिकल्पनाओं के कारण खण्ड-खण्ड हुई मानव जाति को एकरूपता दे सके । प्रत्येक मानव को अपने सृजनात्मक स्वातंत्रय एवं मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का आश्वासन दे सके । अहिंसा विश्वास की जननी और विश्वास परिवार, समाज तथा राष्ट्र के पारस्परिक सद्भाव, स्नेह और सहयोग का मूल आधार है ।

किसी भी समस्या के समाधान के दो घटक तत्त्व है (1) भौतिक (बाह्य) घटक (2) नैतिक (आन्तरिक घटक । मानव मन सदा ऊपरी स्तर पर समस्या के समाधान के साधन जुटाता रहा है । यही कारण है कि भौतिक साधनों को जुटाकर मानव कुछ समय तक सुख-शान्ति का जीवन जी सकता है मगर स्थायी शान्ति के लिए उसे नैतिक साधनों को काम में लेना होगा । हिंसा से हिंसा का निराकरण करने की बात सोचना वैर ही है जैसा आग से आग बुझाने या खून से खून के दाग धोने का प्रयत्न । हिंसा का समाधान हिंसा में ना बल्कि अहिंसा

में निहित है । अहिंसा प्रकाश की अंधकार पर, प्रेम की घृणा पर, सद्भाव की बैर पर, अच्छाई-की बुराई पर विजय का अमोघ अस्त्र है ।

अहिंसा के समक्ष आज जितने प्रश्न पर्वताकार बन कर खडे हैं या खडे कर दिए गए हैं संभव है सब अतीत में इतने प्रश्न कभी न रहे हों । आज वैचारिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जग की उलझी हुई गुत्थियों को अहिंसा के माध्यम से सुलझाना आवश्यक है । इस सन्दर्भ में शिक्षण-प्रशिक्षण का औचित्य सिद्ध होता है । इस प्रलयकर एवं भयंकर अणु-युग में अहिंसा ही मानव जीवन के लिए आशा का मंगल प्रदीप है ।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. अहिंसा का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसका तात्विक विवेचन करें ।
2. अहिंसा की आवश्यकता पर अपने विचार प्रकट करें ।
3. अहिंसा की परिभाषा बताते हुए इसका क्षेत्र बताइये ।
4. अहिंसा की विशेषताओं का वर्णन करें ।

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, रामजी : गांधी-दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973
2. आचार्य महाप्रज्ञ : अहिंसा के अछूते पहलु, जैन विश्व भारती, लाडनूँ 1989
3. राव, मोहन : द मैसेज ऑफ महात्मा गाँधी, पब्लिकेशन डिविजन, नई दिल्ली, 1968
4. सिंह, राममूर्ति : महात्मा गाँधी और विश्व शान्ति, साहित्य विकुंज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1946
5. गाँधी, एम.के. : नॉन वॉयलेन्स इन पीस एण्ड वॉर, भाग-1 नवजीवन, 1958
6. दूगड़, बी. आर. : अहिंसा प्रशिक्षण एवं विश्व शान्ति, आचार्य शान्ति सागर कशानी ग्रंथमाला, बुहाना, 2002
7. कुमार, रविन्द्र, महात्मा गाँधी और अहिंसा, कल्याण पब्लिकेशंस, दिल्ली 1981
8. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ. यू. पी., दिल्ली, 1973
9. अय्यर, राघवन एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्स्फोर्मेशन, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994

इकाई - 8

शांति के सम्बन्ध में गाँधी के विचार

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 शांति के विभिन्न आयाम

8.2.1 व्यक्ति के स्तर पर : नैतिक उन्नति के लिये लक्ष्यपूर्ण जीवन

8.2.2 सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर: शांति का वृहद स्वरूप

8.3 शांति स्थापना के लिए अपरिहार्य मूल्य

8.3.1 सत्य

8.3.2 अहिंसा

8.3.3 नैतिकता

8.3.4 सजगता

8.3.5 सभी के कल्याण की कामना

8.3.6 साहस

8.3.7 साधन और साध्य की पवित्रता

8.4 सघंर्ष-निवारण और शांति की विभिन्न सत्याग्रही तकनीकें

8.4.1 आत्म-शुद्धि की विधियाँ

8.4.2 अहिंसात्मक असहयोग की विधियाँ

8.4.3 सविनय अवज्ञा की विधियाँ

8.4.4 रचनात्मक कार्यक्रम

8.5 सारांश

8.6 अभ्यास प्रश्न

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप शांति के विभिन्न आयाम सम्बन्धी महात्मा गाँधी के विचार जान सकेंगे । व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति का गाँधीवादी सोच क्या है, शांति स्थापना के लिए कौन से मूल्य आत्मसात करना जरूरी है, सघंर्ष-निवारण और शांति के विभिन्न गाँधीवादी तकनीक क्या हैं, आदि पक्षों के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी एक कर्मठ कार्यकर्त्ता और महान मानवतावादी थे जिन्होंने पीड़ित मानवता के प्रति अपनी संवेदना और प्रेम को अभिव्यक्त किया और शोषित और पददलित व्यक्तियों की पीड़ाओं को कम करने की दिशा में सक्रिय कार्य किया । उनका सारा जीवन और कार्य मानव अस्तित्व की सार्वभौमिक समस्याओं का विश्लेषण करने और उनका निराकरण करने के प्रयासों में बीता । इस प्रकार मानवता के लिये किये गये उनके कार्यो ने व्यक्तिगत और सामाजिक बंधनों एवं क्षेत्रीय परिधि से परे सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित किया । शांति सम्बन्धी गाँधीजी का दृष्टिकोण एक सम्पूर्ण, गतिशील एवं प्रासंगिक है । थॉमस वेबर ने ठीक ही कहा है कि गाँधीजी नैतिक जीवन के एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ हैं जिन्होंने हमें मूल्यवान आत्मदृष्टि प्रदान की ताकि हम अपने जीवन को स्वयं समाज को अथवा राष्ट्र तक केन्द्रित नहीं रखकर सार्वभौमिक जीवन के प्रति उत्तरदायी व्यवहार करना सीखें ।

गाँधीजी के लिये शांति शैथिल्य की स्थिर परिस्थिति नहीं है बल्कि यह वह प्रक्रिया है जिसमें सक्रिय अहिंसा और सत्य पर दृढ़ता के साथ संघर्ष की परिस्थितियों के निराकरण का मार्ग है जिसके द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में उन्नति की ओर अग्रसर होता है । शांति के बारे में उनका दृष्टिकोण था कि मनुष्य आत्मिक रूप से जागृत होकर सत्य के मार्ग पर चले एवं हर प्रकार के अत्याचार एवं शोषण से मुक्त जीवन जिए । गाँधीजी के अनुसार इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति में साहस, अहिंसा के प्रति समर्पण का भाव, नैतिकता एवं सर्वजन हिताय जैसे मूल्य हों और वह घृणा एवं हिंसा को सिद्धान्ततः त्याग दे ।

8.2 शांति के विभिन्न आयाम

गाँधी जी शांति के सम्बन्ध में सम्पूर्ण दृष्टि अपनाते हैं और इसमें व्यक्ति समाज राष्ट्र एवं विश्व एक इकाई के रूप में स्थित होकर आन्तरिक स्तर पर एवं बाह्य स्तर पर शांति की वृद्धि करते हैं ।

8.2.1 व्यक्ति के स्तर पर नैतिक उन्नति के लिये लक्ष्यपूर्ण जीवन

गाँधी दर्शन एवं गाँधीजी के कार्यो का एक महत्वपूर्ण घटक है मानव अस्तित्व एवं उसकी प्रकृति की गहरी समझ । अपने कई पूर्ववर्तियों के समान गाँधी का विश्वास था कि एक व्यक्ति का सम्पूर्ण 'स्व' बाह्य स्व और आन्तरिक स्व से मिलकर बना है । उनके मतानुसार मनुष्य की दो विरासतें होती है - जीव वैज्ञानिक और सामाजिक आध्यात्मिक । दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य जानवरों का विकसित स्वरूप होने के साथ-साथ उसके जैविक और सामाजिक के अंदर दैवीय गुण विद्यमान है। चूंकि गाँधीजी का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था अतः उनका मानना था कि जैविक और सामाजिक प्रभाव मानव अस्तित्व के नैतिक आचरण के अधीन होते हैं । यद्यपि गाँधी जी वैज्ञानिकों के इस तर्क से सहमत थे कि मनुष्य जानवर का ही विकसित स्वरूप है, वे इस बात से सहमत नहीं थे कि मनुष्य मात्र विकसित जानवर है क्योंकि यह स्वरूप मनुष्य के आत्मिक गुणों एवं दैवीय स्वरूप को प्रकट नहीं करता । गाँधीजी का विचार था कि मनुष्य जानवरों से भिन्न है क्योंकि उसके पास आत्मिक शक्ति है जो उसे सही मार्ग

एवं सामाजिक जीवन की ओर ले जाती है । गाँधीजी मानते थे कि यही आत्मिक शक्ति वह परम दैवीय शक्ति है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित है एवं जो सभी वस्तुओं और जीवों के अस्तित्व का कारण है । इस प्रकार गाँधी जी के अनुसार मनुष्य का दैवीय स्वरूप उसे एक विशिष्टता प्रदान करता है । गाँधीजी के अनुसार "खाने, सोने और अन्य शारीरिक क्रियाओं में मनुष्य पशु से भिन्न नहीं है नैतिक स्तरों पर पशुओं से ऊपर स्थान प्राप्त करने का अथक् संघर्ष ही ऐसे पशुओं से मनुष्य को भिन्नता प्रदान करता है ।"

ईश्वर के प्रति गाँधीजी की आस्था ने मानव जीवन के प्रति उनके विचारों का निर्धारण किया । दैवीयता और आत्मा की श्रेष्ठता पर विश्वास के कारण ही उनके मानव एवं मानव जीवन के बारे में विचारों को आध्यात्मिक स्वरूप प्राप्त हुआ । चूंकि गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य का देवत्व ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करता है अत: वे इस बात पर हमेशा बल देते थे मनुष्य अपने देवत्व को समझने का प्रयास करें । गाँधीजी मानते थे कि मनुष्य में दैवीयता उसकी आत्मा के रूप में निवास करती है । वे इस बात पर जोर देते थे कि मनुष्य अपने आत्मिक स्वरूप को पहचाने एवं उसी के अनुसार अपने कार्यो एवं विचारों का निर्धारण करें ।

इस प्रकार गाँधीजी का मानना था कि मानव जीवन का लक्ष्य नैतिक गुण जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग आदि का विकास करें । गाँधीजी चाहते थे कि मनुष्य स्वयं की शक्तियों को पहचान कर आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्रता का अनुभव करें । बाह्य स्वतंत्रता एवं आंतरिक स्वतंत्रता के अंतर को स्पष्ट करते हुए गाँधीजी का विचार था कि वास्तविक स्वतंत्रता वह स्वतंत्रता है जिसमें मनुष्य स्वयं पर शासन करे । उन्होंने इसे "स्वराज" कहा । उनका मानना था कि इस प्रकार की स्वतंत्रता किसी बाह्य माध्यम या परिस्थिति से प्राप्त नहीं की जा सकती । इसके लिये मनुष्य को अपने भीतर ईश्वरीय अस्तित्व को पहचानना होगा और प्रार्थना एवं नैतिक गुणों के विकास के द्वारा इस स्वतंत्रता का अनुभव करना होगा ।

आत्मिक जीवन जीना और भौतिक समाज का हिस्सा बनना ये दोनों बातें परस्पर विरोधाभासी प्रतीत होती हैं । गाँधीजी का विचार था कि इन दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखना सीख लें । इस नियंत्रण का प्रभाव उनके अनुसार यह होगा कि मनुष्य भौतिक वस्तुओं के आकर्षण में बंध कर आध्यात्मिक के मार्ग से प्रथक नहीं होगा ।

गाँधीजी पूर्व और पश्चिमी दोनों समाजों में फैलती हुई बुराईयों से काफी विचलित थे । उनका विश्लेषण था कि जब तक ये दोनों समाज कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं ढल पाते तब तक वास्तविक विकास और मानव की प्रसन्नता का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते । इस संदर्भ मे गाँधीजी ने कुछ सिद्धान्तों और मूल्यों का प्रतिपादन किया । गाँधीजी चाहते थे कि लोग अपने निजी एवं सार्वजनिक जीवन में इन सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार करें । उनका मत था कि सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन करने पर मनुष्य स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत और विकसित महसूस करेगा । ये सभी आत्म अनुशासनात्मक मूल्य गाँधीजी की दृष्टि में सच्चा स्वराज स्थापित करने के साधन हैं ।

8.2.2 सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर : शांति का वृहद स्वरूप

सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गाँधीजी ने कुछ निश्चित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्यक्रमों की परिकल्पना की और एक स्वतंत्रता सेनानी, राजनेता, समाज सुधारक और जन नेता के रूप में उन्हें व्यवहारिक स्वरूप दिया । उन्होंने आत्म सुधार को सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुधारों का प्रारम्भिक चरण माना ।

सामाजिक स्तर पर गाँधीजी ने एक सुव्यवस्थिति सामाजिक जीवन की कल्पना की जिसमें उन्होंने समानता, भाईचारा, सहनशीलता और न्याय जैसे मूल्यों को महत्व दिया । अपने 'समुद्रीय तरंग' सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के आधार पर उन्होंने ऐसा समाज स्थापित करना चाहा जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों स्वयं और अपने पास्परिक सम्बन्धों के संदर्भ में शांतिपूर्ण ढंग से रह सकें । उनके अनुसार समाज मनुष्य का पूर्ण स्वरूप है जो नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है । इस समाज में शोषण और बल प्रयोग की मानसिकता नहीं होनी चाहिए समाज सभी लोगों के कल्याण और उन्नति के लिए प्रतिबद्ध होता है । ऐसे समाज में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के बारे में विचारपूर्ण कार्य करता है । धनी व्यक्ति स्वयं को धन का स्वामी ने मानकर संरक्षक मानता है एवं अपने संसाधनों का उपयोग सभी की भलाई के लिये करता है । उसके सादगीपूर्ण और नैतिक जीवन में भौतिकवाद का त्याग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । समेकित विकास का मार्ग अपनाकर लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति का मार्ग प्रशस्त करता है । ऐसे समाज में उत्पादन आवश्यकताओं के अनुरूप होता है और उसमें स्वदेशी, खादी और लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादन जैसे सोच सम्मिलित होते हैं । ग्रामीण और शहरी क्षेत्र एक दूसरे के पूरक होते हैं और अन्त में जब कभी मतभेद उत्पन्न होते हैं तो उनका निराकरण अहिंसात्मक माध्यमों के द्वारा किया जाता है ।

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में राजनीति की क्षेत्र और प्रकृति के पारंपरिक धारणाओं को गाँधीजी के विचारों ने चुनौती दी । उन्होंने राजनीतिक शक्ति के वृहद स्वरूप को ने केवल विचार बल्कि निजी और सार्वजनिक धारणाओं के बीच बनाये गये भेदभावों को भी जमकर विरोध किया । इसके साथ-साथ धार्मिक मूल्यों और राजनैतिक में विरोधाभास नियमों नैतिक सिद्धान्तों तथा राजनैतिक कार्यसाधकता में पृथक्करण का भी विरोध किया ।

वे इस बात को अच्छी तरह समझ चुके थे कि आधुनिक समय की राजनीति व्यक्तिगत जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर चुकी थी, यह व्यक्ति के लिये अति आवश्यक हो चुका था फिर भी उनका सोचना था कि धर्म से वंचित राजनीति ने केवल मृत शरीर के समान अनुपयोगी था बल्कि मानव के अस्तित्व के लिये भी घातक था । इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने राजनीति में धर्म पर बल दिया अथवा राजनीति के आध्यात्मीकरण पर बल दिया । गाँधीजी के लिये धर्म और राजनीति एक-दूसरे के पूरक थे । धर्म और राजनीति के बीच इस सामंजस्य का अर्थ राजनीति, धर्म और नैतिकता पर आधारित होना चाहिये और इसका अर्थ है कि राजनीति धर्म के सिद्धान्तों द्वारा चलायमान होनी चाहिये । इसका अर्थ यह भी है कि राजनीति को मानव अस्तित्व के लिये मूलभूत मूल्यों एवं सिद्धान्तों को परिलक्षित करना चाहिये

। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि राज्य का लक्ष्य सर्वोदय होना चाहिये ओर सर्वोदय का अर्थ है राज्य के नागरिकों का विकास, कल्याण और सुधार ।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गाँधी का मत था कि विश्व व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि सभी राष्ट्र एक-दूसरे से भयभीत ना होकर सह-मित्रभाव से रहें । सभी राष्ट्रों का लक्ष्य होना चाहिए कि किसी प्रकार का शोषण न हो और मानवता के कल्याण के लिये सहयोग और मैत्रीपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना विकसित हो । कोई राष्ट्र पारम्परिक सैना न रखे, सभी देश विवादों के निवारण के लिये युद्ध और अन्य हिंसक माध्यमों को छोड़कर अहिंसा द्वारा समस्याओं का निराकरण करें ।

8.3 शांति स्थापना के लिए अपरिहार्य मूल्य

गाँधीजी के चिन्तन मे शांति का विचार मौलिक रूप एक मनोवृति है । विशेष इसका संबंध उचित उद्देश्यों को सिद्ध करने, त्रुटियों को सही करने और गलत काम करने वाले विरोधियों को स्वेच्छा पूर्वक स्वयं गलत रास्ता त्याग देने हेतु प्रेरित करना है । यह आत्मपीडा सहने तथा अहिंसापूर्ण साधनों को धैर्यपूर्वक एवं सक्रिय प्रयोग करने की दृढ़ इच्छा पर आधारित नैतिक जीवन जीने का मार्ग है ।

इसका तात्पर्य है अच्छाई के द्वारा बुराई के विरूद्ध सक्रिय प्रतिरोध तथा संघर्ष का निवारण । गाँधीजी सत्याग्रह के प्रयासों को सर्वथा उचित समझते थे और इसे निष्क्रिय प्रतिरोध से अलग बताते थे । उनका कहना था कि सत्याग्रह नैतिक रूप से बलवान, साहसी एवं सक्रिय लोगों का हथियार है न कि कमजोर, कायर निहत्थे तथा असहाय लोगों का । यह नैतिक रूप से कमजोर एवं डरपोक लोगों का संसाधन नहीं है । यह घृणा और हिंसा के त्याग पर आधारित है।

8.3.1 सत्य

सत्य की अवधारणा गाँधी-दर्शन का सबसे महत्वूपर्ण आधार है उनके लिये सत्य जीवन का आधार है । अत: सत्य गाँधी चिन्तन का सबसे विशिष्ट और प्रथम सिद्धान्त है । गाँधीजी के अनुसार सत्य को विचारों, सम्भाषणों एवं कार्यो तक विस्तृत किया जा सकता है । गाँधीजी ने सत्य को मात्र आदर्श ही नहीं माना बल्कि उसे व्यावहारिक जीवन में उतारने पर भी बल दिया।

कोई भी व्यक्ति जो सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में व्यवहार रूप में उपयोग में लाता है गाँधीजी के अनुसार वही सत्याग्रही है । गाँधीजी ने सत्य की खोज करने और उसके अनुरूप समर्पित रूप से कार्य करने वाले व्यक्ति को सत्याग्रही माना है । सत्य की खोज के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी बुद्धि, अनुभव और विश्वास को आधार बनाये । गाँधीजी ने स्वयं अपने जीवन में इन बातों को उतारा और अपने विचारों और कार्यो से सम्पूर्ण मानवता को प्रभावित किया । गाँधीजी के अनुसार सत्य की खोज एक निरंतर प्रयास है जिसका लक्ष्य परम सत्य को प्राप्त करना है । इसी परम सत्य को गाँधीजी ने ईश्वरतुल्य माना है उनके अनुसार प्रत्येक सत्याग्राही को अपने सामने इसी परम सत्य को प्राप्त करने का आदर्श रखना चाहिये । चूंकि सत्य सापेक्ष होता है । अत: उन्होंने समय-समय पर अपने दृष्टिकोण का परीक्षण करने पर जोर दिया । इसका अर्थ है कि गाँधीजी के अनुसार सत्य एक गतिशील, बहुआयामी और

निरंतर विकासशील प्रकृति का है । उनके अनुसार मनुष्यों में कुछ कमजोरियाँ होना स्वाभाविक है साथ ही उन्होंने यह भी माना कि अंतिम अथवा परम सत्य को प्राप्त करना मनुष्य के लिए संभव नहीं है । अत: व्यक्ति को सदैव अहिंसा का पालन करना चाहिये । गाँधी जी का मत था कि बिना अहिंसा के सत्य, सत्य नहीं बल्कि असत्य होता है । गाँधीजी ने अहिंसा और सत्य को एक ही सिक्के के दो पहलू माना है अर्थात एक के बिना दूसरे की कल्पना असंभव है ।

8.3.2 अहिंसा

गाँधीजी के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित है । अहिंसा की अवधारणा काफी विस्तृत है । उनके अनुसार मात्र हिंसा की अनुपस्थिति ही अहिंसा नहीं है विरोधी पक्ष के प्रति प्रेम और उसके आक्रमणों को बिना किसी बदले की भावना (वाणी, कार्य अथवा विचार) के सहन करना भी अहिंसा है ।

गाँधीजी का विश्वास था कि इस प्रकार की दृष्टि तभी उत्पन्न हो सकती है जब अहिंसा को मात्र एक नीति न मानकर अपने जीवन का विश्वास अथवा सिद्धान्त बना ले । निस्वार्थ भाव, और संघर्षों का निवारण करने के लिये सक्रिय प्रयास ही सत्याग्रह को निष्किय प्रतिरोध से भिन्न करता है ।

8.3.3 नैतिकता

गाँधीजी के विचार में सत्य और अहिंसा की तरह नैतिकता भी शांति के प्रत्येक साधन का अभिन्न अंग है । सत्य और नैतिकता के बीच घनिष्ठ सम्बद्ध की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने सत्य को सम्पूर्ण नैतिकता का आधार बताया । नैतिक नियमों की अनुपालना में गाँधीजी समस्त मूल्यों को अंतर्निहित करते है । सत्य के द्वारा अन्तर्निहित मूल्य सहनशीलता, ईमानदारी, अहिंसा, सार्वजनहित की भावना, जीवन आत्मनियंत्रण,. निष्ठा और अनुशासन आदि हैं । गाँधीजी ने नैतिकता का पालन करने के साथ-साथ ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि साधन और साध्य दोनों ही पवित्र होने चाहिये । उन्होंने अपवित्र साधनों द्वारा पवित्र साध्य को प्राप्त करना असंभव है । इस प्रकार साधन एवं साध्य की पवित्रता का आत्म-अनुशासन और आत्म नियंत्रण पर भी बल देता है । इस संदर्भ में उन्होंने इस बात पर जोर दिया सत्याग्रहियों को आस्तेय, अपरिग्रह और ब्रहमचर्य का पालन करना चाहिये । गाँधीजी ने विवादों के निवारण का प्रयास करते समय सत्याग्रहियों के लिये कुछ कठोर शर्तें रखी । इनमें से एक शर्त थी कि सत्याग्रह हमेशा उचित उद्देश्यों के लिये किया जायेगा । सत्याग्रह का अर्थ था सत्य के प्रति समर्पण । अत: उनका मानना था कि असत्य से किसी भी प्रकार का गठबंधन संभव नहीं है । गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रह के लिये और कर्तव्य-निष्ठा अत्यावश्यक हैं । कर्तव्यनिष्ठा से तात्पर्य नैतिक मूल्यों पर ना केवल अत्यधिक दृढ़ रहने से था बल्कि उसकी उपयोगिता को स्वीकार करने से भी था । उनका मानना था कि सत्याग्रही वही हो सकता है जो आध्यात्मिक रूप से उन्नत हो क्योंकि केवल एक व्यक्ति स्वयं को तथा अपने -पास के लोगों को तभी परिवर्तित कर सकता है । जब उसमें नैतिक बल हो और जिसका उपयोग वह को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध हो । गाँधीजी सत्याग्रह को एक ऐसा हथियार मानते थे जिसका उपयोग केवल वही

व्यक्ति कर सकता है जिसके पास स्थिर बुद्धि, अदम्य साहस और मानसिक शक्ति हो । उन्होंने सत्याग्रहियों को पर्याप्त प्रशिक्षण और रचनात्मक कार्यो से जुड़ने की आवश्यकता बताई ।

8.3.4 सजगता

गाँधीजी इस बात पर दृढ़ थे कि शोषित व्यक्ति अपने प्रति होने वाले अन्याय और शोषण के प्रति सजग हो न इसीलिये उन्होंने शोषित व्यक्तियों को अपनी आत्मा की आवाज सुनकर अन्यायपूर्ण परिस्थितियों को बदलने के लिये उत्साहित किया उनका यह भी मानना था कि शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध जनमत का निर्माण किया जाये जो अहिंसक साधनों द्वारा शोषण और अन्याय से मुक्ति का प्रयास कर सकें । उनका विचार था कि न्याय और समता की स्थापना के लिये जनमत का निर्माण सत्याग्रहियों कर्तव्य है । उन्होंने कहा कि जब यह जनमत सामाजिक शोषण के विरूद्ध प्रबल होगा तो बड़े से बड़ा व्यक्ति भी अन्याय करने या उसे समर्थन करने की हिम्मत नहीं जुटा पायेगा । इस प्रकार संघर्ष निवारण के लिये गाँधीजी का तरीका था कि सामूहिक प्रयासों एवं जन जागृति । गाँधीजी ने विवाद निवारण के लिए प्रतीक्षा करो और देखों, तथ्यों की पड़ताल करो, यात्रा करो, वार्तालाप करो, मध्यस्थता करो, विरोध सभाएं करो, प्रदर्शन करो, जैसे अनेक उपायों के अपनाने की बात कही ।

8.3.5 सभी के कल्याण की कामना

गाँधी के अनुसार विवाद-निवारण का उद्देश्य विरोधियों का कल्याण भी है । इसमें यह बात महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति स्वयं अपना ही नहीं बल्कि अपने विरोधियों का भी शुभचितंक होता है । विवाद-निवारण के इस तकनीक में इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वयं और विरोधी दोनों पक्ष एक-दूसरे के प्रति शत्रुता का भाव न रखकर विवाद को हल करने के लिए प्रतिबद्ध हों । गाँधीजी का विश्वास था कि यदि बुरे व्यक्ति के हृदय से बुराई समाप्त की जाए तो इसका परिणाम अत्यन्त शांतिपूर्ण और फलदायी होगा और इसकी अन्तिम परिणति हिंसा में कमी होगी । गाँधीजी के अनुसार शस्त्रों से अधिक शक्ति अहिंसा में होती है और इसके द्वारा किसी संघर्ष में बिना घृणा और कटुता के विजय प्राप्त की जा सकती है । प्रेम की ही शक्ति है क्योंकि घृणा कभी भी घृणा से नष्ट नहीं की जा सकती । गाँधीजी ने कभी भी विरोधियों को अपमानित करने या हराने के बारे में नहीं सोचा बल्कि प्रेमपूर्वक उनका हृदय परिवर्तन करने के प्रयास किये और अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त की । सत्याग्रह में प्रतिद्वंद्वी को भी अपने समान मनुष्य ही माना जाता है और इसका लक्ष्य भी सभी पक्षों के लिये सर्वमान्य हल निकालना होता है, न कि किसी को अपमानित करने या एकल पक्षीय स्वार्थ पूर्ति का । उन्होंने प्रतिशोध की भावना त्यागने को कहा चाहे इसलिए उसे कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े । विरोधियों से प्रेम करो, पाप से घृणा करो, पापी से नहीं, विरोधियों को अपमानित करने, पीडा पहुंचाने, नीचा दिखाने अथवा हराने की बजाय प्रेमपूर्वक उनके हृदय परिवर्तन करो पीड़ा को अपने कार्य का एक अंग समझो क्योंकि सत्याग्रह पीड़ा को स्वयं सहन करने की प्रवृत्ति हीजन्म देता है न कि किसी ओर को कष्ट पहुंचाने की ।

8.3.6 साहस

दक्षिण अफ्रीका में गाँधीजी के सत्याग्रह आंदोलन के दौरान हॉस्किन नाम का एक यूरोपियन ने सत्याग्रह को कमजोर लोगों का शस्त्र बताया था । गाँधीजी ने इसे निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न बताते हुए कहा था, सत्याग्रह एक वृहद अवधारणा है । उन्होंने कहा कि सत्याग्रह कमजोर लोगों का शस्त्र नहीं है और शारीरिक बल का उपयोग करने वाले लोग साहस का अर्थ नहीं जानते । इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ मौलिक प्रश्न उठाये, जैसे "क्या आप विश्वास करेंगे कि कोई कायर व्यक्ति उस कानून का विरोध करेगा जिसे वह नापंसद करता है ? साहस की आवश्यकता कहां है ? एक तोप के पीछे खड़े होकर दूसरों के परखच्चे उड़ाने में या मुस्कुराते हुए तोप के सामने जाकर अपने परखच्चे उड़वाने में ? वास्तविक योद्धा कौन है ? जो मृत्यु को अपने अभिन्न मित्र की तरह साथ रखता हो या जो दूसरों की मृत्यु को अपने अभिन्न मित्र की तरह साथ रखता हो या जो दूसरों की मृत्यु को नियंत्रित करता हो । उनका मानना था सत्याग्रह बहादुरों का हथियार है, न कि कायरों का । केवल बहादुर व्यक्ति ही सत्य की राह पर अहिंसा अपनाते हुए बढ सकता है ।

8.3.7 साधन और साध्य की पवित्रता

गाँधीजी के अनुसार विवाद-निवारण में हमें लक्ष्य प्राप्ति के साधन के प्रति भी सतर्क रहना चाहिये । उनका मानना था कि यदि हम माध्यम का ध्यान रखेंगे, तो लक्ष्य स्वयं अपना ध्यान रखेगा । गाँधीजी ने हमेशा लक्ष्य प्राप्ति के लिये अपनाये जाने वाले साधनों की शुद्धता पर जोर दिया । शुद्ध साधन उपयोग करने वाले व्यक्ति को निराशा अथवा पराजय का सामना नहीं कराता । उनका मानना था कि सफलता का एक लक्षण यह है कि वह बिना कष्ट सहे नहीं मिलती ।

8.4 संघर्ष-निवारण शांति की विभिन्न सत्याग्रही तकनीकें

अपने सत्याग्रह अभियान के दौरान गाँधीजी ने विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल किया । गाँधीजी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है, "सत्याग्रह एक वटवृक्ष की भांति है जिसकी अनगिनत शाखायें हैं सत्य और अहिंसा मिलकर तने का निर्माण करती हैं जिससे असंख्य शाखायें प्रस्फुटित होती हैं । "सत्याग्रह के तौर-तरीके परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं । किन्तु इन सभी तरीकों के मूल में पवित्रता, साधन एवं साध्य की शुद्धता, अहिंसा के सिद्धान्त का पालन आदि सन्निहित होते हैं । राघवन अय्यर ने अध्ययन की दृष्टि से इन्हें चार प्रकारों में विभक्त किया है आत्म-शुद्धि से संबंधित विधियाँ, असहयोग के प्रकार, सविनय अवज्ञा के तरीके और रचनात्मक कार्यक्रम ।

8.4.1 आत्म-शुद्धि की विधियाँ

आत्म-शुद्धि की विधियाँ सत्याग्रही को शक्ति प्रदान करती हैं और माध्यम से वह न्यूनतम समय में कम कष्ट सहकर प्रभावपूर्ण तरीके से विवादों का निराकरण कर सकता है ।

आत्म-शुद्धि के साधनों में गाँधीजी ने प्रतिज्ञा, (संकल्प अथवा शपथ) प्रार्थना और अनशन को अपनाया जाता है ।

8.4.1.1 प्रतिज्ञा

गाँधीजी के लिये प्रतिज्ञा (संकल्प अथवा शपथ) अर्थ है, वह प्रतिज्ञा पूरा करना नैतिक रूप से आवश्यक है । वे इसे चरित्र निर्माण और आत्मानुभूति के लिये प्रदर्शित सकता है । इसका अर्थ है कि सत्याग्रही अपने चुने हुए रूप से प्रतिबद्ध है । गाँधीजी के एक सत्याग्रही के लिये आवश्यक है कि वह सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों का मन, वचन और कर्म पालन करें, साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा दे, खादी को अपनाये, छुआछूत का उन्मूलन करे, धर्म और देश की रक्षा के लिये साहसपूर्वक कष्ट सहने को तत्पर रहे और अपने नेताओं की आज्ञा का पालन करे ।

8.4.1.2 प्रार्थना

गाँधीजी का मत था कि बड़े से बड़। मानवीय प्रयास भी तब तक नहीं हो सकता जब तक उस पर ईश्वर की अनुकम्पा न हो । एक व्यक्ति में कई कमजोरियाँ होती है जिनके कारण कई बार वह अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पाता । अपनी कमजोरियों से बचने लिये आवश्यक है कि हम ईश्वर की शरण मे जायें । उनका विश्वास था कि प्रार्थना के द्वारा व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से सक्षम बन सकता है । गाँधीजी यह भी मानते थे कि प्रार्थना विरोधी के हृदय परिवर्तन मे भी सहायक होती है और इसमें बहुत बल होता है ।

8.4.1.3 उपवास

प्रार्थना की तरह ही उपवास अथवा अनशन को भी गाँधीजी ने अपनी कठिनाइयों को जीतने का माध्यम बताया था उन्होंने उपवास को प्रार्थना का सबसे निष्ठावान तरीका चूंकि वे उपवास को एक बहुत शक्तिशाली हथियार मानते थे अत: वे मानते थे कि का उपयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिये । उनका मानना था कि उपवास आत्म शुद्धि आत्म नियंत्रण के लिये किया जा सकता है अथवा इसका उपयोग विरोधी कैसे प्रभावित करने अपने मूल विचार पर पुनर्विचार के लिये प्रेरित करने में होना चाहिये । गाँधीजी ने इसका उपयोग हिंसा रोकने, लोगों के बीच कड़वाहट को दूर करने और राजनैतिक वातावरण को शुद्ध करने के लिये भी किया उनका विचार था कि उपवास, आत्म की गहराइयों से उत्पन्न होना चाहिये । गाँधीजी का मानना था कि पर्याप्त प्रशिक्षण द्वारा कोई भी व्यक्ति इसका उपयोग कर सकता है, किन्तु उपवास को अंतिम हथियार ही माना जाना चाहिये ।

8.4.2 अहिंसात्मक असहयोग की विधियाँ

अहिंसात्मक असहयोग के बारे में गाँधीजी का मानता था कि यह सत्याग्रह का एक प्रकार है सहयोग ना देना । गाँधीजी ने इसे बड़ा प्रभावशाली एवं प्रासंगिक माध्यम माना है । उनका कहना था कि कोई अन्यायी व्यक्ति तब तक अन्याय नहीं कर सकता, जब तक हम उसके अन्याय को सहन नहीं करते हैं । इस प्रकार जब हम उसे उसके प्रयासों में सहयोग नहीं

करते तो उसके प्रयास निष्फल हो जाते हैं । इस प्रकार अन्याय को उसके प्रारंभिक स्वरूप में ही समाप्त किया जा सकता है । गाँधीजी का मानना था कि इसके लिये आत्म-नियंत्रण और धैर्य के साथ-साथ दृढ़ इच्छा शक्ति भी होनी चाहिये ताकि व्यक्ति सत्य के मार्ग पर चलते हुए बुराई और अन्याय के मार्ग का डटकर विरोध कर सके ।

असहयोग की प्रवृत्ति के बारे में गाँधीजी ने कहा है कि इसे सम्पूर्ण रूप से अहिंसात्मक होना चाहिये एवं सत्याग्रही के लिये यह आवश्यक है कि वह इसे सजा देने, द्वेष, घृणा आदि रखने के लिये उपयोग में न ले इसका अर्थ यह है कि यदि अन्यायी व्यक्ति अन्याय करना छोड़ दे तो सत्य एवं न्याय के मार्ग पर चलते हुए उसका सहयोग किया जाना चाहिये एक सत्याग्रही का कर्तव्य है कि वह अपने विरोधी को इस बात का भरोसा दिलाये कि वह उसे शत्रु नहीं मित्र बनाये और वह उसके प्रति घृणा एवं द्वेष का कोई भावना नहीं रखता । गाँधीजी ने असहयोग को विरोधी के हृदय की छूने एवं उसके मस्तिष्क को प्रभावित करने का माध्यम बताया ।

गाँधीजी के अनुसार एक सत्याग्रही को तीन बातों को पालन करना आवश्यक बताया है पहला बात है कि वह राज्य के कानून का स्वेच्छापूर्वक पालन करे, दूसरा कि वह अपने लिये असुविधाजनक कानूनों को स्वीकार करे, और तीसरा यह कि जो व्यक्ति कष्ट सहन नहीं कर सकता वह एक सत्याग्रही के रूप में प्रभावी रूप से असहयोग नहीं कर सकता । असहयोग के लिये गाँधीजी ने हड़ताल, बहिष्कार और हिजरत जैसे माध्यमों पर बल दिया ।

8.4.2.1 हड़ताल

हड़ताल का अर्थ है व्यापार को रोककर अनुचित कानून अथवा आदेश का विरोध करना । गाँधीजी ने इस बात पर जोर दिया कि हड़ताल बहुत कम समय के लिए होनी चाहिए एवं इसका बार-बार उपयोग करना भी अपेक्षित नहीं है । हड़ताल विरोध प्रकट करने का, असंतुष्टि प्रकट करने का और शोक प्रकट करने का माध्यम हो सकता है ।

हड़ताल के माध्यम से गाँधीजी को असहयोग का एक नया शस्त्र मिला । इसका अर्थ है बुराई करने वाले व्यक्ति के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग उसके बुरे विचारों एवं कार्यो को प्रोत्साहित देने के तुल्य है । अत: उसे किसी प्रकार का सहयोग देना अपेक्षित नहीं है । इस असहयोग के द्वारा उस व्यक्ति को यह अनुभव कराने का प्रयास किया जाता है कि वह अपने बुरे विचारों एवं कार्यो को त्याग दे उनका मानना था कि वास्तव में हडताल श्रमिकों का शस्त्र है जिसके द्वारा वे अपने नियोक्ता से अपेक्षित व्यवहार और जीवन स्तर प्राप्त कर सकते हैं । विचार था कि इसे पूर्णत: अहिंसात्मक होना चाहिये । हडताल करने वाले व्यक्तियों को कुछ बातों ध्यान रखना आवश्यक है जैसे उनकी मांगे उचित एवं न्यायसंगत होनी चाहिये, हड़तालियों का आत्म निर्भर होना चाहिये, न्यूनतम और अपरिवर्तनीय मांग की घोषणा हड़ताल पर जाने से पूर्व कर देनी चाहिये । राजनैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये की गई हड़ताल के बारे में गाँधीजी ने कुछ बरतने पर सावधानियाँ जोर दिया । उन्होंने कहा कि हड़ताल शासन को किसी प्रकार परेशान अथवा करने के लिये नहीं की जानी चाहिये । इसके साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि जन को किसी प्रकार की असुविधा न हो ।

8.4.2.2 बहिष्कार

असहयोग का दूसरा प्रकार है बहिष्कार । गाँधीजी की दृष्टि में यह एक या समूह द्वारा इस बात को प्रकट करने का माध्यम है कि वे अन्याय अथवा बुराई का साथ नहीं देंगे । इस प्रकार के विरोध द्वारा वे अन्याय को खत्म कर न्याय की स्थापना का प्रयास करते हैं गाँधीजी ने तीन प्रकार के बहिष्कार बताये है - राजनीति, सामाजिक और आर्थिक । राजनैतिक का अर्थ है कि सत्य से किसी प्रकार का समझौता संभव नहीं है चाहे अन्याय करने वाला व्यक्ति कोई भी या कितना भी शक्तिशाली क्यों ना हो । गाँधीजी ने इसे विस्तृत करते हुए कहा कि इसका अर्थ है कि हम अन्यायपूर्ण और नैतिक रूप से भ्रष्ट शासन से किसी प्रकार का सम्मान स्वीकार नहीं करेंगे । आर्थिक और सामाजिक बहिष्कार के बारे में गाँधीजी ने कहा कि हम कोई पादवी, वस्तु व्यक्ति और संस्था को स्वीकार नहीं करेंगे

84.2.3 हिजरत

असहयोग का एक और स्वरूप हिजरत है । गाँधीजी ने कहा कि उपयोग अन्याय और अत्याचार करने वाले शासकों से बचने के लिये अंतिम शस्त्र के रूप में किया जा सकता है । हिजरत का अर्थ है शासक और उसके द्वारा शासित स्थान से पलायन कर जाना । इसका अर्थ है अन्याय से दूर भाग जाना किन्तु यह भीरूता का प्रतीक नहीं है बल्कि इस बात का है कि व्यक्ति हर स्थिति में अपनी ईमानदारी और निष्ठा को बचाये रखना चाहता है ।

8.4.3 सविनय अवज्ञा की विधियाँ

सत्याग्रह का तीसरा स्वरूप है - सविनय अवज्ञा । इसका अर्थ है कि राज्य कानून अथवा अनैतिक कानून का उल्लंघन करना और इसका उपयोग एक सत्याग्रही अहिंसात्मक किन्तु विनम्र रूप से अपना प्रतिरोध प्रकट करने के लिये करता है । गाँधीजी ने इसे अहिंसा की सक्रिय अभिव्यक्ति बताया और सत्याग्रहियों के लिये इसे अमूल्य अस्त्र बताया । उनके अनुसार यह असहयोग का तार्किक परिणति, आखिरी रास्ता और अत्यंत कठोर अभिव्यक्ति है । उन्होंने इसे सशस्त्र संघर्ष का सम्पूर्ण, प्रभावी और रक्तहीन विकल्प बताया । गाँधीजी ने इसका उपयोग अंतिम अस्त्र के रूप में करने की सलाह दी और कहा कि प्रारंभिक स्तर पर कुछ चुने हुए सत्याग्रही ही इसे आरंभ करे । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के दो रूप बताए, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और सामूहिक सविनय अवज्ञा । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के आंशिक और पूर्ण स्वरूप भी बताए । आंशिक सविनय अवज्ञा का अर्थ है मात्र कुछ चुने हुए अनैतिक कानूनों का पालन नहीं करना तथा अन्य कानूनों का पालन करते रहना । गाँधीजी ने इस बात की संभावना से भी इंकार नहीं किया कि कोई शासन पूर्णत: अनैतिक भी हो सकता है ऐसी परिस्थितियों में उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसे शासन के प्रत्येक कानून को मानने से इन्कार कर दे, चाहे इसकी परिणति हिंसक दमन क्यों ना हो । गाँधीजी के अनुसार इस प्रकार के सम्पूर्ण सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अर्थ है राज्य के विरूद्ध शांतिपूर्ण विद्रोह । गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के दो और स्वरूपों - आक्रामक और रक्षात्मक भी बताए । आक्रामक सविनय अवज्ञा एक पूर्णत: अहिंसात्मक रूप से राज्य के सभी कानूनों को स्वेच्छापूर्वक उल्लंघन

करने का नाम है । इसमें भय का कोई स्थान नहीं होता और इसे राज्य के विरूद्ध विद्रोह माना जा सकता है । रक्षात्मक सविनय अवज्ञा में कुछ चुने हुए अनैतिक कानूनों का विरोध किया जाता है जो एक व्यक्ति के आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा के विरूद्ध होते हैं ।

चाहे सविनय अवज्ञा किसी भी स्वरूप में उपयोग में क्यों न ली जाये उसका स्वरूप हमेशा सभ्य होना चाहिये । उन्होंने साथ में यह भी कहा कि इसे अहिंसात्मक होना भी आवश्यक है । उन्होंने कहा कि सविनय अवज्ञा का परिणाम कभी भी अव्यवस्थापूर्ण माहौल नहीं होना चाहिए । ऐसा होने पर हम इसे आपराधिक अवज्ञा ही कहेंगे । किसी भी प्रकार की हिंसा होने पर सत्याग्रही का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन के मूल्य पर भी हिंसा को रोकने के सभी संभव उपाय करें । सविनय अवज्ञा के उच्च उद्देश्यों के बारे में गाँधीजी ने कहा था, "सविनय अवज्ञा की योजना थी कि हिंसा को पूर्णत: समाप्त करके उसके स्थान पर अहिंसा को स्थापित किया जाये एवं घृणा के स्थान पर प्रेम और लडाई झगडों के स्थान पर सौजन्य स्थापित किया जाये ।" गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा के कुछ तरीके सुझाये जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं - पिकेटिंग (धरना), सभाओं और पदयात्राओं का आयोजन, कर ना देने का निर्णय और चुनिंदा कानूनों का स्वेच्छापूर्वक उल्लंघन ।

8.4.3.1 धरना

गाँधी ने धरने की रक्षात्मक सविनय अवज्ञा के साधन के रूप में वकालत की क्योंकि यह सरकार पर सामाजिक- आर्थिक व राजनीतिक दबाव बनाते है साथ ही जनमत का निर्माण करते है और आत्म निर्भरता की भावना को बढ़ावा देता है ।

8.4.3.2 बन्द

सविनय अवज्ञा का एक दूसरा प्रकार बंद, रैलियों व बैठकों का आयोजन करना था जिसकी गाँधी ने काफी वकालत की और वास्तविक निर्माता भी थे । गाँधी ने इसके प्रयासों में सरकार के अन्यायपूर्ण प्रतिबंधात्मक आदेशों के विरूद्ध लोगों को एक जुट कर विरोध करना और सरकार के गलत कार्यो के विरूद्ध जनमत का निर्माण कार्यो में आदि को शामिल किया ।

8.4.3.3 कर अदायगी बन्द करना

कर की अदायगी रोकने को भी गाँधी ने सविनय अवज्ञा का एक अन्य रूप में मान्यता प्रदान की । जिसमें सरकार द्वारा स्वीकारकर्ता पर लगाये जाने वाले पूर्व निर्धारित करों की अदायगी या सरकारी फीस वसूली जानें जिनके लिए वे सोचते है कि यह अन्यायपूर्ण है, के लिए मना करना शामिल हे । इसका उद्देश्य अस्तित्व के महत्वपूर्ण स्त्रोतों का संरक्षण करना तथा सरकार को मजबूत बनाना जैसे - वित्त, और इसके माध्यम से सरकार पर प्रभाव डालना ताकि वह अन्यायपूर्ण आदेशों को खारिज कर दे ।

8.4.3.4 राज्य के कानून विशेष की अवज्ञा करना

करों की अदायगी रोकने के समान ही सविनय अवज्ञा का एक अन्य रूप जिसका, गाँधी ने वकालत की थी वह है राज्य के कानून विशेष की अवज्ञा करना । इसमें उन कानूनों का

चुनकर अवज्ञा की जाती है जो व्यक्तियों की मूलभूत आवश्यकता को पूरा करने में असफल रहे या जिन से व्यक्तियों की गरिमा का उल्लंघन किया । गाँधी ने वकालत की कि अवज्ञा हेतु कानून विशेष का चयन बड़े ध्यान से एवं विवेक के साथ होना चाहिए । केवल ऐसे कानूनों जो नागरिकों के हितों को नुकसान पहुँचाते है या जो न तो नैतिक है और न ही अनैतिक, अवज्ञा के लिए चयन किया जाना चाहिए । इसके अलावा उन्होंने जोर दिया कि ऐसे कानूनों का चयन हो जो लोगों की बड़ी संख्या में सहभागी बनने में भी सहायता करें ।

8.4.4 रचनात्मक कार्यक्रम

सत्याग्रह का अंतिम प्रकार रचनात्मक कार्यक्रम है । ये सत्याग्रह आंदोलन के अत्यन्त सकारात्मक कार्यक्रम है । इसकी खोज किसी भी सत्याग्रह अभियान को नैतिक रूप से पतन से लेकर दंगों जैसी हिंसक गतिविधियों की ओर बढ़ने से रोकने के लिए की गई थी । गाँधीजी ने इसे सत्याग्रह आन्दोलन का अभिन्न अंग माना था और इसका उद्देश्य था कि सभी सत्याग्रहियों को आपसी मेलजोल, सामंजस्य और सौहार्द से रहना सिखाना । गाँधीजी इसे एक नये सत्याग्रही को स्वतंत्रता का अनुशासित सिपाही बनाने का प्रारंभिक प्रशिक्षण मानते थे । इसलिए गाँधी ने इसे बहादूर की अहिंसा के लिए प्रशिक्षण तथा स्वराज प्राप्ति के साधन के रूप में मान्यता प्रदान की । सत्याग्रह आन्दोलन के अनिवार्य भाग के रूप में यह सत्याग्रहियों के बीच अच्छी समझ पैदा करता है, और उन्हें आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाता है जिसको गाँधी सत्याग्रह अभियान के प्रभावी रूप से जारी रखने के लिए अपरिहार्य मानते थे । एक प्रशिक्षण प्रक्रिय के रूप में यह अनुशासित सत्याग्रही सैनिकों की एक लम्बी पंक्ति तैयार करने मे मदद करता है । इसी तरह सत्याग्रही और विरोधी के बीच अन्तःक्रिया के साधन कें रूप में विरोधी को यह समझाने कि विरोधी के प्रति सत्याग्रही की चिन्ता और इरादे अच्छे हैं, का काम करती है । इसका उपयोग विरोधी को अपने विचारों एवं कार्यो की शुद्धता बताने का काम करता है । इसके द्वारा सत्याग्रही अपने विरोधी को यह दर्शाने का भी प्रयास करता है कि वह अपने विरोधी का भी शुभचिंतक है । सामाजिक स्तर पर रचनात्मक कार्यक्रमों का उद्देश्य था - विभिन्न सामाजिक बुराइयों जैसे साम्प्रदायिक अविश्वास, छुआछूत, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि का उन्मूलन । इस प्रकार इन कार्यक्रमों द्वारा वर्तमान व्यवस्था में सुधार के प्रयास किये जाते हैं । इनका लक्ष्य है अन्यायपूर्ण सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं से मुक्ति । इसलिए जहाँ यह अवस्था में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अन्याय के विरूद्ध अभियान है वहीं यह विद्यमान व्यवस्था के पुनर्निर्माण के प्रयासों का प्रतिनिधित्व भी करता है ।

रचनात्मक कार्यक्रमों के बारे में गाँधीजी ने 15 प्रमुख बिन्दु बताये है -

1.साम्प्रदायिकता का उन्मूलन, 2. छुआछूत का उन्मूलन, 3. शराबबंदी, 4. खादी का उपयोग, 5. ग्रामीण उद्योगों का विकास, 6. गांव में स्वच्छता की स्थापना, 7. बुनियादी शिक्षा का विकास, 8. प्रौढ़ शिक्षा का विकास, 9. महिलाओं का उन्नयन, 10. स्वास्थ्य और सफाई पर ध्यान देना, 11. हिन्दुतानी भाषा को स्वीकार करना और उसके विकास के प्रयत्न करना, 12. क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन देना, 13. न्यासिता (ट्रस्टीशिप), 14. बाहरी व्यक्तियों के प्रति सद्भाव रखना और 15. छात्रों, किसानों और मजदूरों को संगठित करना ।

8.5 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गाँधीजी ने शान्ति की एक समग्र दृष्टि अपनायी है । उन्होंने इसे व्यक्ति के मूल अस्तित्व को पहचान उसके सद्‌गुणों के विकास की बात की । इसके साथ-साथ सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर ऐसे ही सद्‌गुणी व्यवस्थाओं का मूर्तिकृत रूप प्रतिपादित किया । शान्ति-निर्माण की दृष्टि से ये पहलू बहुत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य हैं । उन्होंने शान्ति को किसी सीमा की परिधि में नहीं बांधा बल्कि शान्ति को सक्रिय एवं अहिंसक सहभागिता के द्‌वारा संघर्षों के निवारण की प्रक्रिया के रूप में देखा और इसे कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के साथ जोड़ा जो विभिन्न प्रकार के संघर्षों के स्थायी एवं प्रभावी समाधान उपलब्ध कराते हैं । शान्ति स्थापना की दृष्टि से ये पहलू बहुत महत्वपूर्ण और अपरिहार्य हैं । इस प्रकार शान्ति प्राप्त करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण दो कार्य, शान्ति-निर्माण और शान्ति-स्थापना के सम्बन्ध मे गाँधी एक उपयोगी एवं व्यावहारिक दृष्टि प्रदान करते है ।

8.6 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधी के शान्ति सम्बन्धी विभिन्न आयामों पर एक लेख लिखिए ।
2. शान्ति स्थापना के लिए आवश्यक गाँधीवादी मूल्यों पर एक लेख लिखिए ।
3. संघर्ष निवारण और शान्ति की विभिन्न सत्याग्रही तकनीकों का वर्णन कीजिए ।

8.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दाधीच, नरेश (सम्पादित), टुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड : इन्टरनेशनल एण्ड इन्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
2. अय्यर, राघवन, द मोरल एण्ड पोलिटीकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, ओ. यू. पी., दिल्ली, 1973
3. धवन, पी. एन, "द पोलिटीकल फिलास्फी ऑफ महात्मा गाँधी", सस्ता साहित्य मण्डल, मुम्बई, 1990
4. दास, रतन, द ग्लोबल विशन ऑफ महात्मा गाँधी, सरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2005
5. अय्यर, राघवन, एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्सफोर्मेशन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994
6. मिश्रा, ए.डी. एवं नारायानासामी एस., वर्ल्ड क्राईसिस एण्ड द गाँधीयन वे. कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2009
7. कुमार, बी. अरूण, गाँधीयन प्रोटेस्ट, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2008
8. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000
9. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1985

10. शंकधीर एम.एम., अण्डरस्टेंडिन्ग गाँधी टुडे, दीप एण्ड दीप पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1996

इकाई - 9

गाँधी एवं वैकल्पिक विश्व व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 विश्वव्यवस्था की अवधारणा

9.3 गाँधीवादी विश्वव्यवस्था

9.3.1 प्रमुख पहलू

9.3.1.1 व्यक्ति का हृदय परिवर्तन

9.3.1.2 विकेन्द्रीकृत राजनैतिक व्यवस्था

9.3.1.3 आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था

9.3.1.4 शोषण रहित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था

9.3.1.5 नवीन राष्ट्रवाद

9.3.2 मुख्य रणनीतियाँ

9.3.2.1 सत्याग्रह

9.3.2.2 अहिंसा

9.3.2.3 निरस्त्रीकरण

9.3.2.4 मानवीय परिवर्तन

9.4 मूल्यांकन

9.4.1 महत्त्व

9.4.1.1 गाँधी का सत्याग्रह सार्थक है

9.4.1.2 गाँधीवादी चिंतन वास्तविकता के निकट है

9.4.1.3 यह चिंतन कोरी कल्पना नहीं है

9.5 सारांश

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

9.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप वैकल्पिक विश्व व्यवस्था के बारे में गांधी जी के विचार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- विश्व व्यवस्था का अर्थ और प्रकृति
- गाँधीवादी विश्व व्यवस्था का अर्थ और प्रकृति
- वैकल्पिक गाँधीवादी विश्व व्यवस्था का महत्त्व ।

9.1 प्रस्तावना

विश्व शान्ति की कामना मानव जाति के विकास से ही सभी के लिए एक प्रमुख बहस का मुद्दा बना रहा है जिसे पिछले एक शताब्दी में बहुत प्रमुख बल मिला है । शीतयुद्धोत्तर युग में आये बदलावों व विश्वव्यवस्था मे ढांचागत परिवर्तनों ने इस बहस को और महत्वपूर्ण मोड़ पर ला खड़ा किया है । 20वी शताब्दी में इसके आंकलन करने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों जैसे- शक्ति की राजनीति (शक्ति संतुलन), भय का सिद्धांत (नरसंहार के शस्त्रों), निरस्त्रीकरण (एन.पी.टी एवं सी.टी.बी.टी.), सामूहिक सुरक्षा (राष्ट्रसंघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ) वर्गसंघर्ष (मार्क्सवाद), ढांचागत कार्यात्मकता आदि का उपयोग किया गया । परन्तु से सभी दृष्टिकोण विश्वशान्ति स्थापित करने में विफल रहें है ।

इसी संदर्भ में 1960 के दशक में 'भावी विश्व व्यवस्था' हेतु मुहिम के अन्तर्गत भी विभिन्न विद्वानों ने कई पुस्तकों एवं लेखों के माध्यम से भावी व्यवस्था का प्रारूप देने के प्रयास किए । उनके प्रयासों में पांच प्रमुख तत्वों, जैसे- युद्ध रोकना, शान्ति स्थापना, गरीबी उन्मुलन, पर्यावरण संतुलन एवं मानवीय निक्रियता या अलगाव को दूर करने को महत्व प्रदान किया गया था । परन्तु इस दिशा में भी न तो एक सर्व सम्मत दृष्टिकोण का निर्माण हो सका तथा न ही किसी प्रस्तावित सम्भावित विश्व की परिकल्पना को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया । अत: वर्तमान दृष्टिकोणों की विफलता के परिणाम स्वरूप एक वैक्लपिक विचारधारा की आवश्यकता है जो प्रचलित मान्यताओं एवं रणनीतियों से भिन्न हो । इस संदर्भ में विश्वव्यवस्था के गाँधीवादी चिन्तन को न केवल उपयुक्त बल्कि अनिवार्य कहा जा सकता है ।

9.2 विश्वव्यवस्था की अवधारणा

गाँधीवादी विश्वव्यवस्था को समझने से पूर्व विश्वव्यवस्था से हमारा क्या अभिप्राय है यह समझना अति आवश्यक हो जाता है । सामान्यता विश्व व्यवस्था से अभिप्राय ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली से होता है जिसमें विशिष्ट संदर्भ में समस्याओं का अभाव हो । परन्तु कई बार इस प्रकार की स्थिति जहां एक राष्ट्र हेतु व्यवस्था का स्वरूप रखती है तो दूसरों के लिए इसके विपरित स्थिति माना जा सकता है । इसी प्रकार यदि यह व्यवस्था एक विशेष प्रकार के राष्ट्रो की वैधता हेतु कार्यरत हो तो इसकी यथास्थिति बनाये रखने के लिए आलोचना की जायेगी । अत: विश्वव्यवस्था से हमारा अभिप्राय उपरोक्त दोनों स्थितियों न होकर एक ऐसी प्रणाली से होगा जहाँ राष्ट्रों की समस्याओं के निदान के उपचार की व्यवस्था हो । इस संदर्भ में यह व्यवस्था कुछ रणनीतियों के माध्यम से विश्व में सकारात्मक परिवर्तन हेतु कार्यरत रहती है । परन्तु परिवर्तन की परिभाषा सभी राष्ट्रों द्वारा भिन्न-भिन्न होगी, अत: विश्वव्यवस्था एक काल्पनिक, जटिल एवं बिखरा हुई अवधारणा होगी जो हमेशा अव्यवस्था से उत्पन्न होगी ।

इसलिए वर्तमान संदर्भ में विश्वव्यवस्था के सही आकलन हेतु इसे मात्र कुछ मूल्यों, प्रक्रियाओं एवं संस्थाओं का रूप माना जाए जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मानवीय विकास हेतु कार्यरत रहे । इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति एवं सत्ता की मूल, वर्तमान व भविष्य के उन ढ़ाचों का अध्ययन सम्मिलित हो, तथा जिनमें उन मानवीय उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयास हो

जिनमें सभी मनुष्यों का लाभ जुड़ा हो तथा मानवीय आवश्यकताओं को वस्तुनिष्ठ अध्ययन सम्मिलित हो । इसलिए इसके अन्तर्गत परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के शक्ति संघर्ष के सरोकरों से परे की बात सम्मिलित हो । इसका मुख्य केन्द्र बिन्दु मानवीय कल्याण हो जिसमें युद्ध एवं हिंसा के स्थान पर सामाजिक न्याय, पर्यावरण संतुलन, निर्णय प्रक्रिया में समान भागीदारी आदि सम्मिलित हो । गाँधी के विचारों को भी इसी प्रकार की विश्वव्यवस्था के संदर्भ में अध्ययन किया जाना चाहिए ।

9.3 गाँधीवादी विश्वव्यवस्था

यह सत्य है कि गाँधी ने कभी भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया तथा न ही उन्होंने विश्व व्यवस्था के किसी प्रतिमान की रचना की । लेकिन इसका यह अर्थ भी कतई नहीं है कि गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली के दोषों से अवगत नहीं थे । यह भी सत्य नही है कि गाँधी युद्ध व हिंसा की घटनाओं से अनभिज्ञ थे । इसके विपरित उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कई महत्वपूर्ण घटनाओं एवं युद्ध व शान्ति के मुद्दों पर अपनी राय अभिव्यक्त की । उन्होंने दक्षिण अफ्रीका व भारत में अपने आन्दोलनों में कई अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों से स्वयं को आत्मसात किया । इसलिए उनके विश्व व्यवस्था सम्बन्धित विचारों को उनके समग्र चिंतन एवं व्यवहारिक कार्यकलापों के आधार पर समझना चाहिए ।

गाँधी के विश्व व्यवस्था सम्बन्धित विचारों का आंकलन करने से पूर्व उनके शान्ति के बारे में विचार जानना अत्यन्त अनिवार्य है । क्योंकि उद्देश्य की जानकारी के बाद प्रक्रिया को समझना सरल हो जाता है । इस संदर्भ में गाँधी कें संबंध में शान्ति की अवधारणा से जुड़ी भ्रान्तियों का स्पष्टीकरण अनिवार्य है । ये भ्रांतियों हैं- प्रथम, गाँधी शान्ति को मात्र युद्ध की अनुपस्थिति ही नही मानते थे, परन्तु इससे अधिक साकारात्मक अवधारणा है । द्वितीय, केवल अहिंसा की विचारधारा को मानना ही शान्ति नही है । तृतीय, यह एक संक्षिप्त रास्ता नहीं है बल्कि लम्बी प्रक्रिया है जो समग्र प्रणाली के ढ़ाचों एवं विचारों से जुड़ी हुई है । अत: गाँधी शान्ति को सत्य पर आधारित अहिंसात्मक स्थिति मानते थे । यह केवल बाहम आवरण तक ही सीमित न होकर, व्यक्ति की अर्न्तआत्मा से जुड़ा प्रश्न है । अत: गाँधी इसे समग्र रूप से सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिकता आदि से जुड़ा मानते थे । इसलिए वे विचार व ढ़ाचों को एक प्रमुख कारक मानते थे । अत: उनका मानना था कि अनैतिक समाज में नैतिक मानव या इसके विपरित की कल्पना करना मुश्किल है । अत: मानव व समाज एक दूसरे से जुड़े हुए है, इसलिए शान्ति की कल्पना भी इन दोनों के समग्रता में ही की जा सकती है । इनको अलग-अलग करके शान्ति का उद्देश्य प्राप्त करना अति कठिन कार्य है ।

गाँधी के प्रतिमान के संदर्भ में यह भी सत्य है कि उनके विचार विकास के पाश्चात्य, विचारों की आलोचना पर आधारित है । वे भौतिकवादी एवं राज्य केन्द्रित व्यवस्था के भी आलोचक रहें है । उन्होंने गैर-भौतिकवादी एवं व्यक्ति केन्द्रित विश्व व्यवस्था का समर्थक किया है । उन्होंने इस समस्या को एक समग्र रूप में देखा है जिसमें समाज के विभिन्न पहलू अलग न होकर एक दूसरे के साथ जुड़े हुए है ।

9.3.1 प्रमुख पहलू

गाँधीवादी चिन्तन में विश्व व्यवस्था प्रतिमान की निम्नलिखित विशेषताएं है-

9.3.1.1 व्यक्ति का हृदय परिवर्तन

गाँधी व्यक्ति को राज्य, समाज तथा विश्व प्रणाली से अलग न मानकर उसका एक अभिन्न अंग मानते थे । इसलिए उनका मानना था कि व्यक्ति के परिवर्तन के बिना विश्व व्यवस्था में बदलाव सम्भव नही है । गाँधी मूलत: व्यक्ति को स्वभाव से अच्छा मानते थे । इसी कारण व्यक्ति अपने अन्य साथियों से प्यार करता है । दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष उभरता है कि प्यार ही जीवन का आधार है तथा यही मानव का सबसे सुन्दर पहलू है । लेकिन गाँधी इस बात से भी भली भांति परिचित थे कि मानव का अच्छा होना मात्र अपने आप से विश्व शान्ति स्थापित नहीं करेगा । परन्तु उनका मानना था कि उसकी आध्यात्मिक अच्छाई व्यक्ति को सच्चाई का पालन करने हेतु उसे बाध्य करेगी जिससे शान्ति के उद्देश्य की प्राप्ति होगी । परन्तु गाँधी के इस मानवीय हृदय परिवर्तन में स्व-अनुशासन, स्वयं का त्याग एवं अहिंसा महत्वपूर्ण कारक होंगे । इस हेतु मनुष्य को मानवीय एवं सामाजिक दोनों सरोकारों में समन्वय रखना होगा । इसलिए दूसरों की सेवा से संबन्धित, सभी गुणों का विकास करना होगा । अन्तत: संघर्ष समाप्ति हेतु स्वेच्छिक यातना के माध्यम से दूसरे के हृदय को परिवर्तित करना होगा । इस प्रकार विश्व शान्ति हेतु गाँधी मनुष्य में मूलभूत परिवर्तन के पक्षधर थे । गाँधी के अनुसार मानव राज्य या अन्य बाह्म परिवेश के द्वारा बाध्य न होकर, केवल सत्य के आधार पर समर्पित होगा । इस प्रकार की अवधारणा मानवीय एवं राष्ट्रों दोनो पर समान रूप से लागू होगी । क्योंकि यह अवधारणा त्याग एवं आत्म अनुशासन पर आधारित है, इसलिए यह कमजोर व्यक्ति की बजाय शक्तिशाली व्यक्ति वो विचारधारा है । परन्तु इस हेतु व्यक्ति को सत्य एवं अहिंसा के प्रति वचनबद्ध होना अनिवार्य है ।

9.3.1.2. विकेन्द्रीकृत राजनैतिक व्यवस्था

गाँधी व्यक्ति को न तो राज्य, समाज एवं विश्व से अलग मानते थे तथा न ही मानव, राज्य एवं विश्व व्यवस्था को अलग-अलग व्यवस्था मानते थे । गाँधी के अनुसार राज्य एक आत्माविहिन प्रणाली है जो हिंसा फैलाती है । वे अपने अनुभव से राज्य को दण्ड देने वाली तथा तानाशाही शक्ति का प्रतीक मानते थे । अत: वह राज्य की कल्याणकारी बनाने के पक्षधर है जिसमें समाज की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । इसलिए गाँधी राज्य की शक्ति के विकेन्द्रीकृत स्वरूप के पक्षधर थे, जिससे शक्ति समाज के निम्नतर स्तर तक पहुंचे । इसके परिणाम स्वरूप राज्य में हिंसा के स्थान पर कल्याणकारी स्वरूप की स्थापना होगी । इससे सहयोग, परस्पर समन्वित एवं आत्म बलिदान पर आधारित समाज का निर्माण होगा । बाद में इन्ही गुणों पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय समाज का निर्माण होगा । गाँधी के अनुसार केन्द्रीयकृत, औद्योगिक, गैर-संवेदनशील, दण्डात्मक एवं गैर-व्यक्तिवादी राज्य एक स्वस्थ्य एवं सहयोगी

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के निर्माण हेतु उचित नहीं होते हैं इसलिए इन राज्यों के तुरन्त परिवर्तन की आवश्यकता है ।

9.3.1.3. आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था

राजनैतिक ढांचों के अनुरूप ही आर्थिक ढांचों में भी परिवर्तन की अति आवश्यकता है । गाँधी के आर्थिक चिंतन में संसाधनों एवं पूंजी के विकेन्द्रीकरण करके ग्रामीण स्तर पर कुटीर उद्योगों तथा स्वावलम्बी आर्थिक व्यवस्था आवश्यक है । गाँधी के अनुसार यही स्वावलम्बन या स्वदेशी हमें अपने इर्दगिर्द या दूर की वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग से रोकता है । परन्तु इस स्वावलम्बन का अर्थ संकीर्णता नहीं है तथा न ही इसका मतलब आत्म केन्द्रीत होना है । इसका अर्थ सभी वस्तुओं का स्वयं उत्पादन भी नहीं है । अर्थात् पूर्ण स्वावलम्बन का अर्थ है कि हम जो वस्तु स्वयं उत्पाद न कर सके उसका आयात करना चाहिए, लेकिन उसके एवज में हमें उस वस्तु का उत्पादन अधिक करना चाहिए जिसका उत्पादन हम कर सकते है । इसी प्रकार गाँधी औद्योगिकरण के उस रूप का विरोध करते थे जो बृहत दर्जे का हो एवं अधिक पूंजीनिवेश पर आधारित हो, क्योंकि इससे श्रम की खपत में कमी होगी और बेरोजगारी बढ़ेगी । इसके अतिरिक्त भारी उद्योगों से संसाधनो के स्वामित्व का केन्द्रीकरण होगा व शोषण को बढ़ावा मिलेगा । गाँधी के विचार में तकनीक का प्रयोग तटस्थ नही होता तथा न ही सर्वस्व होता है । वृहत दर्जे के तकनीकी प्रयोग में एक बड़े संगठन की जरूरत होती है जिससे पदसोपान अलगाव, शोषण एवं नौकरशाही की भूमिका को बढ़ावा मिलेगा । इसलिए गाँधी ने न्यास का सिद्धांत दिया जिसमें व्यक्ति अपने लाभ के लिए सम्पति अर्जन न करके सामुदायिक हित में ऐसा करेगा । इसके साथ-साथ गाँधी ने व्यक्ति द्वारा अपनी इच्छा एवं जरूरतों को भी सीमित करने पर बल दिया । इस प्रकार का ऐच्छिक इच्छा नियन्त्रण स्वयं के लिए तो सुखदायी होगा ही तथा व्यक्ति की समाज के कार्य हेतु क्षमता को भी बढ़ायेगा । गाँधी ने समतामूलक समाज हेतु श्रम के सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया । इसके माध्यम से जहां एक ओर श्रम में पदसोपान व्यवस्था की कमी आयेगी वहीं दूसरी ओर समाज के कुछ लोगों हेतु विलासभोग में कमी आयेगी । इससे जनसाधारण एवं आभिजात्य वर्ग के बीच की दूरियां कम होने के साथ-साथ समुदाय को निशुल्क बौद्धिक श्रम की प्राप्ति होगी ।

अत: गाँधी इस प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचों में बदलाव के पक्षधर थे जिससे दूरगामी स्थिति में समानता, सहयोग, स्वतन्त्र एवं समाजसेवी समाज का गठन हो । इसके साथ-साथ अहिंसा एवं तनाव देने वाली ताकतों का विनाश हो । यह घटनाक्रम राज्यों के मध्य सुरक्षा एवं विश्व शान्ति के विषयक्षेत्र का विस्तार करेगा । यह मानवीय परिवर्तन के साथ-साथ विश्व में भी समतामूलक, अहिंसा रहित शान्तिपूर्ण समाज को जन्म देगा ।

9.3.1.4. शोषण रहित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था

गाँधी ने न्यास के सिद्धांत माध्यम से वर्तमान में उपजी उत्तर-दक्षिण विवाद तथा ब्रिटेनवुड संस्थाओं (आई.एम.एफ., वर्ल्ड बैंक, डब्लू.टी.ओ.) के स्थान पर नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था के बदलाव की स्थिति की समस्या के समाधान हेतु दिया था । वर्तमान संदर्भ में गाँधी

के उन विचारों के माध्यम से ही विश्व की बड़ी जनसंख्या की समस्याओं का समाधान हो सकता है । विकसित राष्ट्रो को उत्तर-दक्षिण राज्यों में निर्भरता को समाप्त करके समानता पर आधारित विश्व हेतु विचार करना चाहिए । इसके अतिरिक्त विकसित देश केवल अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही चीजों का उपभोग करें तो विश्व की ज्यादातर समस्याओं का निराकरण हो सकता है ।

वर्तमान संदर्भ में संसाधनों के अधिक दोहन एवं औद्योगिकीकरण के कारणों से हुए पृथ्वी के विनाश एवं पर्यावरण के प्रदूषण की चर्चा हो रही है । इसलिए सर्वसम्मति से दूरगामी विकास की आवश्यकता का सभी मान रहे है । भूमण्डलीकरण के नकारात्मक प्रभावों के कारण अब विकास के 'मानवीय चेहरे' की बात भी स्वीकारी जा रही है । परन्तु से जब तक यथार्थ में नही बदला जा सकता तब तक गाँधी के इस सिद्धांत को नही माना जायेगा कि धरा पर सभी जरूर हेतु साधन मौजूद है, लेकिन किसी के भी लालच हेतु नहीं ।

आज के युग मे गैर-सरकारी संगठनों या सिविल समाज की भी चर्चाएं हो रही है । उनके महत्व पर अत्याधिक बल दिया जा रहा है । परन्तु यदि इन्हे कारगर बनाना हे तो आत्म बलिदान एवं स्वेच्छिक योगदान के नियमों का पालन करना होगा । अत: यदि विकसित देश अपने संसाधनो एवं तकनीकों को कुछ सीमा तक विकासशील देशों को हस्तांतरण करने पर राजी हो जाएं तो वास्तव में समता पर आधारित एक न्यायोचित विश्व व्यवस्था का गठन सम्भव हो सकता है ।

गाँधी के दृष्टिकोण में उपरोक्त परिवर्तन एक संघात्मक विश्व व्यवस्था को जन्म देगा, जिसमें व्यक्ति, राज्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली समंजस्य स्थापित कर सकेगें । यह व्यवस्था समुद्र की लहरों के समान एक दूसरे के पूरक एवं सहायक होगें । इस प्रकार के गाँधीवादी विश्व व्यवस्था की निम्न विशेषतायें होगी-

(क) गाँधीवादी विश्व संघ मे सभी राज्यों की भागीदारी समानता पर आधारित होगी, जिसमें शोषण, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, अन्याय, असमानता आदि का कोई स्थान नहीं होगा ।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सभी राष्ट्रों - बड़े या छोटे - को समानता का दर्जा जायेगा ।

(ग) संगठनों की सदस्यता ऐच्छिक होगी तथा सभी राष्ट्रो का लक्ष्य मानवता की सेवा करना होगा ।

(घ) इन संगठनों का मूलमंत्र अहिंसा होगा । इनमें सम्मिलित सभी व्यक्तियों एवं राष्ट्रों शान्तिपूर्ण विश्व व्यवस्था में गठन आस्था होगी ।

(ङ) गाँधीवादी व्यवस्था सामान्य सुधारों पर आधारित न हो कर नये मूल्यों पर स्थापित के आमूलचूल परिवर्तित स्वरूप की पक्षधर है । अत: गाँधी वर्तमान राष्ट्र संघ एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की निरन्तरता के ह कमे नही थे ।

(च) राष्ट्रों के मध्य विवादों के निपटारे हेतु नैतिक बल का प्रयोग होगा । इसके साथ-साथ शान्तिपूर्ण तरीके जैसे वार्ता, मध्यस्थता, पंच निर्णय आदि को भी सम्मिलित किया जा सकता है ।

(छ) नवीन विश्व परिवर्तन हेतु राष्ट्र दंडात्मक या हिंसात्मक कारवाई का प्रयोग नही अपितु सत्याग्रह के साधन को अपनायेंगे ।

(ज) यद्यपि संगठन में बड़े स्तर पर सेना या बल का गठन नही होगा तथापि कानून हेतु छोटे से अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस बल का गठन किया जा सकता है ।

(झ) संगठन पूर्ण निरस्त्रीकरण में आस्था रखेगा । जब तक सम्पूर्ण निरस्त्रीकरण नही होता तब तक एक राज्य भी इस ओर पहल कर सकता है जो औरों के लिए प्रेरणादायक रहेगा ।

9.3.1.5. नवीन राष्ट्रवाद

गाँधी के राष्ट्रवाद के विचारों के संबंध में समीक्षकों को भ्रांति रही है । शायद इसी कारण से 1937 में नोबल पुरस्कार समिति ने उनका नाम इस सम्मान हेतु ठुकरा दिया । परन्तु गहनता से विश्लेषण किया जाए तो गाँधी का राष्ट्रवाद परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीयवाद के समकक्ष है । गाँधी ने राष्ट्रवाद की अवधारणा को हमेशा साकारात्मक रूप से लिया है, नकारात्मक नहीं । उनका राष्ट्रवाद किसी अन्य राष्ट्र की कीमत पर नहीं था । उन्होंने एक देश की स्वतन्त्रता हेतु दूसरे के विनाश के बारे में कभी नहीं सोचा । उदाहरण स्वरूप उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता को भी अंग्रेजी विनाश की कामना पर नहीं सोचा ।

इसके अतिरिक्त उनका राष्ट्रवाद राज्य के आधार पर न होकर संस्कृति पर आधारित था । वे विभिन्नता या बाहुल्यता में राज्य द्वारा राष्ट्र निर्माण की कामना नहीं करते थे क्योंकि उनका मानना था कि राज्य आत्मा रहित परिकल्पना है । इसके साथ-साथ राज्य की शक्ति का विस्तार निम्न स्तर तक प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के विरूद्ध होगा । उत: उनका देशप्रेम एवं राष्ट्रवाद किसी भी प्रकार से एक न्यायोचित विश्व व्यवस्था की स्थापना के आड़े नहीं आता ।

9.3.2 मुख्य रणनीतियाँ

गाँधी के प्रतिमान की तरह से ही उसे प्राप्त करने की रणनीतियाँ से भिन्न है । उनकी रणनीतियाँ अहिंसा पर आधारित है, जिनका व्यक्ति व समाज दोनों को पालन करना होगा । इन नियमों को आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों संदर्भों में पालन करना होगा । गाँधी ने इस परिवर्तन हेतु निम्न प्रमुख रणनीतियाँ अपनाई-

9.3.2.1. सत्याग्रह

नई विश्व व्यवस्था हेतु गाँधी की सर्वप्रथम रणनीति सत्याग्रह का पालन करना था । सत्याग्रह मूलत: दो कारकों सत्य एवं अहिंसा पर आधारित है जिसका अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना । इसके अन्तर्गत उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त नैतिक मूल्यों की सर्वोच्चता, भगवान में विश्वास एवं भाईचारे की भावना भी सम्मिलित है । इसका प्रत्यक्ष स्वरूप मनाना, वार्ता, असहयोग, सविनय अवज्ञा, व्रत आदि के रूप में देखा जा सकता है । परन्तु गाँधी के इस प्रयोग हेतु सत्याग्रही में एक उच्च स्तरीय अनुशासन का होना अनिवार्य है ।

गाँधी के अनुसार सत्याग्रह के सिद्धांत का पालन करके विवादों को हल होगा । इस सिद्धांत के द्वारा विवादित व्यक्ति को कोई नुकसान नही पहुंचना होगा । यह कार्यवाही

दण्डात्मक स्वरूप की भी नही होगी । इस नैतिक बल को युद्धों को रोकने हेतु भी प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इसमें युद्ध उपयोगी गुण जैसे जनमानस से आग्रह, तीव्रता, दुख सहन करना तथा मधुरता भी सम्मिलित होते है । परन्तु इसका उपयोग करते समय घृणा नही, अपितु प्यार कर प्रयोग करना होगा । इसमें बदले की भावना का भी अभाव होगा । इसके साथ-साथ सच्चा सत्याग्रही किसी भी सम्मानजनक शान्तिपूर्ण हल हेतु हमेशा तत्पर रहेगा ।

9.3.2.2. अहिंसा

विश्व व्यवस्था प्राप्ति हेतु गाँधी ने अहिंसा की रणनीति पर अत्याधिक महत्व दिया । वह राष्ट्रो द्वारा किसी भी प्रकार के शोषण एवं साम्राज्यवाद के विरूद्ध थे । उनका मानना था कि जब तक बड़ी ताकतें अपने साम्राज्यवादी नीतियों को त्याग नहीं करेगी तब तक शान्ति स्थापित नहीं हो सकती । इसके लिए बड़ी शक्तियों को आपसी प्रतिस्पर्धा को त्यागना होगा, क्योंकि उनका यह मोह उनकी को मारता है । अत: उचित व्यवस्था का निर्माण तभी होगा जब विश्व के सभी छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र होंगे । इस स्वतन्त्रता का स्वरूप सामाजिक अहिंसा पर आधारित होगा जहां छोटे से छोटा राष्ट्र बड़े से बड़े के समकक्ष हो तथा जहां सर्वोच्य एवं निम्नता का भाव पूर्णतया समाप्त हो जाए ।

9.3.2.3. निरस्त्रीकरण

नई विश्व व्यवस्था के निर्माण हेतु राष्ट्रों को अहिंसा के साथ अपनी राष्ट्रीय नीतियों से युद्ध के विकल्प को त्यागने के साथ-साथ निरस्त्रीकरण को बढ़ावा देना होगा । यदि एक राष्ट्र भी निरस्त्रीकरण की पहल करेगा तो उसे डरने की आवश्यकता नहीं है, अपितु यह बाकि राष्ट्रों हेतु दिशा निर्देशन होगा । इस प्रकार अन्तत: सभी राष्ट्र परस्पर बराबरी के आधार पर भय मुक्त विश्व व्यवस्था निर्माण करेगें । गाँधी के अनुसार इस व्यवस्था की ताकत हथियारों पर निर्भर न होकर उसके गठन करने वाले नागरिकों पर आधारित होगी । इस प्रकार अहिंसा एवं बिना शर्त आधारित निरस्त्रीकरण पर आधारित एक नये विश्व व्यवस्था का निर्माण होगा । लेकिन गाँधी का मानना था कि यह निरस्त्रीकरण अन्तत: पूर्ण एवं सार्वभौमिक होना चाहिए । इसके साथ ही यह ऐच्छिक एवं स्वयं की पहल पर होना चाहिए तथा यह न केवल शस्त्रों के भौतिक विनाश तक ही सीमित न रहकर राष्ट्रों की सोच का हिस्सा भी होना चाहिए ।

9.3.2.4. मानवीय परिवर्तन

गाँधीवादी तकनीक मूलत: मानव के हृदय परिवर्तन की मान्यता पर आधारित है । गाँधीवादी दृष्टिकोण मनुष्य की अच्छाई की मान्यता पर आधारित है तथा उसके अनुसार युद्ध करने वाला भी मानव ही है तथा वह भी हृदय विहिन नहीं है । इसलिए त्याग के माध्यम से उसका हृदय परिवर्तन भी किया जा सकता है । गाँधी स्पीनोजा, मार्गेन्याऊ, लाईबुहर आदि विचारकों की भांति यह नहीं मानता कि हिंसा, मानवीय प्रकृति का हिस्सा है तथा उसे वह दूसरों के साथ व्यवहार मे त्यागना नहीं चाहता । इसलिए गाँधी का मानना था कि जो स्थाई शान्ति में विश्वास नहीं रखते वे मानव स्वभाव की अच्छाई में भी विश्वास नही करते । उनका यह भी

मानना था कि त्याग की स्थिति भी व्यक्ति की भांति राष्ट्रों में भी उपलब्ध होती है । फर्क इतना है कि राष्ट्र सब कुछ त्याग सकता है अपना सम्मान नही । यद्यपि गाँधीवादी चिंतन पर यह भी प्रश्न चिन्ह लगे कि क्या हिटलर या मुसोलिनी जैसे तानाशाहों का हृदय परिवर्तन सम्भव हो सकता है या वर्तमान के परमाणु युग के युद्ध के संदर्भ में यह कारगर सिद्ध होगा । गाँधी पूर्ण तरह से आश्वस्थ थे कि इन दोनों ही परिस्थितियों में यह सम्भव है । प्रथम, स्थिति में उनका मानना था कि इस संदर्भ में अहिंसक सत्याग्रही अपने पर दया की प्रतीक्षा नहीं करेगा । साथ ही इस प्रकार का विरोध उस तानाशाह के लिए भी एक नवीन अनुभव रहेगा, क्योंकि वह भी एक दयावान आत्मा रखता है । परमाणु हथियार की स्थिति में कुछ समीक्षकों का मानना है कि यह हिंसा की पराकाष्ठा होगी क्योंकि इन हथियारों से सम्पूर्ण सभ्यता का विनाश भी सम्भव है । परन्तु गाँधी का मानना था कि जब एक विशाल जनसमूह त्याग व बलिदान की बात करेगा तब परमाणु हथियार के बटन दबाने वालों के हृदयों मे भी परिवर्तन आयेगा । इसलिए शायद उनका मानना था कि इस परमाणु युद्ध की विनाशलीला की समाप्ति हेतु शुद्ध अहिंसक तरीका ही मात्र विकल्प हो सकता है । अत: शान्ति के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मानवीय हृदय परिवर्तन ही एक कारगर विकल्प है ।

अत: यह माना जा सकता है कि गाँधी सत्याग्रह, अहिंसा, निरस्त्रीकरण एवं मानवीय परिवर्तन की रणनीतियों के द्वारा एक न्यायोचित एवं समतामूलक विश्व व्यवस्था की स्थापना कामना करता था ।

9.4 मूल्यांकन

गाँधी के शान्ति एवं विश्व व्यवस्था के उपरोक्त गहन विश्लेषण के बाद यह अनिवार्य हो जाता है कि इसकी प्रासंगिकता का अध्ययन किया जाए । वैकल्पिक गाँधीवादी विश्व-व्यवस्था के प्रतिमान को यर्थाथ में स्थापित करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड सकता है । कुछ लोग इस उद्देश्य के बारे में सन्देह अथवा विरोध व्यक्त कर सकते हैं । वे गाँधीवादी दर्शन और साधनों के नैतिक दबाव को मानने से अस्वीकार कर सकते हैं । ऐसे विरोधियों को समझाना, उनका हृदय परिवर्तन करना और सामूहिक यत्न से वैकल्पिक गाँधीवादी विश्व-व्यवस्था के सपने को साकार करने के प्रयास निरन्तर होते रहें, यह अपरिहार्य है । ऐसा संभव हो सके, इसके लिए ऐसे प्रयासकर्ताओं में अदम्य साहस और त्याग आवश्यक है । इन व्यक्तियों में असामान्य क्षमताओं का होना जरूरी है ।

वैकल्पिक गाँधीवादी विश्व-व्यवस्था की बात करते वक्त वर्तमान युग की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का आकलन करना भी बेहद आवश्यक है । राज्य अपनी प्रभुसत्ता से किसी प्रकार का समझौता नहीं करता । इसके अलावा सम्प्रभु राज्य की आवश्यकता से जुडे चुनौतियों का सामना करना और राज्य-विहीन समाज के सपने को साकार करना अपने आप में असामान्य धैर्य, अनुशासन और कौशल की माँग को दोहराता है । यथार्थवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होकर संचालित विदेश नीति के केंद्र में शान्ति के उद्देश्य को सर्वोच्च स्थान प्रदान करने का प्रयास यथार्थवादियों के द्वारा स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि ऐसे लोग मानते हैं कि राज्य की विदेश नीति में स्वयं के हितों के अनुरूप सुरक्षा, आर्थिक विकास, अनुकूल विश्व व्यवस्था बनाये

रखना आदि प्रमुख होते है और राज्य कभी भी विदेश नीति सीधे तौर पर शान्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर कार्यरत नही करता । यह सत्य है कि आदि काल से अब तक कोई भी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के लिए अपने राष्ट्रीय हितों की बलि देने के लिए तैयार नही है । राष्ट्र सदैव अपने हित प्राप्ति में तत्पर रहते है तथा उसी व्यवस्था में शान्ति भी स्थापित हो तो ठीक है, परन्तु इस हेतु वे अलग से प्रयास नही करते । अत: वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आज जहाँ संघर्ष की स्थिति में शक्ति प्रदर्शन पर अधिक बल दिया जाता है वहाँ गाँधीवादी विश्व-व्यवस्था के मापदण्ड कार्यान्वित करने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड सकता है ।

9.4.1 महत्व

उपर्युक्त व्यक्त संदेह और समस्याओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण किया जाए तो भी गाँधीवादी विश्व-व्यवस्था सम्बन्धी विचार सार्थक प्रतीत होते हैं

9.4.1.1 गाँधी का सत्याग्रह सार्थक है

जहां तक सत्याग्रही द्वारा यातना देने को प्रश्न है वह बिल्कुल निराधार है । सत्याग्रही जिस दबाव स्थिति का प्रयोग करता है वह किसी व्यक्ति के विरूद्ध ने होकर उसके कार्यकलापों के विरूद्ध होती है। क्योंकि सत्याग्रही कभी भी उस व्यक्ति से घृणा नही करता जिसके सम्मुख सत्याग्रह करता है । द्वितीय, यदि सत्याग्रही अपने उद्देश्य हेतु त्याग की बात करता है तो वह भी अनुचित नहीं है क्योंकि विश्वशान्ति आज अति गम्भीर समस्या है तथा यह अन्तिम विकल्प है । अत: इस हेतु जीवन की आहुति भी देनी पड़े तो वह कम नहीं है ।

9.4.1.2 गाँधीवादी चिंतन वास्तविकता के निकट है

गाँधीवादी चिन्तन मात्र आदर्शिक ने होकर वास्तविकता के अति निकट था । गाँधी एक प्रयोगधर्मी थे तथा आजीवन प्रयोगधर्मी बने रहे । अत: उनके आदर्श एवं वास्तविकता में अन्तर नहीं किया जा सकता । इसलिए गाँधी ने किसी भी साधन व लक्ष्य में भी अन्तर नही माना तथा दोनो की पवित्रता पर बल दिया । गाँधीवादी व्यवस्था में आत्मनिर्भर गांव एवं अन्तर्राष्ट्रीयता को अव्यवहारिक मानना भी गलत, क्योंकि वह सभी को समग्र में मानते थे, जिसमें व्यक्ति, राज्य, समाज, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था आदि सभी एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी है ।

9.4.1.3 यह चिंतन कोरी कल्पना नहीं है

गाँधी के विश्व व्यवस्था के चिंतन को केवल कोरी कल्पना मानना भी भ्रामकता होगा । चाहे गाँधी का विचार एक कल्पना ही था, परन्तु वह एक स्थिति स्थापक एवं चुनौतीपूर्ण कल्पना रहा है । क्योंकि यह मानव निर्मित शोषण एवं अन्याय को दूर करने के विरूद्ध संघर्ष था । इसके अतिरिक्त यह आज के मानव पर एक उतरदायित्व सौंपता है कि विश्व शान्ति स्थापना हेतु कार्य करें न कि अपनी यह डयूटी आने वाली पीढ़ियों को सौंप दे । यह भी सत्य है कि विदेश नीति किसी भी प्रकार की हो, परन्तु प्रत्येक का अन्तिम उद्देश्य शान्ति स्थापना ही होता है । इसलिए गाँधी द्वारा एक तरफ निरस्त्रीकरण का पालन भी राष्ट्रों के मध्य शोषण व

साम्राज्यवाद की समाप्ति का एक कदम था । अन्ततः गाँधी द्वारा जिस शान्ति स्थापना की चर्चा की है उसका अन्तिम उद्देश्य विकासशील देशों का समानता एवं न्याय के आधार परस्पर विकास कर एक समतामूलक एवं न्यायोचित विश्व व्यवस्था का निर्माण करना है ।

अतः वर्तमान विश्व व्यवस्था, जिसमें बहुत सी अनिश्चितताओं व्याप्त है, गाँधीवादी चिंतन सार्थक होने के साथ-साथ अति महत्वपूर्ण भी है । यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा शान्ति का स्थाई हल बताया गया है । इसके माध्यम से व्यक्ति के हृदय परिवर्तन के माध्यम से एक दूरगामी स्थापित करने का प्रयास किया गया है । गाँधी के विचारों को लागू करने मे कठिनाई अवश्य हो सकती है, परन्तु यह एक मात्र वैकल्पिक रास्ता है जिसके माध्यम से स्थाई शान्ति की स्थापना हो सकती है ।

9.5 सारांश

गाँधीवादी विश्व व्यवस्था का प्रतियान ने केवल एक नया सुझाव है बल्कि एक सुस्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करता है । गाँधी के अनुसार युद्ध की समाप्ति से स्वयं शान्ति स्थापित नहीं होगी, बल्कि शान्ति को भंग करने वाले मूलभूत कारकों की विसंगतियों को दूर करने पर ही यह सम्भव हो सकेगी । इस संदर्भ में व्यक्ति, समाज, राज्य एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का समग्रता से अध्ययन करना होगा । यह स्थिति मात्र सस्थाओं मे सुधार से प्राप्त न होकर व्यक्ति के हृदय परिवर्तन के द्वारा प्राप्त होगी । इसलिए विश्व संरचना के सम्पूर्ण चिंतन पर मंथन करना पड़ेगा । अतः गाँधी एक ऐसी विश्व व्यवस्था के पक्षधर थे जो अन्याय, शोषण, साम्राज्यवाद, असमानता, रंगभेद आदि के विरूद्ध हो । यह व्यवस्था सत्य व अहिंसा के नवीन मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए । गाँधी इन नवीन मूल्यों के आधार पर क्रान्तिकारी परिवर्तन की बात करते हैं, जो राज्य में व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन के आधार पर आयेगा । इस प्रकार गाँधीवादी चितन से एक स्थाई व दूरगामी शान्ति की स्थापना होगी । अतः यह समय गाँधीवाद की आलोचनाओं का न होकर उसे समझने, व्यवहार मे लाने, प्रचार करने एवं अपनाने का है । इस चिंतन को सम्पूर्णता में समझने के उपरान्त ही एक न्यायोचित, समानता एवं शान्ति पर आधारित विश्व व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है ।

9.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अय्यर, राघवन, एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्सफोर्मेशन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994
2. दास, रतन, द ग्लोबल विशन ऑफ महात्मा गाँधी, सरूप एण्ड सन्स, नई, 2005
3. मिश्रा, ए.डी. एवं नारायानासामी एस., वर्ल्ड क्राईसिस एण्ड द गाँधीयन वे, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2009
4. सिंह, रामजी, गाँधी और भावी विश्व व्यवस्था, कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000

5. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन नई दिल्ली, 1985
6. दास, दीप्ती मोई, गाँधीस डोकट्रीन ऑफ ट्रूथ एण्ड नॉन वायलेन्स : ए क्रिटिकल स्टडी, डॉमिनेन्ट पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

इकाई - 10

शांति-निर्माण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 शांति-निर्माण की धारणा

10.2.1 शांति-निर्माण का अर्थ

10.2.2 शांति-निर्माण की परिभाषा

10.3 शांति-निर्वहन, शांति-रचना और शांति-निर्माण: एक तुलना

10.3.1 शांति-निर्वहन

10.3.2 शांति-रचना

10.3.3 शांति-निर्माण

10.4 शांति-निर्माण के पहलू

10.5 व्यवहार में शांति-निर्माण का प्रयोग

10.5.1 बुरूंडी

10.5.2 रवाण्डा

10.5.3 सोमालिया

10.5.4 मध्य अफ्रीकी गणराज्य

10.5.5 गिन्नी बिसाऊ

10.5.6 युगोस्लाविया

10.5.7 पूर्वी तैमूर

10.5.8 नामीबिया

10.6 शांति-निर्माण में सहायक वैश्विक संस्थाऐं व संगठन

10.6.1 संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद्

10.6.2 संयुक्त राष्ट्र संघ शांति-निर्माण आयोग

10.6.3 संयुक्त राज्य शांति संस्थान

10.6.4 अंलायन्स फॉर पीस ब्लिडिंग

10.7 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विवादों का शांतिपूर्ण तरीके से निपटारे की विधियों से विद्यार्थियों को परिचित कराना । जिसमें विशेष करके शांति-निर्माण की अवधारणा, उसके विविध पहलुओं, परिभाषा और साथ ही उसके व्यावहारिक पहलुओं व क्षेत्रों के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी उपलब्ध कराई जायेगी ताकि विद्यार्थी इसको समझ सकें और व्यवहार में अनुप्रयोग करने में सक्षम हो सकें।

10.1 प्रस्तावना

शांति बनाये रखने के लिऐ सयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य को व्यापक रूप से चार भागों में बाटा जा सकता है- निरोधात्मक, कूटनीति, शांति-रचना, शांति-निर्वहन और शांति-निर्माण ।

निरोधात्मक कूटनीति किसी संघर्ष के उग्र रूप धारण करने से पहले संबंधित पक्षों में संघर्ष का समाधान करवाने का प्रयास करती है । शांति-रचना कूटनीतिक तरीके से संघर्ष को दूर करने का प्रयास करती है, लेकिन यह प्रयास शक्ति-परीक्षण या संघर्ष के उग्र रूप धारण करने के बाद किया जाता है । यह संघर्ष में शामिल पक्षों से युद्ध-विराम करवाने का प्रयास करती है । संयुक्त राष्ट्र की शांति-निर्वहन की भूमिका इस अवस्था में काम करती है और यह सुनिश्चित करती है कि युद्ध विराम के सभी पक्षों द्वारा पालन किया जा रहा है । शांति-निर्माण वह अंतिम अवस्था है जो सामाजिक स्तर में सुधार, विधि व्यवस्था व मानवाधिकार व्यवस्था में सुधार और कभी-कभी नई सरकार का गठन कर शांति कायम करती है । यह संघर्ष के पूर्व, संघर्ष के दौरान और संघर्ष के बाद तीनों ही स्थितियों में कार्यरत होती है । इसके लिए सयुक्त राष्ट्र संघ के साथ अन्य अभिकर्ता भी शामिल हैं । यह प्रकिया विश्व के कई देशों में जैसे-सोमालिया, युगोस्लाविया, बुरूंडी आदि में चल रही है, इसको संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव बुतरस घाली ने एंजेडा फॉर पीस नामक कार्यक्रम प्रस्तुत कर काफी लोकप्रिय बनाया जो तब से लेकर आज तक बढती ही जा रही है ।

10.2 शांति-निर्माण की धारणा

10.2.1 शांति-निर्माण का अर्थ

बडी मात्रा में मानवीय पीडा हिंसक संघर्षों, राजनीतिक अस्थिरताओं, अन्यायपूर्ण नीतियों के निर्माण तथा उनके क्रियान्वयन से जुडी हुई है, जो सम्पूर्ण विश्व में कम-ज्यादा मात्रा में व्याप्त है । अल्पकाल के लिए मानवीय राहत एवं सकट में हस्तक्षेप महत्वपूर्ण है लेकिन यह संघर्षरत समाजों या उत्तर-संघर्ष समाजों के लिए पर्याप्त नहीं होते है, बल्कि यहां जरूरत होती है, उत्तर- संघर्ष समझौतों के लिऐ आवश्यकता की जागरूकता को बढ़ावा देने की, संघर्ष-निवारण के लिऐ क्षमता का विकास एवं सम्पोषित या स्थाई शांति-निर्माण करने की । तब ही संघर्षरत समाजों में स्थाई शांति कायम हो सकती है और इसी प्रकिया को सामान्यतया व्यापक रूप से शांति-निर्माण के नाम से जाना जाता है ।

"शांति-निर्माण" का पद 1992 में सयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बुतरस बुतरस घाली के द्वारा प्रस्तुत 'एंजेडा फॉर पीस' नामक कार्यक्रम के बाद व्यापक रूप से चर्चा में आया और व्यवहार में प्रयुक्त किया जाने लगा । हालाँकि तब से लेकर आज तक कोई सर्वसम्मति मूलक परिभाषा तो नहीं गढी जा सकी लेकिन घाली ने अपने कार्यक्रम से संबंधित प्रतिवेदन में इसको स्पष्ट करते हुऐ बताया कि- "शांति-निर्माण संघर्षरत पक्षों में युद्ध विराम हो जाने के बाद पुन: युद्ध शुरु न हो इसके लिऐ किये गये प्रयासों का नाम है ।" चुँकि युद्ध विराम के बाद इसके फिर से शुरु होने की सम्भावना बनी रहती है और गृह युद्ध के उग्र रूप धारण करने के फलस्वरूप सभ्य समाज का ढांचा नष्ट हो जाता है । उनके द्वारा शांति-निर्माण के लिऐ प्रस्तुत किये गये उद्देश्यों में पहले के युद्ध में शामिल पक्षों को निरस्त्र करना, शांति-व्यवस्था कायम करना, हथियारों का जमाव रोकना और इनका विनाश करना, शरणार्थियों को वापस अपने देश भेजना, सुरक्षा जवानों के लिऐ परामर्श और प्रशिक्षण सहायता प्रदान करना उनमें सुधार करना तथा सुदृढ़ बनाना और राजनीतिक भागीदारी की औपचारिक और अनौपचारिक प्रकिया को बढ़ावा देना शामिल हैं ।

शांति-निर्माण का व्यापक प्रभाव होता है । इसके कुछ प्रभाव अल्पकालिक और कुछ दीर्घकालिक होते हैं । शांति-रचना में कठोर कार्यवाही करने में समस्याऐं आ सकती है लेकिन शांति-निर्माण की कार्यवाही में कुछ कठोर कदम उठाये जा सकते है । अत: शांति-रचना में कुछ शांति-निर्माण की कार्यवाही भी शामिल हो सकती है ।

10.2.2 शांति-निर्माण की परिभाषा

चिक डेमबाच के अनुसार "शांति-निर्माण सरकार और सभ्य समाज के विविध अभिकर्ताओं की प्रयासों का वह समुच्चय है जो हिंसा के मूल कारणों का समाधान करते है और नागरिकों का हिंसक संघर्ष से पहले, उसके दौरान ओर बाद में सुरक्षा प्रदान करते हैं । शांति-निर्माणक संचार, समझौता एवं मध्यस्थता का प्रयोग करते है बजाय संघर्ष को हिंसा या युद्ध के द्वारा समाधान करने के । प्रभावी शांति-निर्माण बहुआयामी होता है, जो प्रत्येक संघर्षमयी वातावरण में स्वीकार किया जाता है। शांति का कोई एक मार्ग नहीं होता है बल्कि प्रत्येक संघर्षमयी वातावरण में कई मार्ग उपलब्ध होते है । शांति-निर्माणक युद्धकर्ताओं की सहायता करते है बिना रक्त बहाये मतभेदों का समाधान प्रस्तुत करके ।"

लैडेराच के अनुसार "शांति-निर्माण एक लम्बी प्रकिया है, जिसमें निवेश, संसाधनों एवं सामग्री का संग्रहण, वास्तुशिल्प व नियोजन, संसाधनों एवं श्रम का समन्वय, मजबूत आधारों की बिसात, विनिर्माण का कार्य करना व उसकी रख-रखाव की निरन्तरता शामिल किया जाता है । लैडेराच इस बात पर भी बल देते है कि शांति-निर्माण में संबंधों का भी रूपान्तरण होता है । स्थाई मेल-मिलाप संरचनात्मक एवं संबंधात्मक रूपान्तरणों की अपेक्षा करता है ।"

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शांति-निर्माण एक व्यापक गतिविधि व प्रकिया है जिसमें एक जैसे दृष्टिकोणों, प्रकियाओं व स्तरों को शामिल किया जाता है जो ज्यादा स्थाई शांतिमयी संबंधों एवं शासन के रूपों व संरचनाओं की ओर रूपान्तरण के लिऐ आवश्यक होते हैं

। शांति-निर्माण में कानून एवं मानवाधिकार संस्थाओं का निर्माण, स्वच्छ व प्रभावी शासन तथा संघर्ष निवारण की प्रक्रियाऐं व तंत्र शामिल है । प्रभावी शांति-निर्माण गतिविधियों के लिए सचेत एंव सहभागी नियोजन, विविध प्रयासों के मध्य समन्वय एवं स्थानीय व दाता भागीदारों के द्वारा स्थाई प्रतिबद्धताऐं आवश्यक होती है ।

10.3 शांति-निर्वहन, शांति-रचना और शांति-निर्माण एक तुलना

10.3.1 शांति-निर्वहन

औपचारिक रूप से शांति-निर्वहन का संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में उल्लेख नही हैं । इसका सूत्रपात संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यकरण से हुआ है । इसका निष्पक्ष और स्पष्ट वर्णन " ब्ल्यू हेलमेटस : ए रिव्यू ऑफ यूनाईटेड पीसकिपिंग" में मिलता हैं । जैसे-जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ वर्ष-दर-वर्ष अपना काम करता गया उसे विवादित क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिऐ दबाव और शक्ति का प्रयोग किये बिना शांति निर्वहन के कार्य के लिऐ एक संगठन की आवश्यकता महसूस हुई । यह कार्य स्वैच्छिक, सहमति और सहयोग के आधार पर किया जाता है । यद्यपि इसमें सैन्य शक्ति शामिल होती है लेकिन वे अपना लक्ष्य हथियारों को प्रयोग में लाये बिना हासिल करने का प्रयास करते है । यह संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद-42 की दबाव की कार्यवाही से भिन्न हैं ।

शांति-निर्वहन बल केवल दो संघर्षरत पक्षों के मध्य मध्यस्थता का कार्य करते है । इसके लिऐ संयुक्त राष्ट्र संघ एक प्रेक्षण दल भेजकर दोनो पक्षों में युद्ध विराम करवाता है । जैसा कि 1947 में सुरक्षा परिषद ने इंडोनेशिया के मामले में किया था । प्रेक्षण दल अपनी रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्र संघ को प्रस्तुत करता है जबकि शांति-निर्वहन बल युद्ध विराम की स्थिति सुनिश्चित कर सैनिकों का युद्ध स्थलों से हटाता है ।

शांति-निर्वहन के लिए जरूरी है कि प्रथम- संघर्षरत पक्ष को युद्ध विराम तथा सहमत क्षेत्रों तक सैनिकों को वापस बुलाने तथा अपनी भूमि में शांति-निर्वहन बलों की तैनाती के लिऐ तैयार होना, द्वितीय-शांति-निर्वहन बल को प्रतिद्वंद्वी बलों के बीच निष्पक्ष और तटस्थ रहकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करना होता है । यदि वह ऐसा नहीं करता है तो जिस देश में बल तैनात है वह देश बल के कार्यो में बाधा उत्पन्न कर सकता है । तृतीय- शांति-निर्वहन बलों को केवल आत्मरक्षा में बल प्रयोग करने का अधिकार दिया गया है । वे बलपूर्वक कार्यवाही नहीं कर सकते है । शांति-निर्वहन बल बलपूर्वक कार्यवाही करने वाले बलों और आत्मरक्षा का कार्य न करने वाले पर्यवेक्षक मिशन से भिन्न होते है । शांति निर्वहन बल को अशांत क्षेत्रों तथा अन्य असैनिक क्षेत्रों की निगरानी करनी होती है ।

10.3.2 शांति-रचना

इसको शांति के एक कार्य योजना के रूप में परिभाषित किया गया हैं । निरोधात्मक कूटनीति, शांति-रचना और शांति-निर्माण तथा महासचिव की रिपोर्ट के अंग होते है । इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अध्याय-छः में उल्लेखित शांतिपूर्ण प्रयासों के द्वारा

संघर्षरत पक्षों के बीच समझौता की कार्यवाही शामिल है लेकिन वास्तविक जीवन में यह अपनी सीमा से बाहर जाकर भी कार्य करता है । इसमें उत्पीडन व बलपूर्वक की गई कार्यवाही भी शामिल हो सकती है जो शांति निर्वहन के लिए सहमत कार्यवाही से संगत नहीं है ।

10.3.3 शांति-निर्माण

यह शांति-निर्माण की अंतिम अवस्था है लेकिन बडी महत्वपूर्ण है क्योंकि शांति-निर्वहन व शांति-रचना का स्थायित्व शांति-निर्माण पर ही निर्भर करता है । शांति-निर्माण में युद्ध विराम के बाद पुन: युद्ध शुरु न हो सके इसके लिऐ उपाय करने हेतु बल दिया जाता है जिसमें विशेषकर के सामाजिक स्तर में सुधार, कानून व्यवस्था में सुधार, मानवाधिकारों की सुरक्षा व संरक्षण और कभी-कभी नई सरकार का गठन कर शांति-कायम करने जैसे उपाय शामिल किये जाते हैं । इस प्रकिया को संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बुतरस घाली ने काफी लोकप्रिय बनाया ।

10.4 शांति-निर्माण के पहलू

शांति-निर्माण एक व्यापक अवधारण है जिसमें संघर्ष रूपान्तरण, उचित न्याय, मानसिक आघातों से उभार, समझौता या सहमति, विकास एवं नेतृत्व, अध्यात्मिकता एवं धर्म द्वारा निर्धारण शामिल होता है । यह अवधारणा अर्थ में संघर्ष-निवारण के समान लगती है लेकिन वास्तव में यह उससे भिन्न और व्यापक है क्योंकि यह संघर्ष-निवारण के बाद की स्थिति में कार्य करती है क्योंकि युद्ध विराम के बाद स्वत: ही शांति स्थाई सामाजिक या आर्थिक विकास का रूप नहीं ले सकती है बल्कि इसके लिऐ कई संगठनों के द्वारा कई प्रकार की कार्यवाहियों को अंजाम देने पर ही यह महत्वपूर्ण अर्थग्रहण कर पाती हैं । इसके लिऐ निम्नलिखित गतिविधियां या कार्यवाहियां की जाती हैं:-

- पूर्ववर्ती लडाकुओं को पुन: नागरिक समाज के विकास की मुख्य धारा में शामिल करना ।
- सुरक्षा के क्षेत्र में बेहतर सुधार करना ताकि आमजन के बीच सुरक्षा के संदर्भ में विश्वास बहाल हो सकें ।
- कानून के शासन को व्यापक व मजबूत बनाना ।
- मानवाधिकारों की सुरक्षा करना तथा उनके प्रति सम्मान की स्थिति में सुधार लाना ।
- लोकतात्रिक विकास के लिए तकनीकी सहायता व समर्थन उपलब्ध ।
- संघर्ष निवारण एवं समझौता या सहमति की तकनीकों में सुधार लाना ।
- लोगों में आपसी विश्वास बहाली करना ।
- नागरिकों की शासन में भागीदारी बढाना ।
- संघर्षरत पक्षों के बीच शस्त्र-दौड को कम करना ।
- सरकारी संस्थाओं, संरचनाओं व प्रक्रियों में सुधार लाना ।

संयुक्त राष्ट्र संघ शांति-निर्माण आयोग शांति-निर्माण कोष के द्वारा बुरुंडी, मध्य अफ्रीकी गणराज्य, गिन्नी बिसाऊ, लाईबेरिया सोमालिया, नेपाल, युगोस्लाविया आदि स्थानों पर शांति-निर्माण अभियानों को संचालित कर रहा है ।

10.5 व्यवहार में शांति-निर्माण का प्रयोग

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कोई बढा युद्ध नहीं हुआ इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की मौजूदगी का बहुत बडा योगदान रहा है, साथ ही आणविक बम और व्यवहार में उनका उपयोग लेने के प्रति चिंता का कारण भी रहा हैं । फिर भी द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कई छोटे-छोटे युद्ध हुए, जैसे - भारत और पाकिस्तान, ईरान और ईराक, इजरायल और अरब देश आदि के मध्य । इन युद्धों से बडे पैमाने पर जन-धन की क्षति हुई, जिनमें सबसे ज्यादा नुकसान गरीब देशों का हुआ, इसमें कई लोग मारे गये, कई बेघर हो गये और आर्थिक विकास के अवसर समाप्त हो गये । इन स्थितियों में संयुक्त राष्ट्र संघ शांति-निर्वहन, शांति-रचना तथा शांति-निर्माण जैसी कार्यवाहियां सुरक्षा परिषद की देख-रेख में करता है । कुछ मामलों में उसे सफलता भी मिलती है और कुछ में नहीं भी । अब हम अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति के कुछ संघर्षों को देखेंगे जहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ ने शांति-निर्माण का काम किया और कर रहा है ।

10.5.1 बुरुंडी

पूर्वी अफ्रीका के बुरुंडी नामक भू-आबद्ध देश में तुत्शी और हुतो नामक जनजतियों के बीच सत्ता संघर्ष में लाखों लोग मारे गये है । 1993 से 2003 के बीच तंजानिया, दक्षिण अफ्रीका एवं युगाण्डा के नेताओं की देख-रेख मैं कई शांति वार्ताएं हुई और अंत में एक सत्ता-साझेदारी समझौता हुआ जो प्रतिस्पर्धी गुटों को सन्तुष्ट करता था । जून 2004 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने शांति-निर्वहन का उत्तरदायित्व लिया । इस शांति-मिशन का उद्देश्य- युद्ध विराम की देख-रेख करना, शस्त्रों में कमी लाना, पूर्व लडाकुओं को पुन: समाज से जोडना मानवीय सहायता में सहयोग करना और शरणार्थियों की वापसी आदि कार्य करना था । इस मिशन के तहत 5650 सैन्यकर्मी, 120 नागरिक पुलिस और लगभग 1000 अन्तर्राष्ट्रीय एवं स्थानीय नागरिक कार्मिक तैनात किये गये । यह मिशन सुचारू रूप से काम करता रहा और वर्ष 2006 में अपने शांति-निर्वहन मिशन को बंद कर दिया और पुनर्रचना के कार्यो पर ध्यान देना शुरु कर दिया विशेषकर के आर्थिक पुनर्रचना पर इस कम में रवाण्डा, डी.आर.कांगो एवं बुरूंडी ने मिलकर क्षेत्रीय आर्थिक संगठन का पुनर्गठन किया इसके अतिरिक्त 2007 में बुरूण्डी रवाण्डा के साथ 'ईस्ट अफ्रीकी कम्यूनिटी' में शामिल हुआ ।

सितम्बर 2006 में सरकार और सशस्त्र विद्रोही समूह एफ.एन.एल. (फॉर्सेज फॉर नेशनल लिबरेशन) के मध्य य युद्ध विराम समझौता हुआ लेकिन कई लागू नहीं हुआ क्योंकि लेकिन कई वरिष्ठ एफ. एन .एल. नेताओं ने अपने को शांति पर्यवेक्षक दल से अलग कर लिया और अपनी सुरक्षा खतरे होने में का दावा करने लगे । इसके बाद वहां खूनी संघर्ष हुआ जिसमें कई लडाकू मारे गये और कई लोग बेघर हो गये । ऐमनेस्टी इन्टरनेशनल की वर्ष 2007 की रिपोर्ट के अनुसार 36087 बुरूंडीवासी शरणार्थी हो गये । मई 2008 में एक नया युद्ध विराम समझौता हुआ जिसमें दक्षिण अफ्रीका की महत्वपूर्ण भूमिका रही और 45000 शरणार्थी वापस वतन लौट आये है । हालांकि वहाँ की अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है ।

10.5.2 रवाण्डा

रवाण्डा में 1993 में समस्याएँ तब शुरु हुई जब टुत्सी जनजाति के पैट्रोटिक फ्रंट ने हेतु जनजाति के नियन्त्रण वाली सरकार के खिलाफ लडाई शुरु कर दी । सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यवेक्षक मिशन रवाण्डा-युगाण्डा (यू.एन.ओ.एम.यू.आर.) का गठन किया । जिसका कार्य सम्पूर्ण रवाण्डा-युगाण्डा सीमा पर आर.पी.एफ द्वारा प्राप्त की जाने वाली सहायता की देख-रेख करना था। आर.पी.एफ. और सरकार के बीच 1993 में 'अरूसा' नामक एक व्यापक समझौता हुआ जिसके तहत सबसे पहले चुनाव होने तक एक काम चलाऊ सरकार की स्थापना करना था उसके बाद दोनों पक्षों की सेनाओं का एकीकरण कर चुनाव करवाना था । इस समझौते को लागू करवाने के लिए एक तटस्थ अंतर्राष्ट्रीय सैना का गठन किया जाना था । महासचिव की रिपोर्ट पर सुरक्षा परिषद ने शांति प्रकिया को बढाने में रवाण्डा की सहायता के संयुक्त राष्ट्र संघ के एक सहायता मिशन (यू.एन.ए.एम.आई.आर.) का गठन किया, लेकिन 6 अप्रेल 1994 को किगाली हवाई अण्डे के नजदीक एक विमान दुर्घटना में रवाण्डा और बुरूंडी के राष्ट्रपति मारे गये । परिणामस्वरूप बडा नरसंहार हुआ जिसमें 2 लाख लोग मारे गये । इस नरसंहार में लगभग यू.एन.ए.एम.आई.आर. की भूमिका बहुत सीमित हो गई, केवल संघर्षरत क्षेत्रों में आम जनता को बचाने और मानवीय सहायता पहुँचाने तक । मई में सुरक्षा परिषद ने विस्थापित लोगों की सुरक्षा के लिए 5500 सिपाहियों की एक नई फौज भेजने का निर्णय लिया, लेकिन यह फौज जुलाई तक उपलब्ध न हो सकी । अस्थाई उपाय के रूप में विस्थापित लोगो की सुरक्षा एवं बचाव के लिए चार्टर के अध्याय 7 के तहत प्रवर्तन की कार्यवाही के लिऐ फ्रांस को अपनी सेना भेजने के लिए अधिकृत कर दिया गया । अगस्त तक आर.पी.एफ. ने सम्पूर्ण क्षेत्र पर अपना नियन्त्रण कर लिया लेकिन पडोसी देशों में बडी संख्या में शरणार्थियों के पहुँचने से समस्या खडी हो गई । फरवरी 1996 तक 15 लाख लोग पडोसी देशों में शरणार्थी बन कर रहें, कानून-व्यवस्था बिलकुल समाप्त हो गई ओर देश में प्रशासन, अर्थव्यवस्था, न्यायिक तन्त्र, जल व विद्युत आपूर्ति नाम की कोई चीज नहीं रही ।

अगले दो वर्षो में यू.एन.ए.एम.आई.आर. शरणार्थियों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायोग, अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों और कुछ अन्य गैर-सरकारी संगठनों की सहायता से धीरे-धीरे शांति वातावरण कायम हुआ लोगों विश्वास बहाल हुआ । कनाडा, ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस ने मानवीय सहायता के सैना भेजी । कुल मिलाकर संयुक्त राष्ट्र संघ गृह युद्ध को रुकवाने के लिए प्रभावी कार्यवाही करने में असफल रहा । इसने कुछ हद तक शांति-निर्वहन और शांति-निर्माण में सफलता पाई ।

10.5.3 सोमालिया

सन 1992 में पश्चिमी अफ्रीकी देश सोमालिया में गृह युद्ध शुरु हो गया । सुरक्षा परिषद पाया कि इस गृह युद्ध के कारण आसपास के क्षेत्रों की स्थिरता और शांति खतरे में पड जायेगी । इस गृह युद्ध के कारण लोग बडे पैमाने पर भुखमरी के शिकार हुये । मानवीय सहायता के लिए शुरु किये ऑपरेशन (यू.एन.ओ.एस.ओ.एम.) से अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं

हुई । महासचिव ने सुरक्षा परिषद के सामने तीन विकल्प रखें:- प्रथम-शांति-निर्वहन के सिद्धान्तों पर आधारित यू.एन.ओ.एस.ओ.एम. को सोमालिया में तैनात करना, द्वितीय-यू एन.ओ.एस.ओ.एम. की सैनिक टुकडियों को वापस बुलाना और लडाकू गुटों के साथ मानवीय एजेंसियों की वार्ता को जारी रखना, तृतीय-यू.एन.ओ.एस.ओ.एम. द्वारा अथवा सुरक्षा परिषद की स्वीकृति से कुछ राष्ट्रों के द्वारा पूरे सोमालिया या सीमित क्षेत्र में सैनिक शक्ति का प्रयोग करना । उन्होंने बताया कि अमेरिका इस ऑपरेशन का नेतृत्व करने के लिए तैयार हैं । सुरक्षा परिषद से सर्वसम्मति से यह संकल्प लिया किया कि चार्टर के अध्याय- 7 के अनुसार मानवीय सहायता प्रदान करने के लिए समुचित वातावरण बनाने हेतु और यू.एस.ए. को सहयोग देने वाले सदस्य राष्ट्रों को आवश्यक कार्यवाही करने का संकल्प लिया । सुरक्षा परिषद ने सभी लडाकू समूहों से गठित सेना को सहयोग देने की अपील की । यू.एस.ए. के नेतृत्व के तहत यूनिफाईड टॉस्क फॉर्स ने अमेरिका से 28000 और अन्य देशों से 17000 सैनिकों के साथ अपना काम शुरु किया । इसने तेजी से विभिन्न समूहों या गुटों को निरस्त्र कर दिया और मानवीय सहायता का विस्तार किया । इसने स्वयं को आत्म-रक्षा की कार्यवाही तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि अन्य आक्रामक कार्यवाहियां भी की और अपनी कार्यवाही में इसने एक पक्ष का साथ दिया । जिससे इसकी कार्यवाही को सोमालिया के राष्ट्रवादी संगठन के विरूद्ध माना गया । इस परिस्थिति में सुरक्षा परिषद ने मार्च 1995 में सोमालिया से अपनी सेना को बुलाने का निर्णय लिया क्योंकि सेना की कार्यवाही शांति-निर्वहन के सिद्धान्तों का उल्लंघन कर रही थी । एन.ओ.एस.ओ.एन- II, के बारे में अपनी प्रथम रिपोर्ट में महासचिव ने कहा कि सोमालिया ऑपरेशन सन्दर्भ में शांति-रचना, शांति-निर्वहन और शांति-निर्माण के सन्दर्भ में सावधानी बरतने और सृजनात्मक पुनर्विचार की जरूरत थी । यह एक विफल कार्यवाही साबित हुई। इरा बात की आवश्यकता है कि प्रत्येक गृह-युद्ध की स्थिति का अपना एक अलग लक्षण होता है।

10.5.4 मध्य अफ्रीकी गणराज्य

मध्य अफ्रीकी गणराज्य मध्य अफ्रीका का एक भू-आबद्ध राज्य है जो रूप से बहुपक्षीय विदेशी सहायता पर निर्भर है और यहां बडी संख्या में गैर-सरकारी संगठन मौजूद है जो वहां के नागरिकों को वें सभी सुविधाऐं उपलब्ध कराते है जिनकों उपलब्ध कराने में वहां की सरकार विफल रही हैं । वहाँ बडी संख्या में विदेशी कार्मिक और संगठन विद्यमान है, जिनमें शांति-निर्वाहक और शरणार्थी कैम्प भी है जो मध्य अफ्रीकी राज्यों के राजस्व का बडा स्रोत उपलब्ध कराते हैं । यह देश खाद्यान्न फसलों में आत्मनिर्भर है लेकिन इनकी ज्यादातर जनसंख्या निम्नस्तरीय जीवन यापन करती हैं । यहां पशुधन का विकास भी बाधित हो रहा है ।

जून 2006 में हिंसा के चलते 50000 से ज्यादा लोग विशेष करके देश के उत्तर-पश्चिमी भूखे मर रहे थे । इसी तथ्य ने संयुक्त राष्ट्र संघ को मानवीय सहायता उपलब्ध कराने को मजबूर किया । 12 जून 2008 को यह देश यू.एन.पी.बी.सी. के एजेंडे में शांति-निर्माण हेतु सहायता प्राप्त करने वाला चौथा राज्य बन गया है । शांति-निर्माण कमीशन शांति-निर्माण कोष

की सहायता से यहां सुशासन और कानून के शासन में सुधार करने और संघर्षों द्वारा प्रभावी समुदायों के पुनर्जीवन की स्थापना में निरंतर सहायता कर रहा हैं ।

10.5.5 गिन्नी बिसाऊ

इसका वास्तविक 'नाम द रिपब्लिक ऑफ गिन्नी बिसाऊ' है जो पश्चिमी अफ्रीका में स्थित हैं और यह बहुत छोटा है जो मादक पदार्थो के अवैध लेन-देन पर निर्भर हैं और इसके लिए प्रसिद्ध भी है । यहां वर्ष 2010 में सैन्य तनाव उत्पन्न हुआ क्योंकि सैना में शक्तिशाली जर्नलों और मादक पदार्थो के अवैध व्यापार कर्ताओं की घुसपैठ हो गयी थी, इसलिए यहां यूरोपियन यूनियन द्वारा चलाया जा रहा सुधार मिशन समाप्त कर दिया गया क्योंकि इसे यूरोपियन यूनियन अपने संवैधानिक सत्ता के कार्य के विरुद्ध समझती थी ।

यह देश अपने को छोटे तटीय द्वीपों से घेरे हुये है, जिससे जहाजों के माध्यम से मादक पदार्थो को यूरोपीय देशों में भेजने का पसंदीदा स्थल बनकर उबरा हैं । संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून ने गिन्नी बिसाऊ के मादक पदार्थो के अवैध व्यापार में सलंग्नता पर प्रतिबन्ध लगा दिया हैं । यहां विश्व स्वास्थ्य संगठन, स्वास्थ्य व पोषण सुधार के प्रयास कर रहा हैं । यहां के लोगों के जीवन प्रत्याशा दर 49 वर्ष (2008) हैं ।

10.5.6 युगोस्लाविया

1990-2000 तक यूगोस्लाविया ने कई तरह की अभिघातक समस्याओं का सामना किया । युगोस्लाविया में विघटन से पहले छः गणतंत्र-सर्बिया, स्लोवेनिया, क्रोएशिया, बोस्निया-हर्जेगोविना, मोनटेनिग्रो मेसिडोनिया और कोसोवो तथा वोजवाडिना नामक दो स्वायत क्षेत्र शामिल थे । यहां की जनसंख्या बहुजातीय हैं । स्लोवेनिया में स्लॉव लोगों की अधिकता हैं, लेकिन यहां पर सर्ब, क्रोट्स और हंगेरियन अल्पसंख्यक भी रहते थे । क्रोसिया में सर्ब अधिक संख्या में थे और सर्बिया में दो-तिहाई सर्ब थे लेकिन स्वायत कोसावो ओर वोजवोडिना सर्बिया के ही अंग थे । वोजवाडिना हंगेरियन अल्पसंख्या में थे । कोसोवो में 91 प्रतिशत स्थानीय अलबेनियाई लोग थे । मोनटेनिग्रो में मुसलमान और अलबेनियन की एक-तिहाई जनसंख्या थी । बोस्निया-हर्जेगोविना में मुसलमानों की संख्या 40 प्रतिशत, सर्ब की 32 प्रतिशत, क्रोट की 18 प्रतिशत और शेष अन्य जाति के लोग रहते थे । मेसेडोनिया में 20 प्रतिशत अलबेनियाई, 67 प्रतिशत मेसेडोनियाई, और शेष अल्पसंख्यक जाति के लोग रहते थे । युगोस्लाविया की संघीय सरकार का नेतृत्व राष्ट्रपति परिषद कर रही थी । और इसकी अध्यक्षता छः गणतन्त्रों के अध्यक्षों द्वारा बारी-बारी से की जाती थी ।

दिसम्बर 1990 में स्लोवेनिया में 85 प्रतिशत लोगों ने स्वतन्त्रता के पक्ष में मत दिया और इसी समय क्रोएशिया ने संघीय कानून के उपर क्रोएशिया की सर्वोच्चता की घोषणा कर दी गई तथा सर्बिया ने सुदृढ़ संघीय व्यवस्था पर जबकि शेष ने शिथिल संघीय व्यवस्था की इच्छा प्रकट की । इसकी वजह से संघ को सुरक्षित रखना मुश्किल हो गया और अन्ततः युगोस्लाविया

का विघटन हो गया । फरवरी 2008 में कोसोवो भी सर्बिया से अलग होकर स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया हैं ।

युगोस्लाविया की एकता बनाये रखने में यूरोपियन संघ ने बहुत प्रयास किये लेकिन कोई सफलता नहीं मिली । सुरक्षा परिषद को शांति निर्वहन बल तैनात करने की अनुमति नहीं मिल पाई । फरवरी 1992 में सुरक्षा परिषद ने शांति-निर्वहन बल, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा बल (यू.एन.पी.आर.ओ.एफ.ओ.आर.) के गठन की स्वीकृति प्रदान की गई लेकिन इस दल को कोई खास सफलता प्राप्त नहीं हुई । यहां शांति-निर्माण कार्यो में नाटो सेनाओं की प्रमुख भूमिका रहीं।

10.5.7 पूर्वी तैमूर

1975 तक की पूर्वी तैमूर का उपनिवेश था और इस पर इंडोनेशिया ने जबरदस्ती कब्जा किया हुआ था । लम्बे समय तक चली वार्ता के बाद पुर्तगाल और इंडोनेशिया दोनों संयुक्त राष्ट्र महासचिव से यह आग्रह करने के लिए राजी हो गये कि पूर्वी तैमूर के लोगों से यह पूछा जाये कि वें इंडोनेशिया में स्वायत्त चाहते है या स्वतन्त्रता । इसके लिए जनमत संग्रह कराया गया, परिणामत: पूर्वी तैमूर की स्वायत्तता को अस्वीकार कर दिया गया । परिणाम की घोषणा के बाद विरोधस्वरूप व्यापक पैमाने पर हिंसा हुई । सुरक्षा परिषद ने चार्टर के अध्याय-7 के अनुसार ऑस्ट्रेलिया की कमान में लगभग 1100 सैनिक और नागरिकों के बहुराष्ट्रीय बल ने पूर्वी तैमूर में शीघ्र ही शांति व्यवस्था कायम कर दी । सयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने प्रशासन को अपने हाथ में ले लिया और पूर्वी तैमूर में अन्तर्वर्ती प्रशासन की स्थापना की और प्रशासन को पूर्वी तैमूर सम्पूर्ण प्रशासन सौंप दिया गया । इसमें स्वशासन की क्षमता का निर्माण करना भी शामिल था । अन्तत: 2002 पूर्वी तैमूर स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया ।

10.6.8 नामीबिया

दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका (बाद में नामीबिया) को राष्ट्र संघ द्वारा दक्षिणी अफ्रीका के मेण्डेट सिस्टम के अन्तर्गत रखा गया । बाद में यू.एन. चार्टर के द्वारा ट्रस्टीशिप पद्धति के तहत रखा गया लेकिन दक्षिणी अफ्रीका ने चार्टर की बाध्यता को मानने से इंकार कर दिया । 1966 में मेण्डेट समाप्त कर दिया गया । दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीकी जन संगठन ने दक्षिण अफ्रीका के लगातार चले आ रहे शासन के विरूध संघर्ष करने का निर्णय लिया । 1969 में सुरक्षा परिषद ने घोषणा की कि दक्षिण अफ्रीका द्वारा लगातार दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका पर कब्जा रखना गैर-कानूनी था और इसकी स्वतन्त्रता के लिए महासचिव द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षण में चुनाव कराने के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया लेकिन दक्षिण अफ्रीका के असहयोग के चलते योजना लागू नहीं हो सकी । 1988 में यू.एन. के बाहर एक समझौता किया गया जिसके तहत दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका से दक्षिण अफ्रीका को हटाने की कार्यवाही को अंगोला से क्यूबा की सैना का हटाने की कार्यवाही से जोडा गया सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र अंगोला सत्यापन मिशन की स्थापना कर क्यूबा की सैना को हटाने की हटाने का पर्यवेक्षण करने का निर्णय लिया । दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका में यू.एन. के इस ऑपरेशन में दक्षिण अफ्रीका की सैना

और दक्षिण अफ्रीकी जनसंगठन (एस.डब्ल्यू.पी.ओ) की सैना के बीच शांति-निर्वहन, युद्ध विराम का पर्यवेक्षण, गैर-कानूनी सेनाओं का विघटन और निष्पक्ष चुनाव शामिल थे । यू.एन. की इस कार्यवाही में काफी समय लग गया और यू.एन. के बाहर किया गया समझौता ही सम्भवत: इसकी सफलता का एक कारण था यू.एन. ने सर्वसम्मति के आधार पर अपने कार्य को पूरा किया ।

10.6 शांति-निर्माण में सहायक वैश्विक संस्थाऐं व संगठन

विश्व में शांति-निर्माण के कार्य को बढ़ावा देने के लिए कई वैश्विक संस्थाऐं व संगठन कार्यरत हैं जिनमें शामिल है-

10.6.1 संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद

यह यू.एन का सबसे प्रमुख अंग है जो विश्व शांति और सुरक्षा का जिम्मा सम्भालता है । इसे दुनिया का 'पुलिसमैन' भी कहा जाता हैं । यह यू.एन. चार्टर के अध्याय-7 के तहत विविध प्रकार की कार्यवाही कर शांति स्थापना का काम करता हैं । दुनिया भर के शांति-निर्माण की गतिविधियों में इसने बढ-चढ़ कर भूमिका निभाई है, जिसका व्यवहार में शांति-निर्माण का प्रयोग नामक शीर्षक में विस्तृत वर्णन किया गया हैं ।

10.6.2 संयुक्त राष्ट्र संघ शांति-निर्माण आयोग

वर्ष 2005 में गठित यह एक अन्तर सरकारी सलाहकारी आयोग है जो संघर्षों से जूझते देशों में होने वाले शांति प्रयासों का समर्थन करता है और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की व्यापक शांति कार्यक्रम की क्षमता बढाने में सहयोग करता हैं । यह आयोग विशेषकर के सभी प्रासांगिक अभिकर्ताओं को एक साथ एकजुट करता है जिसमें विशेषकर के अन्तर्राष्ट्रीय दाता देश, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठन, राष्ट्रीय सरकारें व सैन्य योगदान प्रदाता देश शामिल होते हैं । साथ ही आयोग संसाधनों का क्रम विन्यास सुनिश्चित करता है और उत्तर-संघर्ष शांति निर्माण के लिए एकीकृत रणनीतियों का प्रस्ताव करता है और सलाह देता हैं ।

10.6.3 सयुक्त राज्य शांति संस्थान

इसकी स्थापना 1984 में अमेरिकी कांग्रेसी द्वारा पारित व हस्ताक्षरित 'यूनाईटेड स्टेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ पीस एक्ट' के तहत की गई थी । इस विधान पर अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने हस्ताक्षर किये थे । इस संस्थान के उद्देश्यों में शामिल है -

- हिंसक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों को रोकना व उनका निवारण करना ।
- उत्तर-संघर्ष स्थिरता एवं विकास को प्रोत्साहन देना ।
- संघर्ष प्रबन्धन क्षमता, उपकरणों एवं बौद्धिक सम्पदा का विश्व स्तर पर बढ़ावा देना ।

यह संस्थान अन्य लोगों के शिल्प, कौशल एवं संसाधनों और साथ ही विश्व में चारों और शांति-निर्माण में प्रत्यक्ष भागीदारी कर अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए निरन्तर प्रयासरत है ।

10.6.4 द अंलायन्स फॉर पीस बिल्डिंग

इसकी स्थापना 1999 में व्यावहारिक संघर्ष निरोधक एवं निवारक संगठनों का एक अनौपचारिक नेटवर्क के रूप में हुई थी । वर्ष 2006 में संगठन ने अपना वर्तमान नाम ग्रहण किया (पूर्व में इसे 'अलायन्स फॉर इन्टरनेशनल कॉनफ्लिक्ट प्रिवेनशन एण्ड रिजोल्यूशन' के नाम से जाना जाता था) और साथ ही नया मिशन और उद्देश्य भी तय किये ताकि हिंसक संघर्षों को गठजोड की कार्यवाही के द्वारा रोक कर समाप्त किया जा सके । वर्तमान में इसकी सदस्यता सभी योग्य संगठनों के लिए खुली है, पहले अमेरिका तक ही सीमित थी । संगठन के उद्देश्यों में शामिल है-

- गठजोड कार्यवाही की पहल, विकास एवं समर्थन करना ।
- शांति-निर्माण नीतियों के लिए समर्थन एवं समझ विकसित करना ।
- शांति-निर्माण के क्षेत्रों में प्रभाव क्षमता बढाना ।

10.7 सारांश

शांति बनाये रखने के लिऐ सयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य को व्यापक रूप से चार भागों में बाटा जा सकता है- निरोधात्मक कूटनीति, शांति-रचना, शांति-निर्वहन और शांति-निर्माण । निरोधात्मक कूटनीति संघर्ष उग्र रूप धारण करने से पहले संबंधित पक्षों में संघर्ष का समाधान करवाने का प्रयास करती है । शांति-रचना कूटनीतिक तरीके से संघर्ष को दूर करने का प्रयास करती है, लेकिन यह प्रयास शक्ति-परीक्षण या संघर्ष के उग्र रूप धारण करने के बाद किया जाता है । यह संघर्ष में शामिल पक्षों से युद्ध-विराम करवाने का प्रयास करती है । संयुक्त राष्ट्र की शांति-निर्वहन बल्कि भूमिका इस अवस्था में काम करती और यह सुनिश्चित करती है कि युद्ध विराम के सभी पक्षों द्वारा पालन किया जा रहा है । शांति-निर्माण वह अंतिम अवस्था है जो सामाजिक स्तर में सुधार, विधि व्यवस्था व मानवाधिकार व्यवस्था में सुधार और कभी-कभी नई सरकार का गठन कर शांति कायम करती है । यह संघर्ष के पूर्व, संघर्ष के दौरान और संघर्ष के बाद तीनों ही स्थितियों में कार्यरत होती है । इसके लिए सयुक्त राष्ट्र संघ के साथ अन्य अभिकर्ता भी शामिल है । यह प्रक्रिया विश्व के कई देशों में जैसे-सोमालिया, युगोस्लाविया, बुरूंडी आदि में चल रही है, इसको संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव बुतरस बुतरस घाली ने 'एंजेडा फॉर पीस' नामक कार्यक्रम प्रस्तुत कर काफी लोकप्रिय बनाया जो तब से लेकर आज तक बढती ही जा रही है ।

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. शांति-निर्माण का अर्थ एवं परिभाषा बताईये ?
2. शांति-निर्माण, शांति-निर्वहन एवं शांति रचना के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए ?
3. यू.एन. शांति-निर्माण कार्यो का लेखा-जोखा प्रस्तुत कीजिए ?
4. शांति-निर्माण के विविध पहलुओं को बताईये ?

10.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बुतरस बुतरस घाली, एन एजेण्डा फॉर पीस: प्रिवेन्टीव डिप्लोमेसी, यू.एन., जन सूचना विभाग, न्यूयॉर्क, 1992
2. जॉन पॉल लेडेराज "प्रिपेरिंग फॉर पीस: कॉनफ्लिक्ट टाँसफॉरमेशन एकरॉस कल्चर्स", न्यूयॉर्क, 1995
3. जोहान गाल्तुंग, द स्ट्रगल फॉर पीस, पीस रिसर्च सेंटर, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1984
4. प्रसाद, देवी, पीस एडुकेशन ऑर एडुकेशन फॉर पीस, गॉधीपीस फॉउन्डेशन, दिल्ली, 1984
5. गालतुंग, जोहान, द स्ट्रगल फॉर पीस, पीस रिसर्च सेंटर, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, 1984
6. गंगराडे के.डी एवं मिश्रा, आर.पी., कॉनफ्लिक्ट रेसोल्यूशन थ्रू नॉनवायलेन्स, कानसेप्ट पब्लिशिन्ग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007

इकाई - 11

शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण का अर्थ तथा सिद्धान्त

11.3 शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के प्रकार

11.4 शस्त्रनियंत्रण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम

11.5 शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

11.6 शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की कठिनाइयाँ

11.7 भारत और शस्त्रनियंत्रण ।

11.8 शस्त्र नियंत्रण एवं शान्ति स्थापना ।

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास प्रशन

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

यह अध्याय शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की अवधारणा से सम्बंधित है । इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप:

- शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की अवधारणा को समझ सकेगें ।
- शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के इतिहास को जान पायेंगे ।
- शस्त्र नियंत्रण के सम्बन्ध में वैश्विक प्रयासों को जान सकेंगे ।
- शान्ति निर्माण एवं विश्वास बहाली के सन्दर्भ में शस्त्र नियंत्रण की आवश्यकता को आत्मसात कर सकने में समर्थ होंगे तथा
- वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में शस्त्रनियंत्रण की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

शस्त्रों की होड़ और उसमें निहित स्वयं को श्रेष्ठ एवं सुरक्षित करने के भाव ने विभिन्न रूपों एवं पटल पर संघर्ष के कारक की भूमिका निभाई है । यद्यपि यह होड़ पुरातन काल से ही अस्तित्व में है, किन्तु वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने जहां विकास के नये आयाम और सम्भावनाएं पैदा की हैं वहीं विनाश के लिए उन्नत मारक क्षमता और ज्यादा असुरक्षा भी पैदा की है । शस्त्रों की होड़ का अत्यधिक विद्रूप और तीक्ष्ण चेहरा 19वीं सदी के उतरार्द्ध और 20वी सदी आरम्भ दिखाई देता है, जब विश्व कुछ निहित स्वार्थो और स्वयं को श्रेष्ठ करने की चाहत के कारण 20 वर्षो के अन्तराल पर ही दो विश्वयुद्ध का बेबस गवाह बनता है, और लाखों लोग काल कवलित होते हैं । विनाशकारी युद्धों के पीछे शस्त्रीकरण की होड़ प्रमुखतम कारण रही है,

अत: मानव सुरक्षा और शांति की स्थापना के लिए शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण एक वैश्विक आवश्यकता है । आज के इस नाभिकीय और विनाशकारी हथियारों के ढेर पर बैठी दुनिया, जिसमें गैर-राज्यीय खतरे, विशेष रूप से आतंकवाद एक गम्भीर और व्यापक वैश्विक खतरे के रूप में है, से बचाने के लिए शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की आवश्यकता ज्यादा से ज्यादा महसूस की जा रही है । शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के साथ ऐसी तकनीकों के प्रसार को भी रोके जाने की आवश्यकता है ।

शस्त्रीकरण के होड़ के पीछे शक्ति संतुलन साधने की मंशा निहित होती जो यथार्थवादी सिद्धान्त पर आधारित है । किन्तु अब यह यथार्थ ज्यादा गहराई से महसूस किया जा रहा है कि, शक्ति संतुलन साधने की चेष्टा में कहीं सम्पूर्ण विश्व के अस्तित्व में पर ही खतरा न हो जाय । प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध भी शक्ति संतुलन की चेष्टा और श्रेष्ठता को सिद्ध करने की महत्वाकांक्षा के कारण हुए थे ।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात पेरिस शांति सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों के द्वारा जर्मनी और उसके मित्र देशों को एक पक्षीय रूप से विसैन्यीकृत क्षेत्र घोषित कर सैनिक शक्ति और शस्त्रीकरण की सीमा पर रोक लगा दी थी किन्तु आपसी द्वंद और एक पक्षीय शरत्रीकरण को रोकने की चेष्टा उनकी विश्व शांति के प्रति गम्भीरता को प्रदर्शित नहीं कर रही थी । अतएव इसके फलस्वरूप विश्व को द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषका का सामना करना पड़ा । 1920 और 1936 के बीच अनेक सम्मेलनों के द्वारा विश्व की प्रमुख शक्तियों ने निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास किए किन्तु उनके पूर्णत: सफल न होने के कारण ही विश्व 20 वर्ष के कम अन्तराल पर ही पुन: युद्ध के आगोश में चला गया ।

अत: यह महसूस किया गया कि सम्यक शस्त्रनियंत्रण और निशस्त्रीकरण के अभाव में एकांगी शस्त्रनियंत्रण विश्व को सुरक्षित रखने में समर्थ नहीं हैं । द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषका के पश्चात शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के प्रयास संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से तथा अनेक वैश्विक मंचों से के माध्यम से गये । किन्तु ये प्रयास भी शीतयुद्ध की राजनीति के कारण उतने प्रभावी नहीं हो सके । सम्प्रति आज भी अनेक स्तरों पर वैश्विक शस्त्र नियंत्रण और निशस्त्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं ।

11.2 शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण का अर्थ एवं सिद्धान्त

शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सर्वाधिक लोकप्रिय धारणाओं में एक है । सम्प्रति इस आशय वैश्विक स्तर पर सर्वमत से यह स्वीकार कर लिया गया है कि, विश्व को युद्ध की बिभीषका से बचाने एवं पीढीयों के लिए पृथ्वी को सुरक्षित रखने के लिए शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण बहुत आवश्यक है । विश्व अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा हिस्सा जो मानव जीवन के भूख, प्यास, गरीबी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य इत्यादि पर होना चाहिए; वह मारक विनाशकारी हथियारों की खरीद, उनके रख-रखाव एवं उनकी सुरक्षा पर खर्च हो रहा है । भविष्य में परमाणु युद्ध की आशंका तथा नित नये गुप्त तरीके से बनाए जा रहे परमाणु एवं अन्य विनाशक वैश्विक समुदाय के लिये चिन्ता का कारण बन गये हैं । इन परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय शांति

तथा व्यवस्था को बनाये रखना हमारी सभ्यता के लिए स्थायी चिन्ता का कारण बन गया है । युद्ध की सम्भावनाओं को करने के लिए शस्त्र नियन्त्रण और निशस्त्रीकरण आदर्श साधन समझे गये हैं ।

शस्त्र नियन्त्रण एवं निशस्त्रीकरण प्राय: समानार्थी समझे जाते हैं, किन्तु दोनों के अर्थो में अन्तर निहित है । निशस्त्रीकरण एक आदर्शवादी अवधारणा के रूप में देखा गया है, और शुरूआती समय में निशस्त्रीकरण की बात बडे जोर -शोर से वैश्विक पटल के समक्ष रखी गयी । निशस्त्रीकरण का अर्थ शास्त्रों को पूर्णतया नष्ट कर शस्त्रों से हीन होने से है, किन्तु यह अवधारणा धीरे -धीरे यथार्थवादी अवधारणाओं और प्रक्रियाओं के मध्य स्वप्नदर्शी अवधारणा प्रतीत होने लगा । कालान्तर में इस अवधारणा को आंशिक और पूर्ण निशस्त्रीकरण में विभाजित कर, शान्ति प्रकियाओं को आगे बढाने पर विचार किया गया । किन्तु कहीं न कहीं, यह अवधारणा एक आदर्श रूप होते हुए भी, यथार्थ परिस्थिति से मेल नहीं खा रही थी । इस कमी को दूर किया, शस्त्र नियंत्रण की अवधारणा ने ।

शस्त्र नियंत्रण की अवधारणा में, शस्त्रों के विस्तार तथा उनके अनुचित प्रयोग को सीमित करने के लिए भविष्य में शस्त्रों के उत्पादन को सीमित करने का विचार शामिल है । निशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण दोनों ही शांति सुरक्षा तथा मानव विकास के आवश्यक साधन हैं । यद्यपि निशस्त्रीकरण की स्पष्ट सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, तथापि विभिन्न परिभाषाओं और राजनीतिक, कूटनीतिक व्यवहार को समझ कर हम निशस्त्रीकरण को समझ सकते हैं । निशस्त्रीकरण एक ऐसी विश्व व्यवस्था की मांग करता है, जिसमें युद्ध कला में उपयोग होने वाली समस्त मानवीय तथा भौतिक उपकरणों का उन्मूलन हो तथा समस्त पक्ष शस्त्रों से हीन हों, इसके साथ ही साथ इसमें यह भी निहित है कि, शक्ति संतुलन साधने के क्रम में श्रेष्ठता की होड़ न हो । मार्गेन्थाऊ के शब्दों में, "शस्त्र दौड को समाप्त करने के उद्देश्य से विशेष या सभी प्रकार के शस्त्रों की समाप्ति या कटौती, निशस्त्रीकरण कहलाती है" ("Disarmament is the reduction or elimination of certain or all instruments for the purpose of ending the armament race") । पुष्पेश पंत निशस्त्रीकरण को विनाशकारी शस्त्रास्त्रों पर रोक के लिए दो देशों की सरकारों द्वारा सीधी बातचीत एवं प्रयत्नों से लिये गए उक्त दिशा में ऐसे निर्णयों को मानते हैं जिन्हें लागू करने से न केवल शस्त्रों, बल्कि सैनिक साज सामग्री और सेनाओं में वृद्धि उत्पादन और नव-अन्वेषणों पर रोक लग जाती है । यह धारणा शस्त्रों को विशेष रूप से मानवता के लिए विनाशकारी हथियारों (Weapons of Mass Destruction) को, जिसके कारण शक्ति-संतुलन की बजाय आतंक के संतुलन (Balance of Terror) की स्थिति बनी हुई है, को समाप्त करने से सम्बन्धित है । सकारात्मक रूप में निशस्त्रीकरण का अर्थ है, युद्ध सामग्री के परित्याग के द्वारा युद्ध के भय से सम्पूर्ण विश्व को मुक्त करवा कर स्थायी तथा सकारात्मक शांति की स्थापना करना, जिसमें न तो आतंक के संतुलन द्वारा स्थापित भय और युद्ध हो, और न ही असुरक्षा का बोध, अपितु यह मानव विकास और कल्याण की भावना पर अवलम्बित हो ।

यद्यपि निशस्त्रीकरण और शस्त्र नियंत्रण में नजदीकी संबंध है तथापि इनकी विभिन्नताएं इन्हें अलग - अलग अवधारणा के रूप में स्थापित करती हैं । श्लीचर के अनुसार, "शस्त्र नियंत्रण को कुछ लेखक व्यापक शब्द मानते हैं, जिसमें शस्त्रों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का ऐसा सहयोग शामिल है जो शस्त्र-दौड़ में कटौती कर सके, युद्ध की संभावनाओं को कम कर सके या इसके क्षेत्र तथा हिंसा को सीमित कर सके । इसमें राज्यों के एक पक्षीय निर्णय, उनके बीच अनौपचारिक आपसी समझ तथा औपचारिक रूप से समझौता वार्ताएं तथा संस्थानीकृत समझौते शामिल होते हैं। इसमें युद्ध के लाभों की बजाय युद्ध उद्यम में कटौती करने पर बल दिया जाता है । शस्त्र-नियंत्रण में कुछ विशेष प्रकार के शस्त्रों पर प्रतिबन्ध या युद्ध -सामग्री में कटौती शामिल होती है ।"

शस्त्र नियन्त्रण के दो भाग हैं -

(क) शस्त्रों में कटौती, तथा

(ख) शस्त्रों पर प्रतिबन्ध ।

शस्त्रों में कटौती का आशय, इसमें सम्मिलित राष्ट्र सर्वमान्य स्वीकृत शस्त्रों को सर्वमान्य सीमित मात्रा में रखें जिससे युद्ध के संभावित विनाश की संभावना को क्षीण किया जा सके । शस्त्र नियंत्रण सिर्फ विनाशक शस्त्रों के रखने एवं उनके प्रसार को रोकने तक ही सीमित नहीं है, अपितु शस्त्र नियन्त्रण का आशय इनके तकनीकी ज्ञान के प्रसार को रोकना है । पाकिस्तान के पूर्व परमाणु वैज्ञानिक अब्दुल कादिर खान एवं ऐसे ही अन्य अविश्वसनीय राष्ट्रों (Rogue States) के व्यवहार वैश्विक खतरे को बढ़ा रहे हैं । अतएव शस्त्र तकनीकी ज्ञान के प्रसार को गलत हाथों में पहुंचने से रोकने का यत्न भी शस्त्र नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनता जा रहा है ।

11.3 नि:शस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियन्त्रण में अंतर

(1) निःशस्त्रीकरण का सम्बन्ध अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के अनुसार युद्ध सामग्री तथा सैनिकों की संख्या में कटौती करना है जबकि शस्त्रनियन्त्रण का सम्बन्ध उन सभी अन्तर्राष्ट्रीय उपायों तथा समझौतो से है जो उन शस्त्रों के प्रयोग को सीमित करते हैं तथा उनका नियमन करते हैं ।

(2) निःशस्त्रीकरण द्वारा विद्यमान शस्त्रों को समाप्त करने या नष्ट करने का किया जाता है, शस्त्र नियंत्रण द्वारा भविष्य में शस्त्रों के उत्पादन तथा प्रयोग के संबध में तथा वांछित निर्णय शामिल होता है ।

(3) नि:शस्त्रीकरण का अर्थ सशस्त्र सेनाओं को उनके शस्त्रों तथा साजो -समान, अड्डों तथा बजट सहित सीमित करके कटौती करने या बहिष्कार करने की व्यवस्था या योजना है । जबकि शस्त्र नियंत्रण का उद्देश्य, युद्ध सामग्री की क्षमताओं के सामंजस्य द्वारा प्राकृतिक सुरक्षा स्थिति को सुधारना होता है । इन दोनों में अन्तर करतें हुए वी० वी० डाईक लिखते हैं, "शस्त्र नियंत्रण सकारात्मक प्रकार के उन उपायों की ओर संकेत करता है, जो शान्ति की स्थापना के विचार से सोच -समझ कर तथा दृढ निश्चय से अपनाए

जाते हैं जबकि निःशस्त्रीकरण नकारात्मक तथा प्रतिबन्धित के उन उपायों की ओर संकेत करता है, जिसका परिणाम स्वत: निकलने की कल्पना की जाती है ।"

निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण भिन्न होते हुए भी भावना में एक हैं तथा एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं । शस्त्रनियन्त्रण के अभाव में निःशस्त्रीकरण स्थायी एवं सकारात्मक शांति की स्थापना नहीं कर सकता । वर्तमान युद्ध सामग्री एवं विनाशक हथियारों में कटौती एवं परित्याग से ही सिर्फ विश्व शांति की स्थापना नहीं होगी जबतक भविष्य में शस्त्रों के उत्पादन, शक्ति सन्तुलन के लिए शस्त्रों की होड़ और श्रेष्ठता सिद्ध करने की भावना को नियंत्रित एवं नियमित नहीं किया जाता, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात जर्मनी इसका सबसे उपर्युक्त उदाहरण है । इसी तरह से शस्त्रनियंत्रण की तमाम योजनाएं भी बेमानी है जबतक हम एकांगी रूप से निशस्त्रीकरण को स्वीकार करेंगे । वर्तमान में उपलब्ध विनाशक हथियारों को नष्ट किये बिना सुखद और शान्तिपूर्ण भविष्य की कल्पना नहीं की जा सकती । निशस्त्रीकरण शस्त्रों पर नियंत्रण करने का प्रयत्न करता है, जबकि शस्त्रनियंत्रण शस्त्रों की होड़ को रोकने का प्रयत्न है ।

11.4 निशस्त्रीकरण के विभेद

- गुणात्मक निशस्त्रीकरण : कुछ विशेष किस्म के शस्त्रों पर सीमा, या रोक लगाना गुणात्मक निशस्त्रीकरण है ।
- सामान्य नि: शस्त्रीकरण: इसमें सभी या अधिकांश महाशक्तियां भाग लेती है, किन्तु उनके लिए यह जरूरी नहीं है कि, वे समस्त प्रकार के शस्त्रों के त्याग के लिए प्रतिबद्ध हों ।
- व्यापक नि: शस्त्रीकरण इसमें समस्त शस्त्रों का नियंत्रण व निषेध होता है । इसे पूर्ण या सम्पूर्ण निशस्त्रीकरण भी कहा जाता है । ये ऐसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था बनाने की पहल करता है, जिसमें युद्ध के कारक हो सकने वाले समस्त भौतिक तथा मानवीय साधन समाप्त कर दिए जाएं ।

शस्त्र नियंत्रण भी दो प्रकार का है ।

- शस्त्रों में कटौती इसका आशय वर्तमान में उपलब्ध शस्त्रों की सर्वमान्य सीमा तक कटौती कर उनको समाप्त करना ।
- शस्त्रों पर प्रतिबन्ध: इसका आशय शस्त्र और शस्त्र तकनीक के वैध तथा अवैध क्षैतिज प्रसार को रोकना है । इसमें राष्ट्रों के मध्य सहमति के आधार पर विशेष तकनीक प्रसार को दूसरों के मध्य बांटना, शस्त्रों के विस्तार तथा मात्रात्मक वृद्धि पर प्रतिबन्ध होता है ।

11.4 शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम-

शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास 1648 के वेस्टफीलिया की सन्धि को माना जा सकता है, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण तथा सैनिक शक्ति कटौती के विचार को पहली बार अंतर्राष्ट्रीय मंच पर लाया जाता है । 1817 में रश बैगट (Rush Bagot) समझौता किया

गया, जिसके अनुसार अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन ने कनेडियाई तथा अमेरिकी सीमाओं से, सेनाओं से खाली करना स्वीकार किया गया ।

1899 तथा 1907 के हेग सम्मेलन -

1899 में पहला हेग सम्मेलन हुआ जिसमें 28 राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इसमें मानव जाति की भौतिक तथा नैतिक भलाई के कार्यो में वृद्धि करने एवं सैनिक व्यय में कटौती करने का सुझाव दिया गया । इसमें दो निश्चय किए गए-

1. हवा में से अस्त्रों तथा विस्फोटकों को दागने पर प्रतिबन्ध लगाया गया । तथा
2. बेहोश करने वाली गैस तथा बड़ी-बड़ी गोलियों के प्रयोग पर रोक लगा दी गई ।

दूसरा हेग सम्मेलन 1907 में हुआ, इसमें 43 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया । इसमें भाग लेने वाले राष्ट्र किसी निर्णय पर पहुंचने में असफल रहे । शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण के प्रयास को प्रथम विश्व युद्ध से गहरा आघात लगा, जिसमें विश्व में इतने व्यापक स्तर पर शस्त्रों की होड़ मची और विनाशक हथियारों का प्रयोग किया गया । 8 जनवरी 1918 को अपने प्रसिद्ध 14 सूत्रीय भाषण में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने आंतरिक सुरक्षा के अनुकूल राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों को निम्नतम स्तर तक कम करने की अपील की । राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अनुच्छेद 8 में यह घोषणा यह घोषणा की गयी -

"संघ के सदस्य यह स्वीकार करते हैं कि, शान्ति की स्थापना के लिए राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों को राष्ट्रीय सुरक्षा के अनुरूप निम्नतम स्तर तक कम किया जाय तथा अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को साझी कार्यवाही द्वारा लागू किया जाय ।"

अस्थायी मिश्रित कमीशन (1920-24)

1920 में लीग की सभा की सिफारिशों के अनुसार कार्य करते हुए लीग की परिषद ने एक अस्थायी मिश्रित कमीशन की स्थापना की, जिससे निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रयत्न किया जा सके । किन्तु इस अस्थायी आयोग को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुयी ।

जेनेवा सम्मेलन 1932

शस्त्रों की कटौती तथा प्रतिबन्ध के प्रारूप पर विचार हेतु फरवरी 1932 में जेनेवा में एक सम्मेलन हुआ, इसमें 61 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया । दो वर्षो के विचार विमर्श के पश्चात सम्मेलन शस्त्र-नियंत्रण पर एक समझौता करने में सफल हो गया जिसमें युद्ध के विशेष प्रकार के शस्त्रों के प्रयोग जैसे -जहाजों या गुबारों द्वारा गिराए जाने वाले बम, आग लगाने वाले बन, जीवाणुओं से युक्त रासायनिक शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा शस्त्रों की समाप्ति करने का, शस्त्रों के व्यापार का अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण तथा शस्त्रों के बजट के मुद्रण की आवश्यकता पर बल दिया गया । किन्तु इस सन्धि को लागू करने का दायित्व राष्ट्रीय सरकारों के पास था, जो अपने निहित स्वार्थो के दायरे में बंधे हुए थे । 1930 के दशक के गम्भीर आर्थिक संकट ने राष्ट्रों के मध्य असुरक्षा के भाव को और बढाया । यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा निरंतर शस्त्रास्त्रों का निर्माण कर अविश्वास को बढ़ावा दिया गया एवं जर्मनी पर अनुचित रूप से वर्साय की सन्धि को थोपा गया । अक्टूबर 1933 में जर्मनी ने जेनेवा सम्मेलन का

परित्याग कर दिया । इस तरह शस्त्रनियंत्रण की दिशा में पड़ाव होते हुए भी यह असफल हो गया ।

शस्त्र नियंत्रण कि दिशा में राष्ट्र संघ के इतर भी प्रयास किया गया जिनमें महत्वपूर्ण हैं :

1921-22 का वाशिंगटन सम्मेलन -

'इसे पांच शक्तियों की सन्धि' के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें एक सन्धि पर ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका फांस, जापान तथा इटली ने हस्ताक्षर किए । इस सन्धि के द्वारा हस्ताक्षरकर्ता के बीच 10 वर्षा के लिए नौसैनिक होड़ कम हो गयी । किन्तु कालान्तर में शामिल देशों की नौसैनिक क्षमता कम करने की असमर्थता के कारण यह भी असफल हो गया।

1927 का जेनेवा सम्मेलन -

अमेरिकी राष्ट्रपति कूलीज ने 1927 में जेनेवा में द्वितीय नौसैनिक सम्मेलन बुलाया । इसमें तीन राष्ट्रों इग्लैंड, जापान और अमेरिका ने भाग लिया, किन्तु गम्भीर मतभेदों के कारण यह असफल हो गया ।

1930 की लंदन नौसैनिक सन्धि-

लंदन का यह सम्मेलन जेनेवा सम्मेलन के मतभेदों को दूर करने के लिए गया । इस पर अमेरीका ब्रिटेन तथा जापान ने हस्ताक्षर किए । फांस तथा इटली ने इस पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया । बाद में हस्ताक्षरकर्ता देशों द्वारा इसका पालन न करने के कारण निशस्त्रीकरण का यह प्रयास भी विफल हो गया ।

शस्त्र नियंत्रण और निशस्त्रीकरण के उपायों की विफलता ने शस्त्रों की होड़ को और तीव्र किया । परस्पर अविश्वास और उन्नत किस्म के हथियारों ने द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म दे दिया । द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषका और 1945 का हिरोशिमा और नागासाकी पर हुए परमाणु विस्फोट ने समस्त विश्व के समक्ष यह सिद्ध किया कि, शस्त्रीकरण की होड़ और उससे हो सकने वाले युद्ध को नहीं रोका गया तो, मानवता का अंत हो सकता है ।

इन्हीं सब चिन्ताओं के मध्य संयुक्त राष्ट्र संघ का अस्तित्व एक आशा की किरण के साथ आता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का उद्देश्य "भविष्य में मानव पीढ़ियों को युद्ध की विभीषका से बचाना था ।" युद्ध की विभीषका को रोकने के लिए शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण आवश्यक था । यह चेतना विश्व के शक्तियों के अन्दर आ गयी थी, जिसके परिणाम-स्वरूप शस्त्रनियंत्रण और निशस्त्रीकरण की दिशा में सफलतम प्रयास शीतयुद्ध होते हुए भी इस दौर में हुए । संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुच्छेद 25 में निशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद के कार्यो का उल्लेख किया गया है । "विश्व के मानवीय तथा आर्थिक साधनों को कम से कम शस्त्रास्त्रों की ओर मोड़ने के प्रयत्नों के साथ अंतर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना करने के लिए तथा इसे बनाए रखने के लिए शस्त्रास्त्रों के नियमन की व्यवस्था के लिए संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के सामने रखी जाने वाली योजना बनाने के लिए सुरक्षा परिषद उत्तरदायी है।"

11.5 शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

15 नवम्बर, 1945 को ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका तथा कनाडा ने यह घोषणा की कि, वे परमाणु शक्ति सम्बन्धी सूचनाएं परस्पर आदान -प्रदान के सिद्धान्त पर व्यावहारिक रूप से संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के साथ आदान-प्रदान करने को तैयार हैं । 14 जून 1946 की बरूच योजना 'अंतराष्ट्रीय अणु विकास प्राधिकरण' (International Atomic Development Authority) की स्थापना प्रस्तावित करती है जो अणु ऊर्जा के खतरनाक प्रयोग को वैश्विक स्तर पर नियंत्रित करे एवं अणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग को बढ़ावा दे । किन्तु राष्ट्रों के मध्य अविश्वास एवं उनकी सुरक्षा चिन्ताएं, इसकी सफलता के मार्ग में बाधा साबित हुयी ।

अणु शक्ति आयोग ,1946-

26 जनवरी,1946 को संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद के अधीन संयुक्ता राष्ट्र महासभा ने 'अणु शक्ति आयोग' (Atomic Energy Commission) की स्थापना करने का निर्णय किया, जिसमें सभी स्थायी सदस्यों के साथ कनाडा को भी रखा गया । इस आयोग को निम्न बिन्दुओं पर अपनी सिफारिश करनी थी-

1. शान्तिपूर्ण उद्देश्य के लिए मूल वैज्ञानिक ज्ञान का सभी देशों के बीच आदान-प्रदान ।
2. शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए अणु शक्ति पर नियंत्रण ।
3. राष्ट्रीय शस्त्रास्त्रों से अणु अस्त्रों तथा जन-विध्वंस के दूसरे शस्त्रों का बहिष्कार तथा
4. निरीक्षण करने के लिए प्रभावशाली सुरक्षात्मक उपाय के साथ राज्यों द्वारा किसी भी धारा को भंग करने या सन्धि मानने में टालमटोल करने से रोकने के उपाय तथा बचाव ।

परम्परागत-शस्त्र आयोग-

सुरक्षा परिषद द्वारा फरवरी 1947 को परम्परागत शस्त्रों के संबंध में एक आयोग की स्थापना की गई, जिसे तीन माह के अन्दर 'शस्त्रास्त्रों तथा सशस्त्र सेनाओं में सार्वजनिक कटौती' के संबंध में प्रस्ताव तैयार कर सुरक्षा परिषद को देना था । किन्तु शीत युद्ध की राजनीति में इस आयोग की सिफारिश सिफर हो गयी ।

निशस्त्रीकरण आयोग, 1952-

उपर्युक्त दोनों आयोगों की असफलता के बाद अमेरीकी राष्ट्रपति ट्रूमैन ने संयुक्त राष्ट्र संघ में यह सुझाव रखा कि दोनों आयोगों को मिला दिया जाय । इस हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 12 सदस्यों की एक समिति गठित की, जिसे इसके बारे में अपने सुझाव देने थे । समिति के सिफारिश पर महासभा ने 11 जनवरी 1952 को एक निशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की । प्रारम्भ में इस आयोग के सदस्य के रूप में सुरक्षा परिषद के सदस्यों एवं कनाडा को रखा गया, जिसे 1957 में 14 कर दिया तथा 1958 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों को इसका सदस्य बना दिया । इस आयोग ने शस्त्रास्त्रों एवं सैनिक दस्तों में कमी,

निशस्त्रीकरण समझौते, शस्त्र सूची और सत्यापन जैसे कई निशस्त्रीकरण प्रस्ताव पेश किये । किन्तु इसके सम्बन्ध में वैश्विक ईकाइयों को रूख सकारात्मक नहीं रहा, जिससे शस्त्र नियंत्रण के प्रयास में यह आयोग भी असफल रहा ।

शान्ति के लिए अणु योजना,1953 -

दिसम्बर 1953 में अमेरीकी राष्ट्रपति आइजनहावर ने 'शांति के लिए अणु' योजना (Atom for Peace Plan) का प्रस्ताव रखा । इस योजना का उद्देश्य परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण उपयोग था । इस योजना को पूर्व सोवियत संघ ने अस्वीकार कर दिया, जिससे यह प्रयास भी निष्फल हो गया ।

1954 से 1963 तक शस्त्र नियंत्रण की दिशा में कुछ प्रयत्न किये गए परन्तु यह अधिकतर असफल ही रहे । इनमें प्रमुख रूप से 1954 की एंग्लो-फ्रांसीसी योजना, 1955 की सोवियत योजना तथा 1955 का जेनेवा शिखर सम्मेलन जिसमें अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहावर ने उन्मुक्त आकाश योजना (Open Skies) रखी, इत्यादि रही ।

आंशिक परीक्षण प्रतिबंध संधि,1963 -

5 अगस्त 1963 को अमेरीका, ग्रेट ब्रिटेन तथा सोवियत संघ ने आंशिक परीक्षण प्रतिबंध संधि पर हस्ताक्षर किये, जो निशस्त्रीकरण की दिशा में ऐतिहासिक कदम था । इस संधि की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं :

1. कोई भी सदस्य राष्ट्र; वायुमण्डल, बाह्य अंतरिक्ष तथा पानी के नीचे किसी तरह का कोई परमाणु परीक्षण नहीं करेगा ।
2. कोई भी सदस्य राष्ट्र; अपने भू-क्षेत्रीय समुद्र तथा खुले समुद्र में परमाणु परीक्षण नहीं करेगा ।
3. प्रत्येक सदस्य राष्ट्र गैर -सदस्य राष्ट्रों को अप्रत्यक्ष रूप से परमाणु परीक्षण करने के लिए उत्साहित नहीं करेगा ।

इस संधि को आंशिक इसलिए कहा गया क्योंकि, इसमें धरती के अन्दर परमाणु परीक्षणों पर कोई रोक नहीं लगाई गई ।

बाह्य अंतरिक्ष संधि, 1967 -

अंतरिक्ष में शस्त्र दौड़ की सम्भावना के कारण, अंतरिक्ष को मानवता के लिए बचाने की आवश्यकता महसूस की गयी । महासभा ने शांतिपूर्ण कार्यो के लिए बाहरी अंतरिक्ष प्रयोग सम्बन्धित एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें अंतरिक्ष को मानवता की साझी सम्पत्ति माना गया तथा बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण शोध तथा साझे प्रयोग के लिए अपील की गयी । इस प्रस्ताव के पश्चात अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ ने इस विषय पर एक द्विपक्षीय समझौता किया ।

परमाणु अप्रसार संधि, 1968 -

शस्त्रों की होड़ को सीमित करने एवं निशस्त्रीकरण के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में इस संधि को मील का पत्थर माना गया । 1966 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की राजनीतिक समिति ने परमाणु हथियारों के निर्माण एवं प्रसार पर रोक लगाने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया । इसमें यह कहा गया कि, परमाणु हथियार-विहीन राष्ट्र परमाणु अस्त्रों का

निर्माण नहीं करें और परमाणु आयुध सम्पन्न राष्ट्र इसका उत्पादन न करें । निशस्त्रीकरण आयोग द्वारा तैयार इस संधि के मसविदे को महासभा ने 13 जून 1968 को स्वीकार कर लिया तथा सदस्य देशों को हस्ताक्षर के लिए कहा । अमेरीका और सोवियत संघ सहित 40 देशों का समर्थन प्राप्त होने पर 5 मार्च 1970 को इसे लागू कर दिया गया । इस संधि की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

1. परमाणु हथियार संपन्न राष्ट्र, गैर परमाणु हथियार संपन्न राष्ट्रों को परमाणु अस्त्रों एवं तकनीक को प्राप्त करने में सहयोग नहीं प्रदान करेंगे ।
2. परमाणु-अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों ने परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने उन सभी परमाणु-अस्त्र विहीन राष्ट्रों को, जो शान्तिपूर्ण कार्यो के लिए उसका प्रयोग करेंगे, सभी तरह का ज्ञान तथा सामग्री देना स्वीकार किया ।
3. परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों ने परमाणु-अस्त्र-विहीन राष्ट्रों को परमाणु अस्त्रों से वास्तविक आक्रमण या आक्रमण की धमकी की स्थिति में सभी प्रकार की सहायता देना स्वीकार किया।
4. परमाणु-अस्त्र-विहीन राष्ट्रों को अपने परमाणु संस्थानों के निरीक्षण को स्वीकार करना होगा । यह कार्य एक अंतर्राष्ट्रीय अणु शक्ति एजेंसी को सौंपा जाएगा, ताकि कोई भी देश परमाणु तकनीक का प्रयोग शान्ति के उद्देश्यों के स्थान पर सैन्य उपयोग के लिए न कर सके ।

अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ तथा इंग्लैण्ड द्वारा इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के बाद बड़ी संख्या में अन्य राज्यों ने इस पर हस्ताक्षर किये लेकिन भारत, चीन, ब्राजील तथा पाकिस्तान राज्यों ने इसे पक्षपातपूर्ण संधि मानते हुए, इसके विरूद्ध निर्णय किया । इसके पीछे यह तर्क था कि, यह मे में कुछ विशेषाधिकार, प्राप्त राज्य जिनके पास परमाणु अस्त्र हैं तथा अन्य राज्यों के बीच विभाजन को- बढाता ही नहीं है, अपितु वैश्विक समुदाय में असमानता को वैधानिक मान्यता भी प्रदान करता है । यह संधि गैर-परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों की परमाणु-अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों पर निर्भरता को बढ़ावा देती है ।

परमाणु अप्रसार संधि (NPT) परमाणु शक्तियों के बीच परमाणु अस्त्रों की दौड़ पर नियंत्रण करने में असफल रही । इसके साथ ही यह पूर्ण निशस्त्रीकरण के लक्ष्य को भी प्राप्त करती प्रतीत नहीं हुयी, क्योंकि यह सिर्फ परमाणु अस्त्रों तक सीमित था ।

साल्ट एक व साल्ट दो समझौता -

साल्ट एक -

शस्त्र नियंत्रण की दिशा में दितान्त युग में किया गया SALT-I 1/4Strategic Arms Limitation Treaty-I) समझौता एक सकारात्मक प्रगति थी । पूर्व सोवियत संघ तथा अमेरीका दोनों ने द्विपक्षीय सहयोग के प्रयत्नों के साथ सामरिक शस्त्रास्त्र परिसीमन संधि पर हस्ताक्षर किए । इस संधि में मुख्यत: दो समझौते किए गए

1. प्रक्षेपास्त्र विरोधी शस्त्रों को सीमित करने सम्बन्धी संधि (Treaty on the Limitation of Anti- Ballistic Missiles System), और
2. सामरिक आक्रामक शस्त्रों (Strategic offensive Arms) के परिसीमन संबंधी कुछ उपायों पर अंतरिम समझौता ।

पहला समझौता अनिश्चित काल के लिए किया गया, वहीं दूसरा समझौता पांच वर्ष के लिए किया गया ।

साल्ट दो समझौता-

मई 1979 में वियना में तत्कालीन अमेरीकी राष्ट्रपति कार्टर तथा सोवियत गणराज्य के राष्ट्रपति ब्रेझनेव ने साल्ट दो संधि पर हस्ताक्षर किए । यह संधि पांच वर्ष तक के लिए थी, जिसमे निम्न व्यवस्थाएं की गयीं-

1. दोनों पक्षों के सामरिक शस्त्र पांच सालों तक के लिए सीमित किए जाएंगे । इन दोनों की कुल संख्या 2250 होगी, जिसमें ICBM, SLBMs, पनडुब्बी जलावतरण प्रक्षेपास्त्र इत्यादि सम्मिलित थे । लेकिन इस संधि में दोनों देशों को नए प्रक्षेपास्त्र तथा परमाणु अस्त्र बनाने की छूट थी ।
2. साल्ट तीन समझौते पर आगे बातचीत के लिए सहमति बनी ।

किन्तु पूर्व सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में हस्तक्षेप के कारण अमेरीकी सीनेट द्वारा इस संधि को स्वीकृति नहीं दी गयी, जिससे शस्त्र नियंत्रण की दिशा में किया गया महत्वपूर्ण प्रयास विफल हो गया ।

मध्यम दूरी मारक परमाणु प्रक्षेपास्त्र संधि -

अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और सोवियत संघ के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव (Mikhail Gorbachev) ने 8 दिसम्बर 1987 को में जेनेवा मध्यम दूरी के परमाणु अस्त्रों को समाप्त करने सम्बन्धी संधि (Intermediate Range Nuclear Force Treaty or INF Treaty) पर हस्ताक्षर कर शस्त्र नियंत्रण की दिशा में एक मील का पत्थर स्थापित कर विश्व शांति के प्रयास को मजबूत किया । यह शस्त्र नियंत्रण की दिशा में पहला वास्तविक वैश्विक प्रभावी कदम था । इस संधि के तहत अमेरीका और सोवियत संघ ने 500 किमी. से 5000 किमी. तक की दूरी वाले सभी परमाणु प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करना स्वीकार किया । इस संधि में विश्वास-निर्माण की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में, एक दूसरे के भू-भाग पर वास्तविक रूप से मौके का भौतिक निरीक्षण करने की सुविधा थी । निर्धारित समय पर इस संधि के अनुसार दोनों पक्षों ने निर्धारित मिसाइलों को नष्ट कर, विश्व के समक्ष एक नई आशा की किरण जगाई । सम्पूर्ण विश्व ने शस्त्र नियंत्रण के इस प्रयास का स्वागत किया ।

स्टार्ट संधि -

अमेरिका और सोवियत संघ ने 31 जुलाई, 1991 को मास्को में लम्बी दूरी के हजारों नाभिकीय प्रक्षेपास्त्र खत्म करने के लिए सामरिक अस्त्र परिसीमन सन्धि (Strategic Arms Reduction Treaty or START) पर हस्ताक्षर किये । इस सन्धि के अनुसार सोवियत संघ के परमाणु भण्डार में 35 प्रतिशत और अमेरीकी भण्डार में 28 प्रतिशत की कटौती कर 1982

के स्तर पर लाना था । इस सन्धि के अनुसार प्रत्येक पक्ष के पास सामरिक परमाणु शस्त्र प्रक्षेपक वाहकों (S.N.D.V.C.) की संख्या 1600 से ज्यादा नहीं हो सकेगी । पुष्टि और जांच के लिए एक संयुक्त-आयोग बनाने की भी बात हुयी ।

स्टार्ट संधि अगले 15 वर्षो; और सहमति होने पर अगले पांच वर्ष ओर के लिए वैध होगी ।

स्टार्ट द्वितीय सन्धि -

3 जनवरी, 1993 को अमेरीका तथा रूस ने स्टार्ट-द्वितीय संधि (START II) पर हस्ताक्षर किये । इसके तहत अमेरिकी परमाणु शस्त्र भण्डार को 1960 के तथा रूसी परमाणु शस्त्र को 1970 के दशक के स्तर तक लाने का निर्णय हुआ । उत्तर शीतयुद्ध में यह अमेरीका तथा रूस के मध्य पहला बड़ा समझौता था, जिसके द्वारा दोनों देशों ने परमाणु-शस्त्र-भण्डारों में व्यापक कटौतियां स्वीकार। कीं।

व्यापक परमाणु परिक्षण निषेध संधि -

इस संधि को व्यवहारिक रूप में हम CTBT (Comprehensive Test Ban Treaty) के नाम से जानते हैं । यह संधि भी परमाणु अप्रसार संधि की तरह ही भेदभावपूर्ण सन्धि थी, जिसमें परमाणु-शस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों को व्यापक छूट तथा अन्य राज्यों पर प्रतिबन्ध था । वास्तविक रूप से यह संधि शस्त्र नियंत्रण की संधि न होकर परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों को मजबूत और वैधानिक बनाने की संधि थी, जो एक भेदभाव पूर्ण व्यवस्था का निर्माण और अविश्वास का माहौल पैदा करती थी । भारत, पाकिस्तान, ब्राजील इत्यादि देशों ने इस पक्षपातपूर्ण सन्धि का विरोध किया । अमेरीकी सीनेट द्वारा अक्टूबर 1999 में इस सन्धि को अस्वीकार करने के पश्चात, CTBT के प्रति वैश्विक प्रयास क्षीण हो गए ।

उपर्युक्त प्रयासों के अतिरिक्त शस्त्र नियंत्रण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में जैविक शस्त्र समझौता (1972), यूरोप में सुरक्षा स्थापना के लिए हेलसिंकी सम्मेलन (1975), छः राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण सम्मेलन नई दिल्ली (1985) एवं मेक्सिको (1986), स्टॉकहोम घोषणा (1988), रसायनिक शस्त्रों की समाप्ति हेतु पेरिस सम्मेलन (1988), परम्परागत शस्त्र कटौती सन्धि (1990), बारूदी सुरंग प्रतिबंध संधि (1997) आदि रहे ।

11.6 शस्त्र नियंत्रण की कठिनाईयाँ

यद्यपि वैश्विक समुदाय यह स्वीकार करता है कि, शांति स्थापना के लिए शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण एक आवश्यक कदम है, एवं इस दिशा में उल्लिखित प्रयास भी किए गए, तथापि शस्त्र नियंत्रण आज भी वैश्विक सुरक्षा अवधारणाओं और चिंताओं के मध्य एक जटिल समस्या बना हुआ है । शस्त्रनियंत्रण की जटिलता के निम्न कारण दृष्टिगत होते हैं -

1. शस्त्रों पर आधारित राज्यों की सुरक्षा एवं उस पर बना रहने वाला निरन्तर विश्वास,
2. शक्ति के अनुपात एवं उसके सापेक्ष समझौते की समस्या,
3. महाशक्तियों की शस्त्राभिमुख अर्थव्यवस्थाएं,
4. संकीर्ण राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता,

5. श्रेष्ठता की महत्वकांक्षा,
6. समझौते को लागू करने की समस्या,
7. अविश्वास की समस्या तथा
8. नई सुरक्षा चिंतायें जैसे आतंकवाद ।

11.7 भारत और शस्त्र नियंत्रण

भारत सदैव से अहिंसा एवं विश्वशांति का पक्षधर रहा है । विश्वशांति के लिए एवं तनाव को कम करने के लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति को स्वीकार किया । भारतीय विदेश नीति में शस्त्रनियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण सदैव केन्द्र में रही है । निशस्त्रीकरण के मूल्य हमारे स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में अर्तनिहित थे । भारत के संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में, गुटनिरपेक्ष देशों के समूह के माध्यम से एवं अनेक वैश्विक मंचों से निशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियंत्रण के लिए आवाज उठाता रहा है । अनेक वैश्विक मामलों में भारत की बढती भूमिका ने इसके शस्त्रनियंत्रण के प्रयास को और बल प्रदान किया । भारत के शस्त्रनियंत्रण के पक्ष में होने के आधार -

1. भारत सदैव अहिंसा एवं विश्वशांति का पक्षधर रहा है ।
2. भारत आक्रमण की नहीं, अपितु परस्पर विश्वास और सहयोग की नीति पर विश्वास करता है ।
3. गरीब देशों की सहायता का पक्षधर ।
4. भारत यह मानता है कि, शस्त्रीकरण युद्ध की सम्भावना एवं वैश्विक असमानता को बढ़ावा देता है ।
5. भारत यह मानता है कि, शस्त्र नियंत्रण आंतरिक विकास के लिए आवश्यक है । नेहरू जी ने एक साक्षात्कार में कहा था कि, शस्त्रीकरण पर हमारे संसाधन खर्च करने पर मुझे दुख होता है, जबकि सामाजिक-आर्थिक विकास के क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना शेष है । उन्होंने कहा कि, हमारी सामाजिक और आर्थिक स्थिति हमें निशस्त्रीकरण अपनाने को विवश करती है ।
6. भारत का मानना है कि, वैश्विक समस्याओं का हल हथियारों से नहीं, अपितु शांतिपूर्ण तरीके से बातचीत द्वारा हल हो सकते हैं ।

यद्यपि भारत सदैव से पूर्ण निशस्त्रीकरण का पक्षधर रहा है, किन्तु इसकी भू-राजनैतिक स्थितियों एवं इतिहास की विभिन्न घटनाओं ने एक न्यूनतम सुरक्षा बनाने की आवश्यकता पर विवश किया। बहुत सारे विद्वानों द्वारा इसके निशस्त्रीकरण की नीति की आलोचना की जाती है, किन्तु भारत की नीति सदैव निशस्त्रीकरण की रही है, वह भी पूर्ण निशस्त्रीकरण की, जो स्थायी शांति स्थापित कर सके । भारत ने परमाणु विस्फोट के बावजूद इसे पहले प्रयोग न करने की, तथा भविष्य में अन्य परीक्षण न करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की है । साथ ही साथ परमाणु आयुधों की सुरक्षा और इसके अप्रसार को भी सुनिश्चित किया है । भारत ने सदैव एक जिम्मेदार राष्ट्र के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह किया है । इसके इसी प्रतिबद्धता के कारण परमाणु आयुध होते हुए भी वैश्विक समुदाय इसकी निशस्त्रीकरण की

आस्था और इसकी चिंताओं को स्वीकार करता है । इस बढते हुए विश्वास का परिणाम भारत और अमेरीका की नागरिक नाभिकीय संधि (123 संधि) तथा इस पर परमाणु आपूर्तिकर्ता देशों तथा अन्य राष्ट्रों की स्वीकृति है ।

11.8 शस्त्र नियंत्रण एवं शांति

आज के वैश्विक परिवेश में शांति एक आदर्श मूलक और स्वप्नदर्शी अवधारणा नहीं रह गयी है, अपितु यह बदलते हुए सुरक्षा परिवेश में ज्यादा प्रासंगिक एवं यथार्थमूलक आवश्यकता बनती जा रही है (Peace Becomes Pragmatic Need) दो विश्वयुद्धों के विध्वंस एवं उनके शस्त्रीकरण ने पूरी मानव सभ्यता के अस्तित्व को खतरे में डाला । तथापि इसी का परिणाम है कि, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, शीत युद्ध के होते हुए भी, वैश्विक स्थायी शांति की दिशा में कई सार्थक प्रयास किए गए । शांति को प्राप्त करने की दिशा में अनेक सिद्धांत प्रतिपादित हुए, किन्तु भारतीय दर्शन में निहित अहिंसा का सिद्धांत, जिसके आधुनिक प्रवर्तक महात्मा गाँधी हैं, ने यह सिद्ध किया कि, शक्ति का आधार शस्त्र नहीं, अपितु नैतिक बल है एवं इसी आधार पर स्थायी शांति की परिकल्पना को साकार किया जा सकता है । अहिंसा सिद्धान्त यह बताता है कि, शस्त्र हिंसा को प्रतिबिंबित करता है, अतएव जब तक शस्त्र रहेंगे, हिंसा रहेगी, और हिंसा के होते हुए शांति की परिकल्पना बेमानी है । स्थायी और सकारात्मक शांति के लिए पूर्ण शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण, है, विशेष रूप से परमाणु हथियारों एवं व्यापक विनाशक हथियारों की ।

भारत सदैव इस दृष्टि का पक्षधर रहा है कि, पूर्ण शस्त्र नियंत्रण एवं समान वैश्विक व्यवस्था को बनाए बगैर विश्व शांति की स्थापना नहीं हो सकती । यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों बहुत से जटिल कारण होते हैं, तथापि हथियारों की होड़ भी एक महत्वपूर्ण कारक है । अद्यतन शस्त्रीकरण उसके प्रसार की संभावना ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के स्वरूप को बदल कर, मानवता के एक बड़े खतरे के रूप में प्रस्तुत किया है । विनाशक हथियारों के प्रसार, तथा अवांछित समूहों द्वारा इनके उपयोग की संभावना क्षेत्रीय तनाव का कारण बनती है, जैसे भारत में नक्सलवाद, कश्मीर में बढ़ता हुआ आतंकवाद इसके उद्धरण हैं ।

स्टॉकहोम अंतर्राष्ट्रीय शांति शोध संस्थान (SIPRI) के 2010 के इयर बुक के अनुसार 2009 का वैश्विक सैन्य खर्चा लगभग 1.531 मिलियन डालर रहा, जो कि विगत वर्ष (2009 से) की तुलना में 6 प्रतिशत की वृद्धि है तथा सन् 2000 से यह लगभग 49 प्रतिशत की वृद्धि है । यह आकड़ा विश्व, के सकल घरेलू उत्पाद का 2.7 प्रतिशत है । यह आकड़ा यह भी बताता है कि 15 राष्ट्र इस वैश्विक अनुपात का 82 प्रतिशत हिस्सा खर्च करते हैं, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका 46.5 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ प्रथम स्थान पर तथा 6.6 प्रतिशत हिस्सेदारी के साथ चीन द्वितीय स्थान पर है। G-20 के 16 देशों के सैन्य खर्चे लें वर्ष 2009 में बढ़ोतरी दर्ज की गयी । संयुक्त राष्ट्र का कुल बजट भी सम्पूर्ण वैश्विक सैन्य खर्चे का 1.8 प्रतिशत है । ये आकड़े यह बताते हैं कि, शस्त्रीकरण के लिए कुछ राष्ट्र ज्यादा जिम्मेदार हैं, और एक वैश्विक असंतुलन बना रहे हैं । वैश्विक प्राकृतिक और भौतिक संसाधनों का इस्तेमाल लोगों के

स्वास्थ्य, शिक्षा, बेरोजगारी, भूखमरी एवं अन्य मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के बजाय मानव विनाश के शस्त्रों के ऊपर हो रहा है जिस संसाधन का इस्तेमाल कर लोगों के जीवन स्तर को उंचा उठा कर, उन्हें खुशहाल बनाया जा सकता उनका प्रयोग एक असुरक्षा के माहौल को बनाने के लिए हो रहा है । इन संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल कर लोगो के जीवन से हिंसा, बीमारी, भुखमरी, और इनसे होने वाली समस्याओं को दूर कर एक शांतिमय और विश्व के स्वप्न को साकार कर सकते हैं ।

11.9 सारांश

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि, शस्त्रीकरण विश्व शांति के लिए एक बड़ा खतरा है । विश्व में स्थायी शांति और लोक कल्याण के निमित्त, शस्त्रनियंत्रण एवं, निशस्त्रीकरण आवश्यक है । शस्त्रीकरण पर होने वाले संसाधनों का प्रयोग, लोगों के जीवन के उन्नयन के लिए कर लोगों के जीवन से हिंसा एवं अशांति को दूर कर एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकते हैं ।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. शस्त्र नियंत्रण से आप क्या समझते हैं ? इसके कितने प्रकार हैं ?
2. प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात हुए शस्त्र नियंत्रण के प्रयास की विवेचना करें । क्यों यह द्वितीय विश्वयुद्ध रोकने में असफल रहा ?
3. शीत युद्ध काल में शस्त्र नियंत्रण के क्या प्रयास हुए ? ये प्रयास कितने सार्थक सिद्ध हुए ?
4. संयुक्त राष्ट्र संघ की शस्त्र नियंत्रण की दिशा में भूमिका पर प्रकाश डालें ।
5. शस्त्र नियंत्रण में भारत की भूमिका पर प्रकाश डालें ।
6. नाभिकीय निशस्त्रीकरण के वैश्विक प्रयासों का उल्लेख करें ।
7. शांति के लिए शस्त्र नियंत्रण एवं निशस्त्रीकरण आवश्यक है । एक निबन्ध लिखें ।

11.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंत, पुष्पेश एवं जैन, श्रीपाल, अंतर्राष्ट्रीय संबध, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2005
2. दाधीच, नरेश (सम्पादित), दुवर्डस् ए मोर पीसफुल वर्ल्ड : इन्टरनेशनल एण्ड इन्डियन परस्पेक्टिव, आलेख पब्लिशर्स, जयपुर, 2004
3. मिश्रा, ए.डी., एवं एस. नारायानासामी वर्ल्ड क्राईसिस एण्ड द गाँधीयन वे, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2009
4. क्लार्क, ग्रीनवाईल तथा सोन, लुईस बी., वर्ल्ड पीस थ्रू वर्ल्ड लॉ, केम्ब्रिज, मॉस 1962
5. रिचर्डस, जॉली (सम्पादित), डिसार्मामेन्ट एण्ड वर्ल्ड डेवलपमेन्ट, पर्गमोन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1978

6. कुमार, महेन्द्र, थ्योरिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1981
7. जैतली, अनाम, इन्टरनेशनल पोलिटिक्स : मेजर कन्टेम्पोररी ट्रेन्डस् एण्ड इशूज़, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1984

इकाई - 12

अहिंसक कार्य की पद्धतियाँ - I

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियां

12.2.1 औपचारिक वक्तव्य

12.2.2 विशाल श्रोता समूह के साथ संचार

12.2.3 समूह प्रतिवेदन

12.2.4 प्रतिकात्मक सार्वजनिक कार्य

12.2.5 व्यक्तिगत दबाव

12.2.6 नाटक और संगीत

12.2.7 जूलूस निकालना

12.2.8 मृतक सम्मान

12.2.9 सार्वजनिक सभाऐं

12.2.10 वापसी और त्याग

12.3 सारांश

12.4 अभ्यास प्रश्न

12.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों के बारे में जानकारी प्रदान करना हैं । अहिंसक प्रतिरोध की विविध प्रकार की पद्धतियों का अर्थ और साधन से पाठकों को जागरूक करना है ।

12.1 प्रस्तावना

अहिंसक प्रतिरोध और समझाने के प्रयास के वर्ग में बहुत सी पद्धतियां शामिल है जो मुख्यत: शांतिपूर्ण प्रतिरोध या समझाने के प्रयास के प्रयास प्रतिकात्मक रूप से करती हैं जो मौखिक अभिव्यक्ति से लेकर परेड, निगरानी, पिकेटिंग, प्रतिरोध की बैठकें, पोस्टर आदि तक विस्तृत हैं ।

इनका प्रयोग दिखाता हैं कि प्रतिकारी किसी के विरूद्ध है । उदाहरण के लिए पिकेटिंग जनसंख्यावृद्धि को रोकने के बाध्यकारी कानून के विरूद्ध प्रतिरोध को व्यक्त कर सकती हैं । अहिंसक प्रतिरोध सामाजिक और आर्थिक मामलों पर गहन व्यक्तिगत भावनाओं या नैतिक

निंदाओं को भी व्यक्त कर सकते हैं । उदाहरण के लिए हिरोशिमा दिवस पर अमेरिकी आणविक बमबारी के लिए दुःख व्यक्त करना रात्रि जागरण का उदाहरण है ।

यह कार्य मुख्यत: विरोधी को प्रभावित कर सकता हैं, मामले को उजागर कर उस पर लोगों का ध्यान आकर्षित करके ओर इसके द्वारा यह आशा की जाती हैं कि लोग उसका समर्थन करेंगे ओर इसके द्वारा विरोधी बदलाव स्वीकार करना मान सकता हैं, या उसे चेतावनी देकर भी बदलाव को स्वीकार करवाया जा सकता है । लोगों के साथ इरादतन संचार कर मुख्य रूप से विरोधी को बदलाव स्वीकार करने को सहमत किया जा सकेता है । इस क्रम में बढ़ते लोगों के ध्यान और समर्थन के द्वारा इच्छित बदलाव सम्भव हो सकते है या यह कार्य समूह को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है, इसके लिए वे हड़ताल या बहिष्कार का सहारा ले सकते हैं । अहिंसक प्रतिरोधक ओर समझाइए एक तीर्थ यात्रा के रूप में अन्य प्रकार की गतिविधियों के साथ संबंधित हो सकती हैं । जैसे- अकाल पीडितों के लिए धन का संग्रह करने जैसी गतिविधियां । इस वर्ग के कुछ निश्चित सौम्य तरीके कुछ लोगों के द्वारा मजबूत कार्यवाही उत्पन्न करवा सकते है ।

संक्षेप में पद्धतियों के इस वर्ग के संदर्भ में कुछ दबाव किसी के पक्ष में हो सकते है ओर किसी के विरूद्ध हो सकते हैं, शिकायते भी विविध हो सकती हैं, कार्य में सलंग्न समूह भी अलग-अलग हो सकते हैं, प्रभाव के प्रकार भी अलग हो सकते हैं, इरादतन परिणाम की सीमा भी व्यापक हो सकती है, यह कार्य स्वतंत्र भी हो सकता है या निकट रूप से अन्य अहिंसक कार्यवाहियों की पद्धतियों के साथ समिश्रित भी हो सकता हैं । ऐसे प्रदर्शनों का व्यवहार स्पष्ट रूप से मतों के व्यक्तिगत मौखिक अभिव्यक्तियों से परे होते हैं । अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों का प्रभाव बहुत महत्वपूर्ण होता है । यह भी सम्भावना हैं कि एक विशेष पद्धति साझा हो सकती हैं ओर उसके प्रभाव अब पहले की तुलना में कम भी हो सकते हैं । जिन राजनैतिक परिस्थितियों में वे प्रकट होती है उनमें उनका प्रभाव सम्भवतया ही होता हैं । तानाशाही परिस्थितियों में किया गया अहिंसक प्रतिरोध का प्रभाव तुलनात्मक रूप से बहुत कम होता हैं ओर यह खतरनाक ओर दुर्लब होता हैं, हालांकि यह नाटकीय रूप में प्रकट हो तो ज्यादा ध्यान आकर्षित कर सकता हैं । प्रतिरोध का प्रदर्शन असहयोग या अहिंसक हस्तक्षेप के कार्यो को बढ़ावा दे सकते हैं ।

12.2 अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियां

जॉन वी.बोंदूरा ने अपनी पुस्तक प्रोटेस्ट एण्ड प्रसूएशन में अहिंसक प्रतिरोध और अन्जुमय के चौवन तरीके बताये है जो इस प्रकार है-

12.2.1 औपचारिक वक्तव्य

सामान्यतया लिखित और मौखिक होता है चाहे वे एक व्यक्ति, समूह या संस्था के द्वारा दिये गये हों । वे साधारणतया मत, विमत या इरादे की मौखिक अभिव्यक्ति होते है न कि अहिंसक प्रतिरोध या समझाने के तरीके । हालांकि कुछ निश्चित परिस्थतियों में दिये गये ऐसे वक्तव्य जो सामान्य प्रभावों की तुलना में ज्यादा प्रभावकारी होते है, चाहे वे राजनीतिक

परिस्थितियों में दिये गये वक्तव्य हो या ना हों, उनको अहिंसक प्रतिरोध के रूप में माना जाता हैं । ऐसे वक्तव्य मुख्य रूप से किसी मामलें, व्यवस्था, नीति या शासन के पक्ष में या विपक्ष में हो सकते है । इनमें वक्तव्यों के कई रूप शामिल हैं और इनके आधार पर हम छः विशेष पद्धतियों में भेद कर सकते है, जो इस प्रकार है-

12.2.1.1 सार्वजनिक भाषण- कुछ सार्वजनिक भाषण अहिंसक प्रतिरोध के महत्वपूर्ण तरीके बन जाते हैं वे कुछ अप्रत्याशित स्थितियों में एकाएक उत्तेजना भर सकते है । वे औपचारिक भाषण हो सकते है या वे धार्मिक सेवाओं के दौरान दिये गये उपदेश हो सकते है । उदाहरण के लिए 1934 में हिटलर ने चांसलर के पद पर रहते हुए गठबंधन सरकार में अल्पसंख्यक होते हुए भी ऐसा भाषण दिया ।

12.2.1.2 विरोध या समर्थन के शब्द- इस वर्ग की पद्धति के रूप में शब्द कई रूप ले सकते है । इनमें मुख्य रूप से निजी शब्द शामिल होते है जो एक व्यक्ति या निकाय को एक विशेष राजनैतिक दृष्टिकोण या इरादों की घोषणा के बारे में बताने या समझाने के लिए कहे जाते हैं । यह शब्द व्यक्तिगत रूप में या समूह के रूप में हो सकते हैं । इन्हें सार्वजनिक भी किया जा सकता है, जो मुख्य रूप से आम जनता को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले होते हैं ।

12.2.1.3 संगठनों और संस्थाओं द्वारा घोषणाएं- ऐसी घोषणाओं का एक रूप ग्वालगीत शब्दों और समान चर्च के पदाधिकारियों के वक्तव्यों के रूप में होते हैं । द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान फ्रांस में, अगस्त और सितम्बर 1942 में यहूदियों के वापसी के विरोध में विरोधी घोषणाएं हुई जिन्हें चर्च के पादरियों द्वारा पढ़ा गया था ।

12.2.1.4 महत्वपूर्ण सार्वजनिक वक्तव्य- एक घोषणा जो मुख्य रूप से आम जनता को निर्देशित होती है या सार्वजनिक और विरोधी दोनों को, और समर्थकों के हस्ताक्षरों के साथ जारी होती हैं । यह अहिंसक प्रतिरोध की एक पद्धति हैं । यह हस्ताक्षर विशेष संगठन, व्यवसायों या आजिविकाओं से जुडे लोगों के हो सकते हैं या समाज के विविध भागों के लोगों के हो सकते हैं।

12.2.1.5 अभियोग पत्र एवं इरादों की घोषणाएं- शिकायत के निश्चित लिखित अभिकथनों या नई स्थिति उत्पन्न करने के भावी इरादों या दोनों का समिश्रण ऐसी योग्यता दिखाता है या ऐसी प्रतिक्रिया कों पूरा करता है जो लोगों की निष्ठाओं और व्यवहार को प्रभावित करने वाला प्रभावकारी तत्व बन जाता हैं । ऐसी एक घोषणा अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा थी जो 4 जुलाई 1776 में कांग्रेस द्वारा स्वीकार की गई थी ।

12.2.1.6 समूह या जनयाचिकाएं- समूह या जनयाचिकाएं जनता की एक विशेष शिकायत का निपटारा चाहने हेतु लिखित रूप में प्रार्थना होती है जो बडी संख्या में लोगों द्वारा हस्ताक्षरित होती है या संगठनों संस्थाओं या निर्वाचन क्षेत्रों के विश्वास पर काम करने वाले थोडे से लोगों की से हस्ताक्षर कर दायर की जाती है या इस तरह की याचिकाओं के उदाहरण सर्वप्रथम रोमन साम्राज्य में देखने को मिलते हैं ।

12.3.2 विशाल श्रोता समूह के साथ संचार

इस समूह की कई पद्धतियां विशाल जनसमूह को विचारों और दृष्टिकोणों अवगत कराने और उनकी सूचना देने के लिए निर्मित की गई है । इसका उद्देश्य विरोधी समूह को प्रभावित, सहानुभूति ग्रहण करना और तृतीय पक्ष से समर्थन हासिल करना या लाभों का रूपांतरण करना हो सकता है । इसमें शामिल छः दृश्य और मौखिक रूप की पद्धतियां इस प्रकार हैं-

12.3.2.1 नारे, प्रतीक और व्यंग्यचित्र- नारेबाजी, व्यंग्यचित्र और प्रतीक अहिंसक प्रतिरोध के बहुत आम रूपों में से है, वे लिखित, चित्रित, मुद्रित, भाव-भंगिमा या मौखिक हो सकते हैं । 1941 की गर्मी से लेकर मई 1942 तक बर्लीन में यहूदी युवाओं के समूह ने बिना किसी गिरफ्तारी के इस तरह की गतिविधियों को जारी रखा ।

12.3.2.2 बैनर्स, पोस्टर्स और डिस्प्ले संचार- बेनर्स, पोस्टर्स और डिस्प्ले जैसे संचार के साधन लिखित मुद्रित या चित्रित जैसे साधनों के समान ही होते है लेकिन इनकी श्रेणियों में व्यापक विविधता होती हैं । 4 दिसम्बर 1916 को राष्ट्रपति विल्सन द्वारा कांग्रेस के सम्बोधन के दौरान एक महिला मताधिकार संगठन की पाँच महिलाओं ने पीले रंग का बैनर गैलेरी में खड़े होकर कांग्रेस प्रतिनिधियों को दिखाया और कहा कि मिस्टर प्रेसिडेंट आप महिला मताधिकार के लिए क्या करेंगे?

12.3.2.3 पैम्फलेट, किताबें और इश्तहार- इश्तहारों, पैम्फलेटों या किताबों का प्रकाशन और वितरण के द्वारा एक विशेष या आम नीतियों या एक शासन व्यवरथा के विरूद्ध अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए अहिंसक कार्यवाही की एक मुख्य पद्धति बन गया हैं । इश्तहारों का वितरण विमत समूह के द्वारा संचार हेतु सबसे ज्यादा आम पद्धति के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाला तरीका हैं । अमेरिका की आजादी की घोषणा के समारोह के दौरान महिला मताधिकार समूह के द्वारा इस तरह के इश्तहार वितरित किये गये थे । गाँधी ने भी इन पर बहुत बल दिया ।

12.3.2.4 समाचार पत्र और जर्नलस- समाचार पत्रों और जर्नलस, कानूनी और गैरकानूनी दोनों सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के सम्पूर्ण इतिहास में नियमित रूप से प्रकट हुए हैं । प्रकाशकों के कार्यो और मतों को बढ़ावा देने के रूप में, 19वीं और 20वी सदी के आरम्भ में रूसी क्रांतिकारी आंदोलन में अवैध समाचार पत्रों और जर्नलस के प्रकाशन और वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । गाँधी ने भी दक्षिण अफ्रकिा मे सत्याग्रह को बढ़ावा देने के लिए इण्डियन ओपिनियन और बाद में भारत में आकर यंग इण्डिया नामक समाचार पत्र शुरू किया ।

12.3.2.5 प्रलेखों, रेडियो और दूरदर्शन- कुछ विशेष परिरिथतियो में रेडियों टेलिविजन और अभिलेख और समझाने के महत्वपूर्ण साधन बन जाते हैं । फोनोग्राफ द्वारा की गई रिकॉर्डिंग संगीत, भाषण या घोषणाओं के द्वारा विचारों को आम जनता तक पहुँचाने और समझाने का महत्वपूर्ण साधन बन जाता हैं । 1960 के दशक में अमेरिका में रॉक म्यूजिक ने विमति और असंतुष्टि के बारे में जागरूकता को बढ़ाया ।

12.3.2.6 आकाश और भूतल पर लेख- यह शब्दों या प्रतीकों के द्वारा सुदूर लोगों को असाधारण माध्यम से विचारों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते हैं । स्काइ राइटिंग 15

अक्टूबर 1969 में हवाई जहाज के द्वारा प्रयुक्त किया गया था । वियतनाम युद्ध के विरूद्ध निकाली गई रैली के ऊपर आकाश से आण्विक निशस्त्रीकरण के प्रतीक गिराये गये थे जो कि बाद में बोस्टन में आम घटना बन गई थी ।

12.3.3 समूह प्रतिवेदन

समूह के द्वारा कुछ नीतियों के विरूद्ध या उसके पक्ष में प्रतिवेदन दिया जा सकता हैं, विविध रूपो में। इस श्रेणी की अहिंसक प्रतिरोध की पद्धतियों में शामिल तरीके इस प्रकार हैं-

12.3.31. प्रतिनिधिमण्डल- एक संगठन या नागरिकों के द्वारा अपनी विशेष शिकायत दर्ज कराने के लिए कुछ चुनिंदा लोगों या प्रतिनिधियों के द्वारा अपना विरोध अभिव्यक्त किया जा सकता हैं । कई अवसरों पर नये मापदण्ड अपनाने या नई नीतियों का अनुसरण करवाने के लिए प्रतिनिधि मण्डल भेजे जा सकते हैं । भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उदारवादियों ने पद्धति के इस रूप का बार-बार अनुसरण किया था ।

12.3.3.2 छदम् पुरस्कार- उपहासात्मक पुरस्कार विरोधियों की शिकायतों को सार्वजनिक करने के क्रम में दिये जा सकते हैं और ये उपहार प्राप्तकर्ता से अपील करते है कि वह शिकायतों को ठीक करे । उदाहरण के लिए नवम्बर 1969 में अमेरिका के मैसाचूसेटस में आद्योगिक प्रदूषण पर सुनवाई के समय बोस्टन ऐडिशन कम्पनी को पोल्यूटर ऑफ द मन्थ का सम्मान दिया गया।

12.3.3.3 समूहलॉबिग- लॉबिग संसदीय प्रतिनिधि से व्यक्तिगत मुलाकात कर संसद और विधानसभा में मतों को प्रभावित करने का प्रयास से किया जाता हैं । सामान्यत: यह मत का मौखिक अभिव्यक्ति होती है जब एक समूह के द्वारा कार्यवाही यह प्रकिया की जाती है । यह अहिंसक कार्यवाही का एक रूप बन जाता है, और जब लोगों का एक बड़ा समूह लॉबिग के क्रम में एकत्रित होते है तो एक प्रदर्शन का रूप ले लेता हैं । यह पद्धति अमेरिका में सबसे अधिक प्रचलित है।

12.3.3.4 पिकेटिंग- यह दूसरों को एक विशेष कार्य करने या न करने को समझाने का तरीका है, या यह एक पद्धति है जिसके द्वारा एक प्रश्न में अंतर्निहित मामले के संदर्भ में व्यक्ति भौतिक रूप से एक स्थान विशेष पर एकत्रित होते है । यह खड़े रहकर, बैठकर या आगे-पीछे चल कर संचालित हो सकती हैं । इसमें दूसरे लोगों के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पिकेटर बातचीत कर सकते है या नहीं भी कर सकते हैं ।

12.3.3.5 छदम्-चुनाव- यह समूह प्रतिवेदन का आखिरी पद्धति है इसमें विरोधी समूह प्रतिरोध के एक साधन के रूप में संबंधित शिकायत या मामले पर प्रत्यक्ष या कानूनोत्तर चुनाव करवाते है, इसमे घर-घर जाकर लोगों को मत डालने के लिए प्रेरित किया जाता है और एक विशेष प्रकार की पोलिंग होती हैं । इस पद्धति का प्रयोग बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक दोनों के द्वारा ही किया जा सकता है । विशेषकर के जब उन्हें नियमित संवैधानिक निर्वाचन तंत्र में भाग लेने से रोक दिया जाए।

12.2.4 प्रतीकात्मक सार्वजनिक कार्य

इस पद्धति के तहत अहिंसक तरीके से लोग अपने मतों या शिकायतों को अभिव्यक्त करते हैं, जिसमें बहुत सारी कार्यवाहियां शामिल है, जो इस प्रकार है-

12.2.4.1 ध्वजों व प्रतीकात्मक रंगो का प्रदर्शन- एक राष्ट्रीय, धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक समूह के ध्वज का प्रदर्शन, या एक समूह के रंगो का प्रदर्शन या ध्वज और रंग के साथ अन्य प्रतीकों का प्रयोग अहिंसक प्रतिरोध का एक आम तरीका है । इस तरह के प्रदर्शन से लोगों की आंतरिक भावनाएं प्रेरित होती हैं । भारत में 26 जनवरी 1930 को जब पहला स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया बडी संख्या में राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान में प्रदर्शन और समारोह आयोजित किये गये ।

12.2.4.2 प्रतीकों का धारण करना या पहनना- यह किसी राजनीतिक विरोध को व्यक्तियों द्वारा कपड़े, रंग, बिल्ला, फूल या इसी तरह की अन्य वस्तु को धारण कर अभिव्यक्त किया जाता है उदाहरण के लिए 1972 की शरद ऋतु के दौरान आजादी की लाल टोपी सेंसकुलोर्ट्स के बीच फैशन बन गया था । इसी प्रकार भारत में कांग्रेस विचारधारा के समर्थक गाँधी टोपी को धारण करते हैं ।

12.2.4.3 प्रार्थना और पूजा- प्रार्थना और पूजा इस लिए आयोजित की जाती है ताकि सहभागियों के द्वारा नैतिक निंदा और राजनीतिक प्रतिरोध को धार्मिक तरीके से अभिव्यक्त किया जा सकें । यह प्रार्थना या पूजा सेवा के तत्वों के द्वारा स्पष्ट रूप से किया जाता है, जिस स्थान पर प्रार्थना की जाती है।, या जिस दिन की जाती है वह तात्कालिक परिस्थितियां पर निर्भर करता हैं ।

12.2.4.4 प्रतीकात्मक वस्तुएं प्रदान करना- ऐसा कार्य एक वस्तु को प्रदान कर शिकायत के रूप में या सरकार और सरकार से जुड़े मामलों के उद्देश्यों को विरोधियों के द्वारा प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त किया जाता हैं । सोवियत आणविक शस्त्रों के परिक्षण के विरूद्ध अक्टूबर 1961 में लंदन में 1000 समर्थकों की समिति के द्वारा दूध की हजारों बोतलों पर डेंजर-रेडियों एक्टिव का लेबल लगाकर विरोध जताया ।

12.2.4.5 कपड़े उतार कर प्रतिरोध करना- कपड़े उतारकर किसी राजनीतिक या धार्मिक मामले के संबंध में अपना मत या विमति को अभिव्यक्त करने का तरीका पुराना है । यह अहिंसक प्रतिरोध का एक तरीका है जिसका प्रयोग अहिंसक कार्यवाही समर्थक लोगों ने कई बार किया । संयुक्त राज्य अमेरिका में युद्ध विरोध और सामाजिक प्रतिरोध आंदोलन के समर्थक युवाओं ने हाल के वर्षो में इस पद्धति का बहुत अनुसरण किया ।

12.2.4.6 निजी सम्पति का विनाश- यह अहिंसक प्रतिरोध का एक असाधारण तरीका हैं जिसमें विरोध के प्रति अपनी भावना का प्रदर्शन करने के कम में स्वैच्छिक रूप से व्यक्ति अपनी निजी सम्पति का विनाश करते है । जहां कहीं विनाश का कार्य सभी लोगों के लिए खतरनाक रूप धारण करता है तो वहां से लोगों को सुरक्षित रूप से हटा दिया जाता है ताकि किसी को शारीरिक रूप से नुकसान न पहुँचे । जुलाई 1770 में न्यूयॉर्क के व्यापारियों ने ब्रिटिश उपनिवेश

की ब्रिटिश वस्तुओं के गैर आयात की आम नीति के विरोध में इस पद्धति का अनुसरण किया था ।

12.2.4.7 प्रतीकात्मक प्रकाश- टॉर्च और मोमबत्तियां प्राय: परेड के दौरान प्रतिरोध करने में प्रयुक्त की जाती है और कभी-कभी इनका प्रयोग प्रतिरोध गतिविधियों के अन्य प्रकारों में भी प्रयोग किया जाता हैं । 19 जनवरी 1969 को सोवियत आक्रमण के विरोध में जान पलाच ने विरोध करते हुए अपने आपको जलाया लिया था ।

12.2.4.8 कलाकृतियों का प्रदर्शन- इस प्रतिरोध की पद्धति में प्रतिरोध करने वाले नेताओं या लोगों की तस्वीरों का प्रदर्शन किया जाता है ताकि दूसरे लोगों की राजनीतिक निष्ठाओं का प्रयोग एक साधन के रूप में आंदोलन के उद्देश्यों और प्रतीकों को दूसरे लोगों को समझाया जा सकें । 1930-31 में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान लोगों ने घरों और दुकानों पर गाँधी और नेहरू के चित्रों का प्रदर्शन किया ।

12.2.4.9 प्रतिरोध के. रूप में चित्रकारी- कभी-कभी चित्रकारी को प्रतिरोध के साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता हैं । पूर्वी जर्मनी में इस पद्धति का बहुत प्रयोग हुआ । इसमें व्यक्ति अपने शरीर के किसी अंग पर चित्रकारी करवाकर दूसरे लोगों का अपनी ओर ध्यान आकृषित करते है।

12.2.4.10 नये नाम और प्रतीक- विरोध प्रदर्शन के तरीके कभी पुराने सडकों व गलियों, स्थानों आदि के नाम बदलने तथा उनके नये नाम रखने के लिए किए जाते हैं ।

12.2.4.11 प्रतीकात्मक आवाजें- मौखिक या यांत्रिक आवाजें भी संघर्ष की स्थिति में विचारों को समझाने में प्रयुक्त की जाती हैं । प्राचीनकाल से ही घंटियां नगाडे बजाकर इस तरीके को काम में लिया जाता रहा हैं ।

12.2.4.12 कठोर भाव-भंगिमा- कठोर भाव-भंगिमा और व्यवहार के कई तरीके उपलब्ध है जिनके द्वारा दूसरों की बेइज्जती की जाती है । यह कभी-कभी राजनीतिक दशाओं में और यहां तक की अंतर्राट्रीय संघर्षों की स्थितियों में भी प्रयुक्त किए जाते हैं । इसका एक उदाहरण जनवरी 1967 में रूस चीन संघर्षों के दौरान देखने को मिलता हैं ।

12.2.4.13 प्रतीकात्मक भूमि- कुछ विशेष प्रकार के प्रतिरोध एक भू-भाग के स्वामित्व या उसके उपयोग के मामले में विवाद को समाप्त करने के लिए इस पद्धति को काम में लेते है जिसमें उस भू-भाग पर बीज रोपण किया जाता है, पेड पौधे लगाये जाते है, बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया जाता है, इमारतों का निर्माण किया जाता हैं ।

12.2.5 व्यक्तियों पर दबाव

विरोधी समूह के व्यक्तिगत सदस्यों पर दबाव डालने का प्रयास कई पद्धतियों में किया जाता हैं, चाहे वे सरकारी अधिकारी हो या सामान्य सेवक । यह उपाय प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति विशेष या लोगों के समूह के विरूद्ध हो सकते हैं या व्यक्तियों पर दबाव के रूप में प्रयुक्त हो सकते है जो कि बड़े निकाय का एक भाग होते है, जैसे सेना के लोग । इसमें शामिल कार्यवाहियां इस प्रकार हैं-

12.2.5.1 सरकारी अधिकारियों को तंग करना- सरकारी अधिकारियों को उनके अनैतिक व्यवहार के बारे में स्मरण कराने हेतु अहिंसक प्रतिरोध के आंदोलन के साधन के रूप में सरकारी अधिकारियों को तंग करना शामिल होता हैं । इसका अनुसरण करने वाले लोग दृढ़ निश्चय और निर्भीक होते है जो स्वैच्छिक रूप से सरकारी अधिकारियों को उनके अनैतिक कार्यो को रोकने का दबाव बनाते है । भारत में 1928 के बारदोली सत्याग्रह के दौरान इस कार्यवाही का प्रयोग किया गया था ।

12.2.5.2 सरकारी अधिकारियों पर टिप्पणियां करना- इस कार्यवाही के तहत मौन रूप से या गरिमामय व्यवहार का बिना ध्यान रखे लोगों के द्वारा सरकारी अधिकारियों की छदम् रूप से या प्रकट रूप से बेईज्जती की जाती है ताकि वे समाज विरोधी अनैतिक कार्यो को करने से बाज आये । 1942 की गर्मियों में हनोन चीन में इस पद्धति का प्रयोग किया गया था ।

12.2.5.3 भ्रातृत्वीकरण- सैनिकों या पुलिस का सामाजिक बहिष्कार के विकल्प के रूप में उनके साथ (विरोधी) भ्रातृत्व भाव को बढ़ावा देने की प्रक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लोगों पर गहरा प्रभाव छोडती है । इसमें प्रतिरोधक सैनिकों के साथ व्यक्तिगत मित्रता करते हैं, उनको यह बताते है कि शासक के उद्देश्य सद्भावनापूर्ण नहीं है, सैनिकों को समझाते है कि इससे समाज के उद्देश्य प्रभावित नहीं होंगे और जनता के लिए शासन की नीतियों के बारे में जानकारी देते हैं । 1956 की हंगेरियन क्रांति सर्वोत्तम उदाहरण हैं ।

12.2.5.4 रात्रि जागरण- सामान्य रूप से न केवल एक या कुछ लोगों को सम्बोधित होता बल्कि यह कई लोगों से अपील करता हैं । धरने के समान रात्रि जागरण में लोग एक स्थान विशेष पर बने रहते हैं और अपने मत को अभिव्यक्त करने का साधन बनता हैं । जहां धरना एक लम्बे समय के लिए - हैं जबकि रात्रि जागरण अल्प समय या कुछ घंटों के लिए होता हैं । 1917 में नीदरलैण्ड की महिलाओं ने उस बिल्डिंग के बाहर धरना दिया जहां उस देश के संविधान का प्रारूप तैयार हो रहा था, जिसमें उन्होंने महिला मताधिकार का उपबंध करने की मांगे की थी ।

12.2.6 नाटक और संगीत

अहिंसक प्रतिरोध और समझाइए की कार्यवाही में नाटक और संगीत की पद्धति का भी प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रयुक्त संभव पद्धतियां इस प्रकार हैं-

12.26.1 हास्यकार व्यंग्य एवं झलकियाँ- राजनैतिक हास्य अहिंसक कार्यवाही की एक पद्धति हो सकती है जब इसमें कुछ सामाजिक रूपों को अभिव्यक्त किया जाता है जैस एक हास्यकार व्यंग्य या झलकियाँ या एक राजनीतिक हास्य खेला जाता है । ऐसे मामलों में हास्य साधारण रूप मौखिक राजनीतिक विमति तथा सार्वजनिक राजनीतिक प्रतिरोध की कार्यवाही बन सकती हैं । इसका कोई प्रलेख प्राप्त करना असम्भव है लेकिन शांति संधि से पहले ऑस्ट्रिया में इस तरह की कहानियां सुनने को मिलती है ।

12.2.6.2 नाटकों और संगीत का आयोजन- कुछ राजनीतिक दशाओं के तहत, नाटकों के आयोजन के तहत और अन्य संगीत कार्यक्रमों के आयोजन के द्वारा अहिंसक राजनीतिक किया

जा सकता हैं । जनवरी 1923 में फांस और ब्राजील के अधिग्रहण के विरूद्ध रूर-केम्प की आरम्भिक अवस्थाओं में इस तरह के आयोजन किये गये थे ।

12.2.6.3 गायन- कुछ उपयुक्त दशाओं में गायन भी अहिंसक प्रतिरोध की पद्धति सकता हैं । उदाहरण के लिए अवांछित भाषण के समय गायन प्रस्तुत कर, राष्ट्रीय या धार्मिक गानों या मंत्रों के गायन के द्वारा विरोध की और से एक संगठित बहिष्कार कर विरोधी नीतियों को बदलने का दबाव जा सकता हैं । भारत में 1905 के बंग-भंग आंदोलन के दौरान इस कार्यवाही का प्रयोग अंग्रेजों के किया गया था ।

12.2.7 जूलूस निकालना

यह अहिंसक प्रतिरोध की सबसे जानी पहचानी पद्धतियों में से एक हैं जैसे लोगों पैदल यात्राएं करना । इसमें आम तौर पर शामिल तरीके इस प्रकार हैं-

12.2.7.1 पैदल यात्रा- पैदल यात्रा अहिंसक प्रतिरोध और समझाइए के तरीके के रूप में तब प्रयुक्त की जाती है । जब लोगों का एक समूह संगठित रूप से एक स्थान विशेष की ओर पैदल करता है, जो मूल रूप से किसी मुद्दे विशेष से संबंधित होता हैं । पैदल मार्च का समय एक घंटा या दो घंटे कई सप्ताह या उससे भी ज्यादा लम्बा हो सकता हैं । इसमें यात्रा करने वाले लोग पोस्टर्स और बैनर्स साथ लें जा भी सकते है । 1930 में गाँधी जी ने नमक आंदोलन के दौरान दाण्डी मार्च का आयोजन कर इस पद्धति बारे में सम्पूर्ण दुनिया को इसका महत्व सिद्ध कर बताया ।

12.2.7.2 प्रदर्शन या जुलूस- इसमें लोगों का एक समूह एकमत या शिकायत के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षण करने के लिए संगठित रूप से पैदल प्रदर्शन या जुलूस निकालते हुए विरोध प्रदर्शन करते हैं । यह पैदल मार्च से भिन्न होता है । 1913 में वाशिंगटन डीसी में नेशनल अमेरिकन विमेन सफरेज के द्वारा महिला मताधिकार के लिए पहली बार परेड का आयोजन किया था, जिसमें 8-10 हजार सहभागियों ने भाग लिया था, जिसमें कई सिनेटरों की पत्नियां भी शामिल थी ।

12.2.7.3 एक धार्मिक जुलूस भी पैदल यात्रा या प्रदर्शन के रूप में अहिंसक प्रतिरोध की पद्धति के रूप में ही प्रयुक्त होता है लेकिन इसमें कुछ निश्चित धार्मिक विशेषताऐं होती है जो जुलूस में शामिल लोगों द्वारा गाये जाने वाले धार्मिक गानों, प्रतीकों, तस्वीरों तथा साधु संतों की महत्वपूर्ण सहभागिता के द्वारा प्रकट होता हैं । इस तरह के जुलूसों का अन्य जुलूसों की तुलना में ज्यादा गहरा व भावनात्मक प्रभाव होता हैं । बालगंगाधर तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणपति उत्सव के आयोजन में इसी तरह की कार्यवाही का प्रयोग किया किया था ।

12.2.7.4 तीर्थ यात्राऐं- यह नैतिक निंदा का एक रूप है जिसमें गहरी नैतिक और धार्मिक विशेषता शामिल होती है, इसमें एक या एक से ज्यादा व्यक्ति लोगों के लिए संदेश पहुँचाते हैं और सरकार या लोगों द्वारा अपनाई गई नीतियों से होने वाले दुःखों को बतलाते हैं । ऐसी यात्राऐं सामान्य तौर पर कई दिनों तक और कभी-कभी कहीं महिनों तक चलती हैं । इनमें प्राय:

बैनर्स और पोस्टर्स का प्रयोग नहीं किया जाता हैं, हालांकि पैम्फलेट बांटे जाते हैं । गाँधी जी ने 1946 में बंगाल के नोआखाली सामप्रदायिक दंगों में इस पद्धति का प्रयोग किया था ।

12.2.7.5 मोटर गाड़ियों का जुलूस- यह तरीका पश्चिम में प्रचलित है, इसमें पैदल यात्रा के बजाय धीमी गति से मोटर गाड़ियां चलाई जाती हैं और मोटर गाडियों पर सवार लोगों के हाथों में पोस्टर्स और बैनर्स होते हैं जिसके द्वारा विरोधी मुद्दों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया जाता हैं ।

12.2.8 मृतक सम्मान

अहिंसक प्रतिरोध की कई पद्धतियों में जीवन लीला समाप्त कर चुके व्यक्तियों की स्मृति के सम्मान में कई कार्यवाहियां शामिल होती हैं । इसमें संघर्ष में शामिल लोगों की यादगार में कई कार्यक्रम आयोजित किए जाते है, जिनमें शामिल है-

12.2.8.1 राजनीतिक शोक मनाना- इस तरह के प्रतीक विशेष राजनीतिक घटनाओं और नीतियों के प्रति राजनीतिक विरोध और खेद प्रकट करने के लिए प्राय: एक व्यक्ति की मृत्यु के शोक के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं । 1765 के स्टाम्प एक्ट के विरूद्ध अमेरिकी लोगों के संघर्ष के दौरान राजनीतिक शोक सभाओं के आयोजन का महत्व प्रकट हुआ ।

12.2.8.2 छदम् दाह-संस्कार- राजनीतिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए दाह-संस्कार के रूप का भी प्रयोग किया जाता हैं । इसमें सरकार की विरोधी नीतियों का प्रतिरोध या अवज्ञा करने के लिए छदम् दाह-संर२कार का कार्यक्रम का आयोजन किया जाता हैं जिसमें शामिल सभी सहभागी सरकार से अन्यायपूर्ण नीतियों को ठीक करने और जनता का उस ओर ध्यान आकर्षण करने का प्रयास किया जाता हैं ।

12.2.8.3 प्रदर्शनात्मक दाह-संस्कार- इसमें विशेष राजनीतिक तनाव, यादगार सेवाओं के क्रम में संघर्ष के दौरान मृतक व्यक्तियों का दाह-सरकार जुलूस का आयोजन किया जाता हैं और विरोधी के प्रति प्रतिरोध तथा नैतिक निंदा का प्रदर्शन किया जाता हैं । इसमें जरूरी नहीं हैं कि मृतक व्यक्ति कोई नेता हों बल्कि संघर्ष के दौरान मारे गये आम आदमी को भी इस तरह की कार्यवाही के लिए मुद्दा बनाया जा सकता हैं । इस तरह की कार्यवाही के उदाहरण अमेरिकी ओपनिवेशिक प्रतिरोध की कार्यवाहियों के दौरान देखने को मिलते हैं ।

12.2.8.4 कब्रगाहों पर श्रद्धांजलि- इस कार्यवाही के तहत संबंधित व्यक्ति की कब्र पर जाकर श्रद्धांजलि दी जाती हैं, इसमें बहुत सारे लोग शामिल होते हैं और इस दौरान जिन कार्यो लिए वह व्यक्ति जीवन भर प्रयासरत रहा उनको याद किया जाता है और उनके बारे में जनता को बताया हैं । आज भी 30 जनवरी को गाँधी जी की पुण्यतिथी को शहीद दिवस के रूप में मनाया जाता हैं और इसी तरह अन्य लोगों की पुण्य तिथियों को भी उनके योगदान के लिए स्मरण किया जाता है ।

12.2.9 सार्वजनिक सभाऐं

जब लोग अपने दृष्टिकोणों को विशाल जनसमूह को बताने या विरोधी को बताने के लिए एक स्थान पर एकत्रित हो अपना मत अभिव्यक्त करते है तो उसमें कई रूपों का सहारा लेते, जो इस प्रकार हैं-

12.2.9.1 विरोध या समर्थन में सभाऐं- विरोधी के कार्यो या नीतियों का विरोध या समर्थन करने के लिए लोग एक सार्वजनिक सभा का आयोजन करते हैं और उस सभा के समक्ष संबंधित मामले के बिंदुओं को रखते है और उन बिंदुओं के पक्ष या विपक्ष में जनता के दृष्टिकोण का निर्माण करते है यह जनता के मत निर्माण का सबसे प्रचलित तरीका रहा । गाँधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इस की गतिविधियों का अत्याधिक प्रयोग किया ।

12.2.9.2 विरोध बैठकें- इस तरह की बैठकें स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा आयोजित की जाती हैं जिसमें बहुत से लोग भाग लेते है, जिनमें विरोधी की नीतियों और उनके उद्देश्यों को जन समूह के समक्ष रखा जाता है और उनके प्रति उनके दृष्टिकोण या समर्थन का निर्माण किया जाता है ।

12.2.9.3 विरोध की छदमावरण बैठकें- कुछ राजनीतिक दशाओं के तहत कभी-कभी विरोध की इरादतन बैठकें आयोजित की जाती हैं, जो ज्यादा कानूनी और अनुमोदित उद्देश्यों के लिए होती हैं । इस तरह की बैठकें तानाशाही शासन के विरूद्ध ज्यादा होती हैं ।

12.2.9.4 शिक्षण- प्रतिरोध के इस अहिंसक तरीके में एक मुद्दे विशेष पर विचारणीय बहस होती हैं । यह सार्वजनिक प्रतिरोध की बैठक से भिन्न होता है क्योंकि वहां लम्बे भाषण दिये जाते, जबकि शिक्षण में लोगों को मुद्दे के प्रति जानकारी प्रदान की जाती हैं ।

12.2.10 वापसी और त्याग

यह अहिंसक प्रतिरोध और समझाइए की पद्धतियों की अंतिम उपश्रेणी हैं, जिसमें लोगों के संक्षेप और सीमित तरीके शामिल किये जाते हैं । इसमें निश्चित साधारण व्यवहार से वापसी या दिये गये सम्मान को नकारना शामिल होता हैं । इसमें शामिल प्रतिरोध के तरीके इस प्रकार हैं-

12.2.10.1 बहिष्कार- इसमें लोगों का एक समूह, प्रतिनिधि मण्डल या एक व्यक्ति एक सम्मेलन, सभा या बैठक से अपने राजनीतिक उद्देश्यों को अभिव्यक्त करने के लिए उसके समापन से पूर्व बहिष्कार करता हैं । 1923 में स्वराजवादियों ने अंग्रेजों की नीतियों का विरोध करने के लिए विधान परिषदों के बहिष्कार की पद्धति का प्रयोग किया था ।

12.2.10.2 मौन या चुप्पी- यह पद्धति नैतिक निंदा की अभिव्यक्ति के लिए भी प्रायः काम में ली जाती हैं । मौन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति का या किसी अन्य पद्धति के सहायक के रूप में अभिव्यक्ति का साधन हो सकता हैं । उदाहरण के लिए पैदल मार्च या एक स्थान पर प्रदर्शन करने के साथ ।

12.2.10.3 सम्मान प्राप्ति से नकारना- इस पद्धति में एक सरकार द्वारा दिये गये सम्मान को वापस लौटाने का काम किया जाता हैं ताकि अनैतिक सरकार की अनैतिक नीतियों के प्रति

व्यक्तिगत रूप से विरोध जताया जा सके । इस तरह की कार्यवाही का व्यापक प्रभाव होता हैं । भारतीय स्वतंत्रता के दौरान हजारों सिक्ख सैनिकों ने अंग्रेज सरकार द्वारा दिये गये सम्मानों को वापस लौटा दिया गया । इसी प्रकार नोबल पुरस्कार विजेता भारतीय कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश नाईट हुड की पदवी को वापस लौटा दिया ।

12.210..4 पलटकर चल देना / वापसी- इसमें विरोधी का प्रतिनिधि जो एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह के रूप में हो सकता है, वह चुपचाप वापसी का कदम उठा सकता है, इससे विरोधी को अपनी नीतियों में सुधार करने में दबाव बनता है ।

12.3 सारांश

अहिंसक प्रतिरोध और समझाइए के उक्त तरीकों में चौवन तरीके शामिल है, जिनमें जुलूस, धरने, प्रदर्शन, वापसी, छद्म दाह-संस्कार, छद्म पुरस्कार, संगीत, नाटक, प्रतिनिधि मण्डल, लॉबिग, प्रकाशन, प्रतीक, सार्वजनिक भाषण आदि सभी शामिल हैं । ये सभी प्रतिरोध के तरीके कम या ज्यादा मात्रा में विरोधी के ऊपर अपनी नीतियों में बदलाव करने या जनता की शिकायतों को दूर करने का दबाव बनाते है, जिसमें व्यक्ति, व्यक्तियों का समूह या संगठन और प्रेस-मीडिया छद्म और मूर्त दोनो ही रूपों का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं । विरोध और समझाइए कि ये तरीके हमें संघर्ष समाधान के अंहिसात्मक विकल्प बताते हैं । इसके उदाहरण इस सत्य को दर्शाते हैं कि वास्तविकता में इसका सफल प्रयोग अहिंसात्मक संघर्ष समाधान किया जा सकता है ।

12.4 अभ्यास प्रश्न

1. अहिंसक प्रतिरोध की औपचारिक वक्तव्यों की पद्धतियों की व्याख्या कीजिए ।
2. अहिंसक प्रतिरोध में संगीत और नाटक तथा प्रतीकात्मक सार्वजनिक कार्यो की पद्धतियों को समझाइए ।
3. अहिंसक प्रतिरोध में व्यापक जनसमूह को प्रभावित करने वाली पद्धतियों व समूह प्रतिवेदन तथा व्यक्तियों पर दबाव पद्धतियों का वर्णन कीजिए ।
4. अहिंसक प्रतिरोध में जुलूस, सम्मान वापसी, सार्वजनिक बैठकों तथा वापसी व त्याग की पद्धतियों का वर्णन कीजिए ।

12.5 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बोंदुराँ, जॉन वी., कोंक्वेशस्ट ऑफ वायलेंस : द गांधीयन फिलॉसोफी ऑफ कॉजफिक्ट, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1958
2. जीन शार्प, पॉलिटिक्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन, वोल्यूम II द मेथॉड्स् ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन, पोर्टर सारजेन्ट बोस्टन, 1973
3. जीन शार्प एवं जोशुआ पॉलसन, वेजिन्ग नानवायलेन्ट स्ट्रगल : 20एथ सेन्टुरी प्रेक्टीस एण्ड 21स्ट सेन्टुरी पोटेनेशियल, हॉराइसन बुक्स, 2005

4. बुद्धदेव भट्टाचार्य, इवोल्यूशन ऑफ पॉलिटिकल फिलॉसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, कलकत्ता बुक हाउस, कलकत्ता, 1969
5. अय्यर, राघवन, एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्सफोर्मेशन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994
6. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 1985

इकाई - 13

अहिंसक कार्य की पद्धतियाँ - II

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

15.3 सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ

13.3.1 लोगों का निर्वासन (निष्कासन)

13.3.1.1 सामाजिक बहिष्कार

13.3.1.2 चुनिंदा सामाजिक बहिष्कार

13.3.1.3 अपघटनीय अ-कार्यवाही (लैसिसट्रेटिक नॉन-एक्शन)

13.3.1.4 बहिष्करण

13.3.1.5 निषेध (प्रत्यारव्यान)

13.3.2 सामाजिक घटनाओं, परम्पराओं व संस्थाओं के साथ असहयोग

13.3.2.1 सामाजिक एवं खेलकूद गतिविधियों का स्थगन

13.3.2.2 सामाजिक मामलों का बहिष्कार

13.3.2.3 छात्र-हड़ताल

13.3.2.4 सामाजिक अवज्ञा

13.3.2.5 सामाजिक संस्थाओं से प्रत्यावर्तन

13.3.3 सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन

13.3.3.1 घर-घुसना (स्टे-एट-होम)

13.3.3.2 पूर्ण-व्यक्तिगत असहयोग

13.3.3.3 श्रमिकों का पलायन

13.3.3.4 आश्रय या पुण्य स्थान

13.3.3.5 सामूहिक तिरोभाव

13.3.3.6 हिजरत या प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास

13.4 सारांश

13.5 अभ्यास प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.1 उद्देश्य

सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ नामक इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को यह जानकारी देना है कि-

- सामाजिक असहयोग की प्रमुख पद्धतियाँ कौन-कौन सी है ।

- निर्वासन या निष्कासन के रूप में सामाजिक असहयोग कैसे व्यक्त किया जाता है ।
- सामाजिक घटनाओं, परम्पराओं व संस्थाओं के साथ सामाजिक असहयोग कैसे प्रदर्शित किया जाता है तथा
- सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन कर सामाजिक असहयोग किस प्रकार प्रकट किया जाता है ।

13.2 प्रस्तावना

अहिंसक कार्यवाही पद्धतियों में विरोधी के साथ व्यापक रूप से असहयोग जुड़ा होता हैं । संघर्ष में सलंग्न व्यक्तियों, गतिविधियों, संस्थाओं या व्यवस्थाओं के साथ कार्यवाहीकर्ता सहयोग की समान्य मात्रा व रूपों से सोच-समझकर अलगकर कर लेते हैं । उदाहरण के लिए व्यक्ति विरोधी समूह के सदस्यों को पूर्णतया नकार सकते है, उन्हें इस तरह देखते है मानों की उनका अस्तित्व ही नहीं हों । वे निश्चित उत्पादों को खरीदने से या कार्यो को करने से मना कर सकते हैं वे उन कानूनों को, जिन्हें वे अनैतिक मानते है, का आज्ञापालन से मना कर सकते हैं, धरने पर बैठ सकते है या कर चुकाने से मना कर सकते हैं । कार्यवाहीकर्ता अपने सामान्य सहयोग में कमी करके अपने संघर्ष को संचालित करते है या सहायता के नये रूपों के अनुसमर्थन नहीं करके या दोनों प्रकारों से, जिससे सामान्य गतिविधियाँ धीमी या ठप्प हो जाती है । दूसरे शब्दों में असहयोग में सोची-समझी अनियमितता, अटकाना शामिल होता है या विद्यमान निश्चित राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक संबंधों का ही अनुसमर्थन करना । यह कार्यवाही स्वत: प्रवर्तित या नियोजित हो सकती है और यह कानूनी या गैर-कानूनी भी हो सकती हैं । असहयोग की पद्धतियों को सामाजिक असहयोग की पद्धतियाँ (सामाजिक बहिष्कार) आर्थिक असहयोग की पद्धतियाँ (आर्थिक बहिष्कार एवं हडताल) तथा राजनीतिक असहयोग की पद्धतियां (राजनीतिक बहिष्कार) शामिल होती है । इस अध्याय में सामाजिक असहयोग की पद्धतियों का वर्णन किया जाएगा ।

13.3 सामाजिक असहयोग की पद्धतियां

इसमें अन्याय या अनैतिक कार्य करने वाले या समझे जाने वाले लोगो या समूहों के साथ सामान्य सामाजिक संबंधों को जारी रखने से मनाही या विशेष व्यवहार प्रतिमानों की अनुपालना शामिल होती है । यहां सूचीबद्ध किये गये सामाजिक असहयोग की पद्धतियों के अतिरिक्त कई अन्य रूप सम्भवतया संवेदनों, शोध एवं खोज के द्वारा विकसित होते रहते है । इस समय अहिंसक कार्य पद्धतियों के सबसे छोटे वर्ग में 15 विशेष पद्धतियों को शामिल किया गया है, जिन्हें तीन उपवर्गों में बांटा गया है, जो इस प्रकार है ।

13.3.1 लोगों का निर्वासन (निष्कासन)

इस वर्ग में कई पद्धतियां शामिल है, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है-

13.3.1.1 सामाजिक बहिष्कार-यह इस वर्ग की सबसे आम प्रचलित पद्धति है, सामाजिक बहिष्कार में लोगों या लोगों के समूह के साथ सामान्य सामाजिक सबंधों को बनाये रखने पर

रोक होती है । यह नकार या मनाही निष्कासन या निर्वासन भी कहलाता है, क्योंकि निष्कासन भी अंग्रेजी शब्द ऑस्ट्रसिजम का हिन्दी रूपांतरण है और ऑस्ट्रसिजम ऐथेनियन शब्द ऑस्ट्रकान से बना है, जिसका अर्थ है प्रतिबंधित करना या रोकना । आधुनिक इंग्लैण्ड में सामाजिक बहिष्कार का प्रयोग विशेष तौर पर श्रम संघवादियों द्वारा उन श्रमिकों के विरूद्ध किया जाता था जो हडताल में या ऐसी अन्य गतिविधियों में भाग लेने से मना करते थे । सामाजिक बहिष्कार नियमित रूप से धार्मिक संघों के साथ भी जुडा हुआ है । क्योंकि समाज में लोगों का धार्मिक आधार पर भी बहिष्कार किया जाता रहा है । भारत और अमेरिका में भी इसके उदाहरण बडी मात्रा में प्राप्त होते है ।

13.3.1.2 चुनिंदा सामाजिक बहिष्कार- पूर्ण या लगभग- पूर्ण सामाजिक बहिष्कार की बजाये इन्हें एक या ज्यादा सम्बन्धों के विशेष प्रकारों तक सीमित रखा जा सकता है । ये विशेष सम्बन्ध एक रणनीतिक निर्णय के परिणाम के रूप मे या विशेष प्रतिरोधको और विरोधी के बीच एक सम्बन्ध के मुख्य बिन्दुओं पर साधारणतया घटित हो सकते है । इस प्रकार दुकानदार और व्यपारी सैना की आजीविका के विरूद्व बोलने की इच्छा रख सकते है लेकिन उन्हें कुछ भी बेचने से मना कर सकते है । यह व्यपारियों के बहिष्कार से भिन्न है जो कि एक आर्थिक बहिष्कार हैं क्योंकि कि इस में वस्तुओं के बेचान से नही बल्कि व्यक्ति विशेष को बेचान से मना किया गया है उदाहरण के लिये 'रूर कैम्प' के दौरान दुकानदारों ने बेल्जियम व फ्रांस सैनिकों की सेवा करने से मना कर दिया ।

13.31..3 अपघटनीय अ- कार्यवाही (लैसिसट्रेटीक नॉन एक्शन)-अरिस्टोफन्स के नाटक 'लेसिसट्राटा' में युद्ध रोकने के लिये उद्योगपतियों की पत्नियों के साथ यौन सम्बन्धों को नकार पर बल दिया । ये चुनिंदा सामाजिक बहिष्कार का विशेष रूप है जो व्यक्तिगत वर्गीकरण योग्यता हैं । अमेरिका के प्रथम नारीवादी विद्रोह में 17वीं सदी में इसका आरम्भिक प्रयोग किया गया था ।

13.3.1.4 धार्मिक बहिष्कार (बहिष्करण) - सामाजिक और धार्मिक प्रतिबन्धों के रूपो मे से एक हैं जिसमें चर्च द्वारा धार्मिक बहिष्कार किया जा सकता है । जिसके तहत एक व्यक्ति या को उसके विशेषाधिकारों सहभागिता या सदस्यता से अलग कर दिया जाता हैं । सामाजिक असहयोग का रूप चर्च के नेतृत्व मे शुरू किया जाता है बजाय व्यक्तिगत सदस्यों के । कभी-कभी ये कार्यवाही शुद्धतम कारको से कभी कभी अन्य कारको से सम्पन्न कि जाती है । इसका मध्यकालीन यूरोप मे बहुत ही से प्रयोग किया गया था । भारत मे भी इस का प्राचीन काल से व्यापक प्रयोग होता रहा है ।

13.3.1.5 निषेध (प्रत्याख्यान) - यह धार्मिक सेवाओं और अन्य धार्मिक गतिविधियों का एक निर्दिष्ट जिले या देश के लिए एक निश्चित समय तक चर्च के प्रधान के निर्णय के द्वारा स्थगन की प्रकिया है । यह आंशिक रूप से प्रकृति में दण्डात्मक भी हो सकती है । सामान्यतया इसका प्राथमिक सरकार या जनता का विशेष शिकायत को दूर करने के लिए बाध्य करना है जो कठोर रूप से धार्मिक या आंशिक रूप से राजनीतिक होता हैं ।

13.3.2 सामाजिक घटनाओं, परम्पराओं व संस्थाओं के साथ असहयोग - असहयोग के इस रूप में निम्नलिखित तरीके शामिल है-

13.3.2.1 सामाजिक एवं खेल गतिविधियों का स्थगन- सामाजिक असहयोग सामाजिक एवं खेल गतिविधियों की व्यवस्था से नकारने या उनके निरसन के रूप में हो सकती है । इस प्रकार का सामाजिक असहयोग इरादतन रूप से या तो त्याग के प्रतिरोध के रूप में या समानान्तर प्रयासों के रूप में समाज पर नये नियंत्रणों की पहल के रूप में हो सकते है । यह पद्धति रूप में सामाजिक वर्ग में है, हालांकि परिणाम या उद्देश्य की दृष्टि से यह राजनीतिक है । 1940-45 के दौरान नार्वे के निवासियों खेल गतिविधियों में एक या अन्य रूपों में सहयोग करने से मना कर दिया । जर्मनी और नार्वे में फासीवादी दल "नासजोनल सामलिंग" सत्ता में था । 1940 की गर्मी की शुरूआत में जर्मन अधिकारियों ने जर्मन-नार्वे फुटबाल मैचों को करवाया ।

13.3.2.2 सामाजिक मुद्दों का बहिष्कार- प्रतिरोध की भावना कुछ निश्चित मामलों जैसे स्वागत व पार्टियों का आयोजन व इसी प्रकार के अन्य आयोजनों में शामिल होने से नियमित के द्वारा अभिव्यक्त हो सकती हैं । नाजी प्रभुत्व के दौरान डेन्स ने जर्मन सैन्य संगीत आयोजनों में भाग लेने से मना कर दिया । 1940 के अंत और 1941 के आरम्भ में नार्वे में सिनेमा हडतालों की हवा बही, इनमें संरक्षकों ने सिनेमाओं का बहिष्कार किया । पोलैण्ड में भी 1942 में जर्मनी द्वारा शुरू किये गये सिनेमाघरों व थियटरों के विरूद्ध भीतर ही भीतर मनाही के लिए मतदान का आयोजन किया गया था ।

13.3.2.3 छात्र हडताल- छात्रों व शिष्यों के द्वारा पाठशालाओं से विश्वविद्यालयों के सभी स्तरों पर अस्थाई रूप से कक्षाओं में उपस्थित होने के प्रतिरोध किया जाता हैं या वे व्याख्यानों कक्षा में ध्यान पूर्वक सुनने से मना कर सकते हैं । यह 1965 में मेड्रिड विश्वविद्यालय में हुआ जब एक स्वतंत्र छात्र संघ के अभियान में भाग लिया । इसमें कई सम्भावित विविधताएं होती हैं । हालांकि कक्षाओं का बहिष्कार के लिए आम होता है इसलिए छात्र हडताल को पाठशाला बहिष्कार या कक्षाओं का बहिष्कार भी कहा है ।

छात्र बहिष्कार का व्यापक रूप में लम्बे समय से चीन, लेटिन अमेरिका ओर कुछ मात्रा तक अफ्रीका में भी प्रयोग किया जाता रहा हैं । मई 1970 में कम्बोडिया मर अमेरिकी आक्रमण के पश्चात् अमेरिका में विश्व विद्यालय जीवन का स्थाई अंग बन गया था । छात्र हडताल कोई आधुनिक खोज नहीं है जैसा कि चिनी उदाहरण बतलाते है । 1899 में रूसी साम्राज्य के सभी विश्वविद्यालयों में व सेंट पीट्सबर्ग में पुलिस ने कुछ छात्रों को कोडे लगाने के प्रतिरोध के रूप में छात्र हडताल हुई थी।

भारत में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध चलाये गये स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान गाँधी जी के नेतृत्व में कई छात्र हडताले हुई । स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत में 1970-80 के दशकों में व्यापक रूप से छात्र हडताले हुई । आज भी छात्र अपनी मांगों को मनवाने के रूप में विश्वविद्यालय के स्तर पर इसका प्रयोग करते है ।

13.3.2.4 सामाजिक अवज्ञा-यह एक गैर सरकारी सामाजिक संस्था की (एक धार्मिक निकाय, क्लब, आर्थिक संगठन या इसी तरह के अन्य संगठन) की सामाजिक परम्पराओं या नियमों-विनियमों या व्यवहारों की अवज्ञा हैं । ऐसी सामाजिक अवज्ञा कई रूपों जैसे फैक्ट्री विनियमों को भंग करना या भाषण, वेशभूषा एवं व्यवहार प्रतिमान का उल्लंघन करना या पादरियों की

व्यवस्था का अवज्ञा करना । अन्य मामलों में व्यक्तियों का जो कुछ लोगों के विरूद्ध सामाजिक बहिष्कार का अनुमोदन नही करते है वे सामाजिक अवज्ञा उनके व्यवहार के द्वारा मित्रता कायम कर सकते हैं । भारत में जो लोग अस्पृश्यों को नकारते है प्राय: अस्पृश्यों के साथ सुविचार की मैत्री स्थापित करते हैं । वे धार्मिक नियमों एवं सामाजिक परम्पराओं को नकारते है । हालांकि सामाजिक अवज्ञा कभी भी सरकार के विरूद्ध चुनौती नहीं बन सकती है । यह अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित करती है । हालांकि फिर भी अवज्ञा के द्वारा नाराज लोगों की और से प्रतिक्रिया मिल सकती हैं । ऐसे प्रतिकार में पुलिस द्वारा कार्यकर्ताओं के द्वारा अवज्ञा कभी-कभी प्रतिक्रिया स्वरूप हिंसक रूप ग्रहण कर सकता हैं ।

13.3.2.5 सामाजिक संस्थाओं से प्रत्यावर्तन (वापसी-(सामाजिक संगठनों एवं संस्थाओं के विभिन्न रूपों के सदस्य संघर्ष के दौरान अपने मतों के व्यक्त करने के तरीके के रूप में या तो सदस्यता से त्यागपत्र दे देते है या निकाय में सहभागिता से बिना सदस्यता के वास्तविक निष्कासन के रूप में । यह उदाहरण यहां सामाजिक समूह की ओर इंगित करते है लेकिन यह तरीका अन्य संस्थाओं पर भी लागू किया जा सकता है ।

1830 के दशक में चर्च के द्वारा दास्ता के विरूद्ध कठोर कदम उठाने में किये गये समझाइए के असफल प्रयासों के दौरान कई गेरिसीयन उन्मूलनवादियों ने उनके परम्परागत प्रभुत्ववादी चर्चो की सदस्यता से प्रत्यावर्तन का उग्र कदम उठाया । इसी प्रकार 1840 में एक उन्मूलनवादी सम्पादक रोगर्स ने न्यू हैम्पशायर के पालीमाउथ कांग्रेसनलन चर्च से अपने को अलग कर लिया दास्ता का समर्थन करने वाले मंत्रियों व कांग्रेस के सदस्यों एवं अध्यतावर्तियों के दास्ता का विरोध करने से मना करने पर ।

13.3.3 सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन इस तरह के सामाजिक असहयोग में कई तरह की पद्धतियां शामिल है जो इस प्रकार है-

13.3.3.1 स्टे-एट-होम - इसका प्रयोग प्राय: हडताल या स्ट्राइक के रूपो के साथ घनिष्ठ रूप से किया जाता है । हालांकि इसका व्यापक रूप से कार्य के घंटो के बाद किया जा सकता है । असहयोग के इस रूप में एक निश्चित समय के लिए जनसंख्या पूर्ण रूप से घर पर ही बनी रहती हैं । प्राय: इसका प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिए किया जाता हैं । सामान्य रूप से यह संगठित होती हैं हालांकि यह स्वत: स्फूर्त भी हो सकती है । दुर्घटनाओं में कमी के अतिरिक्त यह जनसंख्या के मध्य स्वअनुशासन एवं एकता की मात्रा को विरोधी के समक्ष बढाने में भी प्रयोग किया जाता है । इस पद्धति का प्रयोग कई अवसरों पर दक्षिण अफ्रकिा में भी किया जाता रहा है । 26 जून 1950 को इस देश में एक दिन लोग घर पर ही रहे । यह विरोध समूह क्षेत्र अधिनियम एवं कम्यूनिज्य के निरसन के विरूद्ध किया गया था । यह विशेषकर जोहांसबर्ग, पोर्ट ऐजिजाबैथ एवं डरबन में प्रभावी रहा था । मार्च 1960 में शार्प विलय में भी इस तरह का प्रतिरोध हुआ था ।

13.3.3.2 पूर्ण व्यक्तिगत असहयोग - कभी-कभार यह भी मामला होता है कि यदि स्पष्ट रूप से श्वास के अलावा कुछ भी ग्रहण करने से मना कर देते है क्योंकि उनका विश्वास है कि उनकी गिरफ्तारी नैतिक रूप से अन्यायपूर्ण है या राजनीतिक कारणों से हुई है । इसका सबसे जाना पहचाना उदाहरण है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक अमेरिकी धार्मिक कर्तव्यनिष्ठ

उज्रदार कारबेट बिश्प है । विश्प आरम्भिक रूप से कर्तव्यनिष्ठ उर्जदारो-सिविल पब्लिक सर्विस के लिए उपलब्ध वैकल्पिक सेवा कार्यक्रम के साथ सहयोग किया था, लेकिन वे एक समय के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें किसी भी रूप से सहयोग नहीं देना चाहिए । जब सिविल पब्लिक सर्विस को निरंतर सहयोग से मना किया तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । उसने घोषणा की कि उसकी चेतना स्वतंत्र थी और यदि गिरफ्तारकर्ता उसका शरीर चाहता है तो वे इसे उसकी सहायता के बिना ले जा सकते है ।

13.3.3.3 श्रमिकों का पलायन - यह हडताल का पूर्वगामी है जिसमें कार्य का समापन और श्रमिकों का घर छोडकर कहीं अन्यत्र चले जाना बिना मांग या शर्त के मिश्र में इस तरह के मामले बहुत ज्यादा देखने को मिलते हैं । वहीं रूप में भी इस तरह के मामले में देखने को मिलते है । यह स्थिति तब होती है तब श्रमिकों या किसानों की दशा असहनीय स्थिति तक खरा हो जाती है और सरकार की और से कोई ध्यान नही दिया जाता है ।

13.3.3.4 पूण्य-**स्थान या आश्रय -** यह एक असाधारण पद्धति है जिसके एक व्यक्ति या लोगों का एक समूह एक स्थान से विरोधी का विरोध जताते हुऐ अपने आपको बहार निकाल लेते है । जहां वे धार्मिक, नैतिक, सामाजिक या कानूनी प्रतिबंधों की हिंसा के बिना नहीं रह सकते हैं । ऐसी हिंसा परिणाम स्वरूप विरोध को एक नहीं और कठिन स्थिति में डाल देती हैं । मंदिर, चर्च व अन्य पवित्र स्थल शरणार्थियों के आश्रय स्थल बनते रहे है । जब प्राचीन मिश्रवासी किसानों ने मंदिरों की और पलायन किया जिन्हें प्रिसिंडिंग मैथड के रूप में वर्णित किया गया । इसमें उन्होंने पलायन और आश्रय के मिश्रित रूप का प्रयोग किया । जब वे गुप्त स्थान पर चले गये तब उन्होंने केवल पलायन की पद्धति का ही प्रयोग किया । 1968 में पूण्य स्थल पर आश्रय का विचार सयुक्त राज्य अमेरिका में पुनर्जिवित किया गया ।

13.3.3.5 सामूहिक तिरोभाव - इसका प्रयोग तब हो सकता है जब एक छोटे क्षेत्र जैसे गांव की जनसंख्या अपने विरोधी के साथ किसी प्रकार का सामाजिक संबंध न रखने के चुनाव के बतौर अपने घर और गांव को त्याग दे और गायब हो जाये । जिसका सबसे अच्छा उदाहरण है ब्रिटिश शासनकाल काल के दौरान 1799 और 1800 में दक्षिण भारत के कन्नड किसानों के द्वारा ब्रिटिश सत्ता का विरोध करने के दौरान मिलता हैं । एक ब्रिटिश प्रभारी अधिकारी सर थॉमस मुनरो ने लिखा कि जब कभी मैं एक गांव में जाता तो वहां के निवासी अन्यत्र चले जाते थे और मैं कभी-कभी कई सप्ताहों तक उनसे बिना मिले ही आ जाता था । 1881 में मध्य चीन में इस तरह की सामूहिक तिरोभाव की घटनाओं के उदाहरण देखने मिलते है ।

13.3.3.6 प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास (हिजरत) - प्रतिरोधपूर्ण उत्प्रवास को भारत में हिजरत के नाम से जाना जाता है । इसमें राज्य के क्षेत्राधिकार से सोच-समझकर उत्प्रवास किया जाता क्योंकि उत्प्रवासियों की नजर में राज्य कुछ निश्चित अन्यायों के लिए उत्तरदायी है या उनकी नजर में राज्य सभी सामाजिक सहयोगों को कठोरता से समाप्त करने का प्रयास कर रहा है । हालांकि कुछ निश्चित विशेष मामलों में ही उत्प्रवास देखने का मिला हैं । यह कभी स्थाई तो कभी अस्थाई होता है। जॉन बोंदुरा ने इस पद्धति को स्वैच्छिक देश निकाला कहा है । अरबी पद हिजरत हजरत से उत्पन्न हुआ है । हजरत पैगम्बर मोहम्मद के मक्का से मदीना के पलायन

को कहते है । उन्होंने मक्का के तानाशाही शासन के समक्ष आत्म समर्पण के बजाय पलायन को चुना ।

हिजरत को भारत में देश त्याग भी कहते है, जिसका ब्रिटिश शासन के दौरान आजादी के लिए और विशेष अन्यायों के विरूद्ध विभिन्न अभियानों के दौरान प्रयोग किया गया था । यह कर नही देने के विविध आन्दोलनों की एक प्रशाखा थी । गाँधी जी की शिक्षाओं में सत्याग्रही प्रसन्नता पूर्वक हिजरत का सहारा लेते थे चाहे उसके कुछ भी दुष्परिणाम हो । जिससे विरोधी के हृदय को पिघलाने और अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यापक प्रभाव छोडने के लिए प्रयुक्त किया गया ।

हिजरत का प्रयोग गुजरात के किसानों ने किया था जो अंग्रेजों के अधिक कर आरोपण के विरोध में बडौदा पलायन कर गऐ । इसी प्रकार 1928 में बारदोली कर मनाही अभियान के दौरान भी इसका प्रयोग किया गया, जिसमें बारदोली के किसान अस्थाई रूप में बडौदा पलायन कर गऐ ।

हिजरत में लोगों की संख्या अधिक भी हो सकती है और कम भी, संख्या का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि सत्याग्रही द्वारा उठाया गया मामला कितना महत्वपूर्ण व गम्भीर हैं ।

13.4 सारांश

आधुनिक समाजों में असहयोग के कई रूप प्रचलित है जिनमें सामाजिक असहयोग, राजनीतिक असहयोग व आर्थिक असहयोग शामिल हैं । इस अध्याय में हमने सामाजिक असहयोग की पद्धति के कई तरीकों व तकनीकों वर्णन किया हैं । जिनमें शामिल है, लोगों का निर्वासन, सामाजिक गतिविधियों, परम्पराओं एंव सामाजिक सस्थाओं के साथ असहयोग तथा सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन ।

13.5 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक असहयोग की लोगो के निर्वासन के रूपों का वर्णन कीजिए ।
2. सामाजिक असहयोग की सामाजिक गतिविधियों, परम्पराओं एवं संस्थाओं के साथ असहयोग की पद्धति का वर्णन कीजिए ।
3. सामाजिक व्यवस्था से प्रत्यावर्तन के तरीको को स्पष्ट कीजिए ।

13.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोंदुरा जॉन वी., कोंक्वेशस्ट ऑफ नॉन वायलेंस : द गांधीयन फिलॉसोफी ऑफ कॉजफिक्ट, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1958
2. जीन शार्प, पॉलिटिक्स ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन वोल्यूम II द मेथॉड्स् ऑफ नानवायलेन्ट एक्शन, पोर्टर सारजेन्ट बोस्टन, 1973
3. जीन शार्प एवं जोशुआ पॉलसन, वेजिन्ग नानवायलेन्ट स्ट्रगल : 20एथ सेन्टुरी प्रेक्टीस एण्ड 21स्ट सेन्टुरी पोटेनेशियल हॉराइसन बुक्स, 2005

4. बुद्धदेव भट्टाचार्य, इवोल्यूशन ऑफ पॉलिटिकल फिलॉसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, कलकत्ता बुक हाउस, कलकत्ता, 1969
5. अय्यर, राघवन, एवं अन्य, गाँधी एण्ड ग्लोबल नॉनवायलेन्ट ट्रान्सफोर्मेशन, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली, 1994
6. ऑस्टरगार्ड, जेफरी, नानवायलेन्ट रेवल्यूशन इन इण्डिया, गाँधी पीस फाऊण्डेशन, नई दिल्ली, 19851

इकाई -14

शान्ति-स्थापक - मार्टिन लूथर किंग जूनियर, स्टीफन बिको, नेल्सन मण्डेला और एमा गोल्डमैन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 मार्टिन लूथर किंग, जूनियर (1929 - 1968)

14.3 स्टीफन बिको (1946 - 1977)

14.4 नेल्सन मण्डेला (1918 -)

14.5 एम गोल्डमैन (1869-1940)

14.6 सारांश

14.7 अभ्यास प्रश्न

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.1 प्रस्तावना

संघर्ष सामाजिक जीवन का ऐसा सत्य है जिसे लाख चाहने पर भी मुक्ति सम्भव नही है । मानवीय प्रकृति की भिन्नता हमें भिन्न-भिन्न कामनाओं की इच्छा रखने और इनके प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहने हेतु प्रेरित करती है । इसके साथ जब संसाधनों की कमी जुड़ जाती हैं तो संघर्ष उत्पन्न होते हैं । कभी हम किसी संघर्ष को सुलझाने में सफल हो जाते हैं तो कभी इस दिशा में निराशा हाथ लगती है। कभी पुराने संघर्ष समाप्ति की ओर बढते हैं, तो कभी नए संघर्ष जीवन में उत्पन्न हो जाते हैं । संघर्षों को यदि समय रहते सुलझाया नहीं जाता तो यह शान्ति व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं । संघर्ष समाधान के अनेक तरीकों का प्रयोग देखने को मिलता है जिसे वृहद स्तर पर दो वर्गों में रखा जा सकता है - बल आधारित और दूसरा बल विहीन आधारित । यद्यपि बल और हिंसा आधारित तरीकों द्वारा संघर्ष समाधान के प्रयास हमें ज्यादा पढ़ने अथवा उनके प्रयोग देखने को मिलते है, इसे सशक्त संघर्ष समाधान के साधन के रूप में क्रमशतः ज्यादा लोग संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं । दूसरी ओर अंहिसात्मक संघर्ष समाधान की विधियो का उल्लेख संघर्षों के समाधान हेतु साधन के रूप में इतिहास में कम पढ़ने को मिलता है, समकालीन समय में संघर्षों के समाधान हेतु इसके बेहतर विकल्प होने की मान्यता दिनों दिन बढ- रही है । हिंसा और युद्ध से ही संघर्ष सुलझाये नहीं जाते अपितु एक वैकल्पिक अहिंसा का मार्ग भी हैं । अहिंसात्मक साधनों के प्रयोग से संघर्ष सुलझाकर एक बेहतर शान्तिमय समाज और विश्व स्थापित हो सकता है । ऐसा सोच और इसका सफल प्रयोग विश्व के कुछ महान लोगों ने कर दिखाया है । इन्ही में शामिल हैं मार्टिन लूथर किंग स्टीफन बिको, नेल्सन मण्डेला और एमा गोल्डमैन । इनका जीवन और प्रयास प्रेरणा दायक हैं और हिंसा और संघर्षों के अंधकार द्वारा घेरे हुए विश्व को आशा की किरण दिखाते है।

14.2 मार्टिन लूथर किंग, जूनियर (1929 - 1968)

मार्टिन लूथर किंग. जूनियर का सार्वजनिक जीवन अत्यन्त संक्षिप्त था । किन्तु हम यह जानकर आश्चर्य होता है कि नागरिक अधिकार आन्दोलन कुछ समय पूर्व ही जारी था । मार्टिन लूथर किंग जूनियर विभिन्न प्रतिभावान लोगो के बीच से इस आन्दोलन के प्रमुख प्रवक्ता के रूप मे उभरे ।

अपने प्रशिक्षण और वातावरण के कारण मार्टिन लूथर किंग, जूनियर अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में सफल हुए । अहिंसात्मक आन्दोलन का प्रशिक्षण उन्हें दक्षिण अमेरिका में प्राप्त हुआ जिस प्रकार समाजवादियों और अराजकतावादियों ने प्रथम विश्वयुद्ध के एक दशक पहले श्रमिक संगठनों और सुधारकों को प्रशिक्षित किया, उसी प्रकार उन्होंने आने वाली पीढ़ी को अहिंसक प्रतिरोध और आन्दोलन का प्रशिक्षण दिया ।

यदि हम वियतनाम युद्ध को समाप्त करने, परमाणु हथियारों की दौड़ रोकने और शान्ति एवं सामाजिक न्याय से संबंधित आन्दोलनों के नेताओं पर दृष्टि डालें तो हम पायेंगे कि साठ के दशक में कई लोग दक्षिण अमेरिका गये । वहाँ वे स्वतंत्रता, मतदान पंजीयन अभियानों अथवा सेलमा यात्रा के लिए गये थे । उदाहरण के लिए फिलिप बेरिगन ने मेरीलैण्ड में कागजात जलाने से पहले न्यू ओरलिंएस में अश्वेतों के विद्यालय में शिक्षक का कार्य किया था । एबी हॉफमैन ने स्निक (स्टूडेन्ट नॉन वॉयलेन्ट कोऑडिनेटिंग कमिटि) नाम की मिसीसिपी के हस्तशिल्प उत्पादों को बचने के लिए दुकान खोली । यह कार्य उन्होंने लोवर ईस्ट मैनहट्टन में 'रिवॉल्यूशन फॉर दि हेल ऑफ इट' प्रारम्भ करने के पूर्व किया था । होवार्ड जिन्न ने बोस्टन में 'रेसिस्ट' की सदस्यता ग्रहण की । इसी प्रकार लिण्ड यंग्सटाऊन में श्रमिकों के वकील बने । अश्वेत महिलाओं के महाविद्यालय में शिक्षण का कार्य किया । इसी प्रकार रोजा पार्क्स में अश्वेत विरोधी अलबामा कानून का विरोध किया । इस प्रकार वेटि फ्राइडन और ग्लोरिया स्टिनेम के महिला सशक्तिकरण आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व फैनी लाऊ हैमर ने मिसीसिपी में महिलाओं की पारम्परिक भूमिका को चुनौती दी ।

मार्टिन लूथर किंग, जूनियर का जन्म 15 जनवरी, 1929 को अटलाण्टा, जार्जिया में हुआ था । उसकी शिक्षा मोर हाऊस कॉलेज और पैनसिल्वेनिया के क्रोजर थियोलॉजिकल सेमिनेरी में हुई थी । उन्हें अपने पिता के चर्च में ही कार्य करने का अवसर मिला और उन्होंने बोस्टन विश्वविद्यालय से व्यवस्थित धर्मशास्त्र पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की । उसी दिसम्बर में उन्होंने मांटगॉमरी में अश्वेतों के लिए चलने वाली बसों का सम्पूर्ण शहर में बहिष्कार किया । वे यहीं पर एक चर्च में पादरी का कार्य कर रहे थे । इस समय से मेन्फिस में सन् 1968 तक मृत्युपर्यन्त वे सामाजिक परिवर्तन के लिए अहिंसक आन्दोलन के समन्वयक एवं प्रणेता रहे । उन्होंने कामकाजी लोगों के अधिकारों, विशेषकर अश्वेतों के अधिकारों, के लिए संघर्ष किया एवं दक्षिण पूर्व एशिया में अमरीका के युद्ध का विरोध किया ।

किंग की शक्ति मात्र उनके अदम्य साहस में ही नहीं थी । वे एक कौशलपूर्ण वक्ता और लेखक भी थे। उदाहरण के लिए उनके निबन्ध आज भी उतने ही प्रभावशाली हैं जितने पूर्व में थे । उनका निबंध 'द नीग्रो रिवॉल्यूशन' (1963) उनकी लेखन क्षमता, शैली और भाषा का

परिचायक है । इसमें वे अपनी बात स्वयं के जीवन और अपने सहयोगियों के जीवन पर आधारित कहानियों के माध्यम से कहते थे । उदाहरण के लिए, उन्होंने लिखा "कुछ वर्ष पहले मैं हार्लेम डिपार्टमेंट स्टोर में सैकडों लोगों से घिरा हुआ बैठा था । "स्ट्राइड टूवार्डस फ्रीडम' की प्रतियों पर अपने हस्ताक्षर कर रहा था । एक पृष्ठ पर हस्ताक्षर करते समय मुझे ऐसा लगा कि कोई नुकीली वस्तु मेरे सीने में धंस गयी हो । मुझे एक महिला ने लेटर ओपनर से मारकर घायल कर दिया था । बाद में पता चला कि वह महिला मानसिक रूप से अस्वस्थ थी । मुझे ऐंबुलेस से हार्लेम हॉस्पीटल ले जाया गया । मैं वहाँ बिस्तर पर घंटों लेटा रहा । उस समय वह नुकीली चाकू मेरे शरीर से निकलने की तैयारियाँ चल रही थी । कुछ दिनों बाद जब मैं स्वच्छ होकर इस नाजुक और खतरनाक ऑपरेशन करने वाले प्रमुख शल्य चिकित्सक डॉ. ओब्रे मेनार्ड से बात कर रहा था तब मुझे पता चला कि मेरे ऑपरेशन में इतनी देरी क्यों हुई । मुझे पता चला कि उस चाकू को निकालने के लिये उन्हें मेरा सीना चीरना था, क्योंकि वह मेरे हृदय को प्रमुख धमनी के पास था । डॉक्टर ने मुझे बताया कि यदि ऑपरेशन की तैयारियों के मुझे छींक आ जाती तो वह प्रमुख धमनी फट जाती और मैं अपने स्वयं के रक्त में डूब जाता । सन् 1963 की गर्मियों में हिंसा का नुकीला चाकू देश की प्रमुख धमनी के उतना ही करीब था ।"

यद्यपि किंग का नाम और उनकी उपलब्धियाँ कई लोगों को मालूम हैं, किन्तु उनके जीवन के कुछ पहलू जैसा कि अक्सर शांतिवादियों के साथ होता है, भुला दिये जाते हैं । उनकी अहिंसा के प्रति अटूट प्रतिबद्धता के बारे में भी यही सत्य है । सौभाग्य से अपनी 'स्ट्राइड ट्वर्डस फ्रीडम' (1958) में उन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन किया है । इसका प्रारम्भ कॉलेज में 'थोरो' को पढ़ने से हुआ । बाद में उन्होंने मॉर्क्स, गांधी और रेनबोल्ड नीबर को भी काफी पढ़ा ।

यद्यपि वे गाँधी के पक्षधर थे । किन्तु उन्होंने नीबर द्वारा शान्तिवाद सिद्धान्त की आलोचना को भी समझने का प्रयास किया । इससे प्रारम्भ हुए बौद्धिक संघर्ष में किंग इस नतीजे पर पहुंचे कि नीबर ने जो समझ प्रस्तुत की है वह गाँधी के निष्क्रिय प्रतिरोध और प्रेम की शक्ति का गंभीर विकृत रूप है किंग ने कहा "गाँधी के मेरे अध्ययन ने मुझे इस बात से सहमत किया कि वास्तविक शांन्तिवाद बुराई का प्रतिरोध से प्रथक रहना नहीं है, बल्कि बुराई का अहिंसात्मक प्रतिरोध है । इन दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है । गाँधी ने बुराई का उतना ही शक्ति से विरोध किया जितना कोई हिंसक विरोधी कर सकता, किन्तु उन्होंने घृणा की बजाय प्रेमपूर्वक प्रतिरोध किया । वास्तविक शांन्तिवाद बुराई के सामने अवास्तविक समर्पण नहीं है जैसा नीबर कहते हैं । वास्तव में यह प्रेम की शक्ति द्वारा बुराई का साहसपूर्ण प्रतिरोध है ।

किंग ने अहिंसा को कितनी प्रतिबद्धता से निभाया था यह इस बात में प्रतिबिंबित होता है कि उन्होंने हिंसा को न केवल अश्वेतों को समानता के लिए संघर्ष में पूर्ण रूप से नकार दिया बल्कि उनके सैनिक शासन के विरूद्ध प्रतिरोध एवं वियतनाम युद्ध में भी उसे कोई स्थान नहीं दिया । उन्हें उनके निबंध के लिए बहुत याद किया जाता है, जो अपनी शक्ति और सामग्री में 'डिक्लेअरेशन ऑफ इंडिपेन्डेंन्स' और थौरो के 'सिविल डिसओबेडियन्स' के समान है । 'लेटर फ्रॉम बर्मिघम जेल' (1963) उन आठ प्रोटेस्टेन्ट केथौलिक और यहूदि पादरियों को सम्बंधित था

जिन्होंने किंग के नेतृत्व को 'अनुचित और असमयिक' बताया । इसमें किंग ने ऐतिहासिक, धार्मिक और राजनैतिक कारण देते हुए अपने कार्यो को उचित और राष्ट्रहित के अनुकूल बताया । यह कई बार प्रकाशित हुआ और कई रूपों में यह लोगों के सामने आया और अंतत: दूसरी अमेरिकी क्रान्ति का सामान्य तर्क बन गया । रिवर साईड चर्च, न्यूयॉर्क, सिटी में 4 अप्रेल, 1967 को उन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक सम्बोधन दिया, जिसे 'ए टाईम टु ब्रेक द साइलेंस' का शीर्षक दिया गया, जिसमें उन्होंने वियतनाम युद्ध संबंधी नीति पर जॉनसन प्रशासन का विरोध किया था ।

19वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण अमेरिका सुधारकों में गैरीसन थोरौ और बलाउ जाते हैं । टॉल्सटॉय और गाँधी की शिक्षाओं को किंग ने अहिंसा की परम्परा देकर एक अद्भुत कार्य । उनके ('लेटर फ्रॉम बर्मिधम जेल) के अनुसार किसी भी अहिंसात्मक आन्दोलन के चार प्रमुख आधारभूत होते हैं :-

1. तथ्य संकलन द्वारा यह निश्चित करना कि अन्याय अभी प्रचलित है ।
2. वार्ता करना ।
3. आत्मशुद्धि करना ।
4. सीधी कार्यवाही करना

इसके साथ ही किंग ने बताया कि उन्होंने एवं उनके सहयोगियों ने बर्मिघम में किस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों का सामना किया । अंत में उन्होंने अश्वेत स्वतंत्रता आंदोलन के पक्ष में तर्क दिये हैं:

'तीर्थयात्रियों के आने से पहले हम प्लाइमाउथ में थे । जैफरसन की कलम से निकले 'डिक्लेरेशन ऑफ इण्डिपेन्डेंस' के प्रत्येक शब्द के पहले से हम यहां थे । दो से अधिक सदियों तक हमारे पूर्वजों के बिना किसी पारिश्रमिक के यहां श्रम किया है । उन्होंने कुछ को 'सूत का राजा बनाया', अपने स्वामियों के घर बनाये । ये सभी कार्य उन्होंने घोर यातनाएँ, अपमान और अन्याय सहकर किए । । इसके बावजूद अपनी निहित शक्ति के कारण वे उन्नति करते रहे । यदि दासता की क्रूरता हमें नहीं रोक सकीं तो इसका अर्थ है कि हमारा विरोध निश्चित ही असफल होगा । हम स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे क्योंकि राष्ट्र की पवित्र और ईश्वर हमारे साथ है ।"

किंग के जीवन के अंतिम तीन वर्षो का सावधानीपूर्वक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । सन् 1965 में जब नागरिक अधिकार कानून पारित हुआ था तब उन्होंने गरीब लोगों की ओर से एक अभियान चलाया और अन्त में परमाणु हथियारों की दौड़ समाप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये ।

14.3 स्टीफन बिको (1946- 1977)

विश्व के विभिन्न नेताओं से मिलने और उनका साक्षात्कार लेने वाले एक लेखक रोनाल्ड वुड्स के अनुसार बिको वास्तव में उन सभी नेताओं में महानतम थे, जिनसे मिलने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ । रोनाल्ड वुड्स ने लिखा है, "बिको की जीवन के उस क्षेत्र में जो अधिकतर लोगों का भविष्य तय करता है, अर्थात् राजनीति में, बहुत प्रभावशाली क्षमताऐं और

योग्यताएं थीं । बिको की मात्र 30 वर्ष की अल्पायु में मृत्यु हो गयी और वे कभी भी अपने स्वयं के देश से बाहर नहीं गये । इसके बावजूद उनके अनुयायिओं की संख्या काफी थी । क्रिश्चियनिटी एण्ड क्राइसिस' के सम्पादकों ने कहा था कि मृत्यु के समय उनका चेहरा और उनका मस्तिष्क सम्पूर्ण विश्व के लिए परिचित था । दशकों बाद मानवाधिकरों के लिए संघर्ष करने वाले लोगों में उनका एक विशिष्ट स्थान है । बिको दक्षिण अफ्रीका में लोकतांत्रिक समाज की स्थापना करने और अश्वेतों के प्रति भेद-भाव को समाप्त करने के संघर्ष के नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए । मृत्यु पर वे उन हजारों लोगों के समान हो गये जिन्हें लंबे समय तक विदेशियों ने यातनाएँ दीं । यातनाओं का यह क्रम दक्षिण अफ्रीका में श्वेतों ने 17 वीं शताब्दी. के मध्य प्रारम्भ किया था । जातीय और नस्लीय संघर्षों से कमजोर हो चुके अफ्रीकियों के पास श्वेत आक्रमणकर्त्ताओं का मुकाबला करने के लिए न तो बंदूकें थी और न घोड़े । तकनीकी में भी अफ्रीका ये लोग काफी पिछड़े थे ।

इन शताब्दियों में कई श्वेत लोग आपसी संघर्षों में मारे गये । अफ्रीका के श्वेत लोग या तो पूर्व में आये हुए डच, जर्मन और ह्यजिनॉट जैसे श्वेतों और ब्रिटिश श्वेतों के संतान थे । 20वी शताब्दी के प्रारम्भ में ये दोनों समूह 'बोअर युद्ध' में एक-दूसरे से लड़े । इसके कुछ समय बाद ही महात्मा गाँधी ने भारतीयों के विरूद्ध भेद-भाव को समाप्त करने के लिए सत्याग्रह आंदोलन चलाया । दक्षिण अफ्रीका के इतिहास में कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं - अल्बर्ट लुथुली, आर्कबिशप, डेसमंड टुटू और नेल्सन मंडेला । इन सभी को शांति के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है । सन् 1994 में एक ऐतिहासिक क्षण आया जब नेल्सन मंडेला दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति बने । अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के सदस्य के रूप में उन्होंने 27 वर्ष जेल में बिताये ।

1948 ई. से नेशनलिस्ट पार्टी सत्ता के केन्द्र में रही थी । यह उन श्वेत अफ्रीकियों की पार्टी थी जिनकी संख्या दक्षिण अफ्रीका की कुल श्वेतों की संख्या का साठ प्रतिशत थी । वैसे, ये में जहाँ की कुल आबादी 80 प्रतिशत केवल अश्वेत लोग थे, वहाँ श्वेत अल्पसंख्यकों द्वारा शासन के माध्यम से कई दमनात्मक कदम उठाये जा रहे थे । उनकी भेद-भावपूर्ण नीतियों ने अश्वेत लोगों को देश के एक खास क्षेत्र तक सीमित कर दिया तथा उन्हें मानवाधिकारों से वंचित कर दिया । इस भयानक अवधि से बहुत से अश्वेत नेता जुड़े थे । शार्पविलि नरसंहार (1960) जिसमें 70 लोगों की मृत्यु हो गयी और 186 घायल हो गये, घटना से सम्पूर्ण विश्व में रोष व्याप्त हो गया । स्टीफन बिको सबसे पहले मरने वालों में शामिल थे।

यह घटना इस प्रकार घटी । सन् 1961 में दो जनप्रिय अश्वेत आंदोलन का दमन करने के लिये नेशनलिस्ट पार्टी ने नेल्सन मंडेला की अफ्रीकन नेशनलिस्ट काँग्रेस और रॉबर्ट सोबुक्वे की पैन अफ्रीकनिस्ट काँग्रेस पर प्रतिबन्ध लगा दिया । इसके बाद दोनों नेताओं और उनके सहयोगियों रोबन आइंलैण्ड पर टेबल बेय में बंदी बना लिया । अनिश्चितता के कुछ समय के बाद एक नवयुवक स्टीफन बिको एक लोकप्रिय एवं शक्तिशाली नेता के रूप में उभरा । 1960 के दशक में वह साउथ अफ्रीकन स्टूडेन्टस ऑर्गनाइजेशन (SASO) के प्रथम अध्यक्ष बना और उसी दौरान वह यह समझ चुका था कि दमनकारियों का सबसे शक्तिशाली हथियार

प्रताड़ित लोगों का मस्तिष्क था । इस परिस्थिति के विरूद्ध उसकी प्रतिक्रिया ने ही ब्लैक कॉशेसनेस मूवमेंट (अफ्रीकी चेतना आंदोलन) की नींव रखी, जिसको उसने प्रताड़ित लोगों के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पुनर्जीवन के रूप में देखा । उसका लक्ष्य था कि अश्वेत लोगों को पहले स्वयं की मानसिक प्रताड़ना से मुक्त कराना । यह प्रताड़ना स्वयं को कमतर समझने के कारण थी । दूसरा उन्हें श्वेत, नस्लीय समाज के द्वारा किये जाने वाले शारीरिक दमन से बचाना था ।

स्टीफन बिको का जन्म 18 दिसम्बर, 1946 को दक्षिण अफ्रीका के किंग विलियम कस्बे में हुआ था। बिको की प्रारम्भिक शिक्षा किंग विलियम में और अश्वेतों के लिये प्रसिद्ध एक मिशनरी स्कूल लवडेल में हुई । लवडेल का यह स्कूल कुछ समय बाद छात्रों की हड़ताल के परिणामस्वरूप बंद हो गया मेरियान हिल (नटाल) के कैथोलिक हाई स्कूल में अपने अच्छे शैक्षणिक प्रदर्शन के बाद बिको ने मेडिसिन की पढ़ाई करने का मन बनाया । इसी दौरान राजनीति में उसका सक्रियता शुरू हो गयी। लोगों ने उसके नेतृत्व में निष्ठा एवं प्रसन्नता जाहिर की । इस प्रकार बिको का राजनैतिक जीवन प्रारम्भ हो गया ।

बिको आकर्षक, बलिष्ठ, सरल स्वभाव का विनम्र एवं मजाकी व्यक्ति था । भाषा पर उसका कौशलपूर्ण अधिकार था । उसकी उपस्थिति मात्र ही प्रभावशाली थी । उसके भाषण और न्यायलय में दिये गये वक्तव्य इन बातों की पुष्टि करते हैं । डी. थॉमस ने लिखा है, "जो भी व्यक्ति स्टीफन से मिलता था वह उसके व्यक्तित्व के चुम्बकीय प्रभाव से अभिभूत हो जाता है।"

जब अधिकारियों ने सन् 1972 में उसे विश्वविद्यालय छोड़ने को कहा तो उस समय तक बिको दक्षिणी अफ्रीका छात्र संगठन और अश्वेत समाज कार्यक्रम का मान्य नेता बन चुका था । एक कुशल संगठन के रूप में उसने अश्वेत चेतना आन्दोलन का प्रारंभ एवं प्रचार-प्रसार किया । एक वर्ष के अन्दर ही डरबन, जहाँ वह काम करता था, में प्रतिबंधित कर दिया गया । इसके बाद वह अपने घर चला गया जहाँ वह वही कार्य करने लगा जब तक सन् 1975 में उस पर और अधिक प्रतिबंध नहीं लगाये गये । इसके बाद उसने अपने अनुयायिओं और प्रशंसकों (अश्वेत कार्यकर्ताओं और श्वेत समर्थकों) के सहयोग से कई गुप्त यात्राएं की ।

एक व्यक्ति जिसने असाधारण साहस का परिचय दिया और अतिरिक्त जोखिम उठाया, ऐसे महान व्यक्ति बिको का अन्त शीघ्र एवं पाश्विक था । 6 दिसम्बर, 1977 को बिको को गिरफ्तार कर पुलिस पोर्ट एलिजाबेथ की एक इमारत में ले गयी । जहाँ पुलिस ने उसके हाथ-पैर एक जाली से बांधकर 22 घंटे तक उससे पूछताछ की । इस दौरान उसे बुरी तरह पीटा गया जिससे उसके सिर में चोट आयी और वह कोमा में चला गया । 6 दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी ।

दो सप्ताह बाद पूरे दक्षिण अफ्रीका से करीब 20 हजार लोग किंग विलियम कस्बे में बिको के अंतिम संस्कार में शामिल होने पहुँचे । कई लोग गिरफ्तार हुए, प्रशंसकों पर अश्रु गैस छोड़ी गयी और भीड़ में शामिल होने का प्रयास करते हुए कई लोगों को बुरी तरह पीटा गया । मृत्यु के कारणों की जाँच के लिए बनाई गई कमिटि ने पर्याप्त सबूत एवं गवाह (फोटोग्राफ एवं

अन्य दस्तावेज) होने के बावजूद मजिस्ट्रेट ने मात्र एक मिनिट में सुनवाई पूरी कर ली और निर्णय दिया कि बिको की मृत्यु एक झड़प में हुई थी । एक श्वेत पत्रकार डोनाल्ड वुड्स ने बिको की सुनवाई के दस्तावेज, उसकी मृत्यु के पश्चात् की गई जाँच के दस्तावेज देश से बाहर लाकर एक पुस्तक लिखी जिस पर बाद में एक फिल्म बनी । इन सब ने बिको की कहानी सारे विश्व के सामने खोल कर रख दी ।

अपने छोटे से जीवन में बीको को कई बार छोटे-मोटे अपराधों के लिए दण्ड दिया गया । यह एक सामान्य परम्परा थी कि श्वेत पुलिस अपने क्षेत्र के अश्वेत कार्यकर्त्ताओं पर अत्याचार करती थी । स्टीफन बिको को उन लोगों से भी सम्मान मिला जिनका काम भेद-भाव पूर्ण कानूनों को लागू करना था । कई उदाहरणों में से एक सन् 1976 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सजा सुनाये गये व अश्वेत व्यक्तियों को बचाने का उसने भरपूर प्रयास किया । उसमें यह क्षमता थी कि वह न्यायालय के कक्ष को अश्वेत लोगों को दी गई यातनाओं को मुखर करने का मंच बना देता था । यहां से वह दमनकारी और नस्लीय शासन पर प्रहार भी करता था । उसने यह भी साबित कर दिया कि अश्वेत चेतना आंदोलन एक रचनात्मक कार्यक्रम है न कि विनाशकारी ।

विभिन्न वर्णनों से हमें यह ज्ञात होता है कि बिको ने राष्ट्रवादी मानसिकता और व्यवस्था के दोषों में फंसे हुए व्यक्तियों में भेद किया । उसका यह व्यवहार, उसकी शक्ति और उसके चरित्र को क्षमता बताती है । उसकी मृत्यु के समय लोगों ने उसे मात्र एक राजनैतिक सिद्धान्तकार ही नहीं बल्कि एक धर्म शास्त्री भी माना ।

यद्यपि बिको का पालन-पोषण अंग्रेज व्यक्तियों की तरह हुआ और वह चर्च से संबंधित विद्यालयों में पढ़ा बिको ने अफ्रीका इसाईयों को औपनिवेशिक विरासत एवं यूरोप का उत्पाद एवं प्रतीक माना। उनका कहना था - "चर्च को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि अश्वेतों पर अत्याचार हो रहे हैं । उसका मानना था कि इसाइयत स्वयं में बुरी नहीं है, किन्तु पाश्चात्य लोगों ने उसका मनमाना प्रयोग किया और उसके स्वरूप को विकृत किया ।

अश्वेत धर्मशास्त्र ने अश्वेत लोगों में ईश्वर को पुन: प्रतिष्ठित करने और उन्हें उनकी स्थिति की वास्तविकता बताने का प्रयास किया । अश्वेत-चेतना धर्मशास्त्र अश्वेतों को अपने अधिकारों के प्रतिजागरूक करने तथा अधिकार पूर्वक उनको मांगने का साधन था । इस प्रकार बिको एक महान देशभक्त था जिसके नेतृत्व ने लोगों में धार्मिक जागरूकता का संचार किया तथा साथ-ही-साथ विश्व में सामाजिक परिवर्तन के लिए चल रहे आन्दोलन का मार्गदर्शक भी किया ।

14.4 नेल्सन मण्डेला (1918 -)

नेल्सन रोलीहलाहलाह मण्डेला का जन्म 18 जुलाई, 1918 को दक्षिण अफ्रीका के क्वेजा क्याथा जिले, के एक छोटे से गाँव कुन्नू, उमटाटा, ट्रान्सकई में हुआ था । मण्डेला को जो शिक्षा वह ब्रिटिश शिक्षा थी, जिसमें ब्रिटिश विचार, ब्रिटिश संस्कृति, ब्रिटिश संस्थाएं स्वाभाविक रूप से श्रेष्ठ मानी गई थी ।

बचपन से ही मण्डेला इस बात को महसूस करते थे कि अगर कोई खेल में पराजित है तो उसे अपमानित नहीं करना चाहिए । उनका मानना था कि हर व्यक्ति को दूसरे की स्वतन्त्रता का रखना चाहिए और जो ऐसा नहीं करता है, वह नफरत का कैदी है ।

1944 में जब द्वितीय विश्व युद्ध चरम सीमा पर था, तो 'अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' के कुछ युवा सदस्यों ने एन्टन लेम्बेडे के नेतृत्व में 'अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस' को एक उग्र जन आन्दोलन का देना चाहा । विलियम नकोमो वाल्टर सिसलु आलिवर टैम्बो, ऐश्बी पीमदा के अलावा इन युवाओं में नेल्सन भी थे । ये 60 सदस्य थे और विट वाटर स्ट्रेण्ड (WIT WATER STRAND) के आसपास ही रहते थे ।

इनका यह तर्क था कि अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस का परम्परावादी संविधनवाद और विनम्र प्रतिनिधिमंडलवाद राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं दिला सकता । इसके स्थान पर लैम्बैडे और साथियों ने एक क्रान्तिकारी अफ्रीकी राष्ट्रवाद की वकालत की जो कि राष्ट्रीय आत्म-निर्धारण (National Self-determination) पर आधारित थी ।

सितम्बर 1944 में उन्होंनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस यूथ लीग (African National Congress Youth League) का गठन किया । शीघ्र ही उन्होंनें अपने साथियों को अपने अनुशासित काम और अथक प्रयासों से प्रभावित किया और 1948 में उन्हें लीग का राष्ट्रीय सचिव निर्वाचित किया गया ।

इन्होंने काफी प्रचारात्मक कार्यवाहियों के माध्यम से अपनी नीतियों के लिए अफ्रीकन काँग्रेस के सदस्यों से समर्थन प्राप्त किया ।

सन् 1949 में औपचारिक रूप से अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने बहिष्कार, सविनय अवज्ञा, और हड़ताल को अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की नीति के रूप में स्वीकारा ।

1952 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस ने अन्यायपूर्ण कानूनों के विरूद्ध एक आन्दोलन तो, मण्डेला जो कि अब तक युवा लीग के अध्यक्ष थे, राष्ट्रीय मुख्य स्वयंसेवक चुने गये । मुट्ठी भर लोगों से किया हुआ यह आन्दोलन एक जन आन्दोलन बन गया ।

अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए मण्डेला ने पूरे देश का दौरा किया और लोगों अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने के लिए प्रेरित किया ।

सिसलु मोरोक्का और सत्रह अन्य लोगों के साथ मण्डेला के विरूद्ध न्यायिक कार्यवाही हुई, जिसमें यह पाया गया कि मण्डेला ने लगातार अपने सहयोगियों को हिंसा का सहारा लेने के लिए प्रेरित था, उन्हें कारावास की सजा सुनाई गई और छः माह तक जोहान्सबर्ग में ही रहने की हिदायत दी गई और सम्मेलनों में भाग लेने की मनाही कर दी गई । इस दौरान उन्होंनें वकालत के लिए परीक्षा दी, और गाद में वकालत करने की अनुमति भी मिल गई ।

1952 में अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस के उप-राष्ट्रीय राष्ट्रपति बन कर उन्होंनें नस्लवाद के विरूद्ध अहिंसक साधनों के प्रयोग पर जोर दिया, किन्तु व 1960 में शार्पविल में जब कुछ अहिंसक प्रदर्शनकर्ताओं की मौत हुई, तो उन्होंनें अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस की एक और शाखा उमखोन्टो वी सिजव की नींव रखी । इसी वर्ष अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस को गैर-कानूनी घोषित किया गया और उसे अपराधी ठहराया गया ।

उन्होंने अपनी आत्म कथा में यह संदेश दिया कि स्वतन्त्रता की राह पर चलने वाले अधिकांश लोगों को बार-बार मौत की घाटी से गुजरना होगा, जब तक कि वे अपनी इच्छाओं के पहाड़ तक नहीं पहुँच जाते ।1963 में जब अफ्रीकन नेशनल काँग्रेस और उमखोन्टो वी सिजव के कुछ सदस्यों को बन्दी बनाया गया तो सरकार को हिंसात्मक तरीकों से हटाने के लिए मण्डेला पर भी उनके साथ केस चलाया गया, कटघरे से उनका जो उद्‌बोधन था उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई ।

कटघरे से अपने उद्‌बोधन में नेल्सन मण्डेला ने कहा कि दक्षिण अफ्रीका का संघर्ष विदेशियों और साम्यवादियों के प्रभाव के कारण नहीं है अपितु व्यक्तिगत तौर पर, अपने लोगों के नेता के रूप में, उन्होंने जो कुछ भी किया उनके दक्षिण अफ्रीकी अनुभवों पर आधारित था और उन्होंने यह सब अपनी पृष्ठभूमि में गर्व के कारण किया । उन्होंने यह भी कहा कि वह हिंसा के समर्थक नहीं है तथा तोड़फोड़ में विश्वास नहीं करते परन्तु ऐसा किये बिना वर्षो से किए जाने वाले शोषण और अत्याचार को यदि दूर नहीं किया जा सकता तो विकल्पों के बारे में सोचना अपरिहार्य बन जाता है । नेल्सन मण्डेला को न्यायालय ने दोशी मानकर कठोर कारावास की सजा सुनाई और उन्हें परिणाम स्वरूप कई वर्षा तक जेल की सजा काटने के लिए विवश होना पड़ा ।

उन्होंने अपनी आत्मकथा (लाँग वाँक टू फ्रिडम) में लिखा है कि अश्वेत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन की प्रेरणा उन्हें महात्मा गाँधी से मिली । उन्होंने लिखा है कि 'मैं 27 वर्षो तक जेल की कालकोठरी में महात्मा गाँधी जैसी महान् विभूति के व्यक्तित्व और विचार दर्शन की अर्मूत तंरगों की अंगाध ऊर्जा पाकर जीवित रहा हूँ ।'

अन्तत: वे दक्षिण अफ्रीकी गौरी सरकार के विरूद्ध अपने आन्दोलन में विजय रहे और 1994 में दक्षिण अफ्रीका में पहली अश्वेत सरकार का गठन उन्हीं के नेतृत्व में हुआ । उनका नस्लवादी सरकार के विरूद्ध आन्दोलन ने शेष अफ्रीकी राष्ट्रों की जनता के लिए प्रेरणा व उत्साहवर्धन का काम किया ।

14.5 एमा गोल्डमैन (1869-1940)

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान कानून के विरूद्ध संगठित होने के परिणास्वरूप एमा गोल्डमैन, एलेक्जेंडर वर्कमैन और 247 अन्य लोगों को सन् 1919 में संयुक्त राज्य अमेरिका से बाहर निकाल दिया गया । इस दमनात्मक कदम का कारण एक नौजवान अधिवक्ता जे. एडगर हूवर की महत्वाकांक्षी परियोजना थी । हूवर गोल्डमैन और उसके प्रेमी बर्कमैन को 'देश के दो सबसे खतरनाक अराजकतावादी' मानता था । उनका मुख्य अपराध था कि वे स्वयं को 'विश्व का नागरिक' मानते थे । सार्वजनिक हित के प्रति एमा की प्रतिबद्धता थी और उन्होंने स्वयं की अन्तःकरण की आवाज पर ध्यान दिया । उसने वॉल्ट विटमैन की लीवज ऑफ ग्रास' में दी गई सलाह को गंभीरता से लिया । "प्रतिरोध अधिक और आज्ञाकारिता कम । एक बार प्रश्नहीन रूप से आज्ञाकारी बनना सम्पूर्ण दास बनने का ध्योतक है ।"

अपने संदेश और शैली में गोल्डमैन की जीवन-यात्रा का परिचय 'इन एप्रिसिएशन (1913) में मिलता है । यह उनके विचारों का प्रतिनिधित्व करती है । अपने जीवन में कुछ घंटों या कई वर्षो के लिए आये लोगो के प्रति वे आभार व्यक्त करती हुई कहती है, "उनका प्रेम और उनकी घृणा दोनों ने ही मेरे जीवन को जीने लायक बनाया ।" अपने प्रदर्शनों, भाषणों और सशक्त एवं पठनीय निबंधों द्वारा उन्होंने शक्ति के केन्द्रीकरण के खतरों से आगाह किया । साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यदि शक्ति मात्र उच्च वर्ग में निहित रहती है तो इसका परिणाम हिंसा और दमन होना अवश्यंभावी है । एक बार उन्होंने अपने लोकप्रिय पुस्तिका "व्हाट आई बिलीव" (1905) में कहा था कि केवल अराजकतावादी ही यह चाहते हैं कि सैनिकीकरण की उस बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर रोक लगे जिसके कारण स्वतंत्र देश राजशाही और तानाशाही की ओर अग्रसर हो रहा है । यूजीन विक्टर डेब्स, विश्व के औद्योगिक श्रमिकों हितों के लिए कार्य करने वाले अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ मिलकर गोल्डमैन ने प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व के समय को अमेरिका के राजनैतिक इतिहास का सबसे अधिक जावंत काल बना दिया । अपने साहसिक जीवन के दौरान और अपनी मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अन्य लोगों को भी अपना जीवन 'जीने योग्य' बनाने की प्रेरणा दी ।

एमॉन हेनेसी ने अपनी पुस्तक "वन मैन रिवॉल्युवशन इन अमेरिका" (1970) में उन्हें अठारह महानतम अमेरिकीयों में शामिल किया और डोरोयी थे जो मदर जोन्स और एमा गोल्डमैन के समान बनना चाहती थी, ने गोल्डमैन के अराजकतावादी सिद्धान्तों को कैथोलिक श्रमिक आन्दोलन का मुख्य बिन्दु बना लिया । थियोडोर ड्रेजियर गोल्डमैन को शताब्दी में किसी भी महिला का सबसे प्रभावशाली लेखन मानती हैं । जॉन ड्यूवी और बर्टेण्ड रसेल कई यूरोपीय अराजकतावादियों में गोल्डमैन को एक महत्वपूर्ण एवं आकर्षक व्यक्तित्व मानते हैं । नाटककार एस.एन. बेहर्मन ने अपने संस्मरण 'द वारसैस्टर अकाउन्ट' में उनके बारे में बड़े ही स्नेहपूर्ण ढंग से वर्णन किया है । स्टेनले कुनी अपनी कविता "जर्नल दु माई डॉक्टर" में अपने आप को गोल्डमैन और इंगरसोल की तरह गर्वपूर्वक स्वतंत्र विचारक बताते हैं । इतिहासकार होवर्ड जिन ने उनके बारे में सन् 1970 में एक सफल नाटक लिखा । स्त्रीवादी आलोचकों ने उन्हें महिला आन्दोलनों का प्रणेता बताया । सन् 1970 में एमा गोल्डमैन ब्रिगेड के युवा सदस्य फिफ्थ एवेन्यू, न्यूयॉर्क सिटी तक नारे लगाते गये : "एमा ने 1910 में कहा था और आज हम उसे दोहरा रहे है ।"

एमा गोल्डमैन का जन्म 27 जून, 1869 में कोवनो लिथूनिया में हुआ था । वह टोबी बायनोविच की तीसरी संतान थी और दूसरे पति अब्राहन गोल्डमैन के तीन सन्तानों में सबसे बड़ी संतान थी । एमा ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा यहूदी प्राथमिक विद्यालय में प्राप्त की जहाँ उसने काफी अच्छा प्रदर्शन किया । कुछ समय बाद वह सेंट पीटर्सबर्ग चली गयी जहाँ परिवार की गरीबी की वजह से 13 वर्ष की आयु में उसे एक फैक्ट्री में पूर्णकालिक श्रमिकों की तरह कार्य करना पड़ा । 2 वर्ष बाद अपने पिता द्वारा विवाह कर दिये जाने के डर से वह अपनी बहन के साथ अमेरिका भाग गयी ।

रोचेस्टर न्यायर्क में अपनी पहली नौकरी में उसे रोज 10 घंटे ओवरकोट की सिलाई करनी पड़ती थी जिसके बदले उसे 2.50 डीलर प्रति सप्ताह मिलते थे । रूस की तरह ही अमेरिका में भी श्रमिकों के साथ काफी बुरा व्यवहार किया जाता था और उन्हें मारा-पीटा भी जाता था । रूस में उसने किसानों की पिटाई होते हुए देखी थी । यह दशा देखकर उसे काफी दुःख हुआ । सन् 1886 में शिकागो में चार अराजकतावादियों को अन्यायपूर्ण तरीके से दोषी ठहराकर उन्हें फांसी दे दी गई । 'हेमार्केट स्क्वायर ट्रायल' के नाम से मशहूर इस घटना ने गोल्डमैन पर गंभीर प्रभाव डाला । उन्होंने लिखा - "मुझे ऐसा स्पष्ट आभास हो रहा था कि मेरी आत्मा के भीतर किसी नई और आश्चर्यजनक बात का जन्म हुआ हो । वह था एक महान आदर्श, एक प्रगाढ़ विश्वास, शहीद हो चुके साथियों के प्रति समर्पण का निश्चय और उनके अधूरे कार्य को पुरा करने का संकल्प ।"

एक अन्य रूसी अप्रवासी के साथ एक अल्पकालिक विवाह के पश्चात् एमा न्यूयॉर्क सिटी चली गयी । उस समय उसकी आयु मात्र 20 वर्ष थी । न्यूयॉर्क में 'फ्रेलहाइट' के अराजकतावादी संपादक जोहान मोस्ट ने उसे संरक्षण दिया । सन् 1889 में गोल्डमैन सिले हुए वस्त्रों का निर्माण करने वाले श्रमिकों द्वारा की गई हड़ताल की मुख्य सूत्रधार थी । अपने समय की कई अराजकतावादियों की तरह गोल्डमैन का विचार था कि किसी नाटकीय और ध्रुवीकरण करने वाली घटना के फलस्वरूप लोगों को अपने स्वामियों के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है । सन् 1892 में जन हड़ताली लोहा श्रमिकों पर कारनेगी प्लान्ट, पेनसिल्वेनिया में गोली चलायी गई तो अलेक्जेंडर बर्कमैन ने उसे कम्पनी के चेयरमैन हेनरी क्लेफ्रिक की हत्या करने का संकल्प लिया । प्रयास विफल होने पर जब बर्कमैन 14 वर्ष के लिए जेल गया तो गोल्डमैन ने अदालत में उसका बचाव किया । वह अराजकतावादियों की प्रमुख प्रवक्ता बन गयी । उसने दंगा फैलाने के झूठे आरोप में एक वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया ।

दमन के कुछ काल के पश्चात नई शताब्दी की शुरूआत के समय जब एक अराजकतावादी ने राष्ट्रपति मैक किनले की हत्या कर दी तो उस समय सन् 1906 में गौल्डमेन पुन: सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हुई । आयी इसी वर्ष में उन्होंने मासिक पत्रिका 'मदर अर्थ' प्रारम्भ की जिसमें उन्होंने महिला सशक्तिकरण, भाषण की स्वतंत्रता और अन्य समान प्रकृति के मुद्दों को उठाया । उन्होंने इबसेन, स्ट्रेण्डबर्ग और शॉ पर निबंधों का प्रकाशन किया । शॉ के नाटकों को वे महिलाओं की दशा को दर्शाने का सशक्त माध्यम मानती थी । इसके अलावा इन्होंने क्रोपोटकिन और बकुनिन जैसे अराजकतावादियों के लेख भी प्रकाशित किये । साथ ही उन्होंने ऑस्कर वाइल्ड के लेख और अराजकतावाद और साहित्य पर स्वयं के निबंध भी प्रकाशित किये ।

विभिन्न श्रमिक अधिकारों और महिला अधिकारों के लिए चलाए गए आन्दोलनों में उन्होंने अथक परिश्रम किया । भाषण देने की उनकी कला की सराहना हर स्थान पर हुई । सन् 1910 में उन्होंने 37 राज्यों में 120 बार भाषण दिये । एलिकस कैट्स शूलमैन ने कहा है, "प्रकृति से जुझारू गोल्डमैन प्यूरिटनों से प्रेम की बात करती थी, चर्च से संबंधित लोगों से

नास्तिकता की बातें करती थी; सुधारकों से क्रान्ति की बातें करती थी । सन् 1915 में उन्हें परिवार नियोजन के तरीकों पर भाषण देने के लिए 15 दिन की जेल की सजा दी गई ।

सन् 1917 में अमेरिका और जर्मनी के बीच होने वाले युद्ध के समय गोल्डमैन और बर्कमैन जेल से बाहर थे । इस समय उन्होंने 'नो कॉन्सक्रिप्शन लीग' की स्थापना की जिसके फलस्वरूप कानून का उल्लंघन करने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । इस लीग का उद्देश्य अमेरिकी सैनिकीकरण की बुराईयों और समाज एवं स्वतंत्रता विरोधी उद्देश्यों का प्रतिरोध करना था । अपनी गिरफ्तारी के बारे में उन्होंने जज से मजाकीय अन्दाज और साहसपूर्ण तरीके से कहा कि गिरफ्तार करने वाले महान नाटकीय गुणों वाले योद्धाओं के दल ने मुझे गिरफ्तार किया । उन्होंने कहा, "एक दर्जन या उससे अधिक देश के लिए स्वयं को न्योछावर करने वाले नायकों का एक दल देश के दो सबसे खतरनाक उपद्रवियों अलेक्जेंडर बर्कमैन और एमा गोल्डमैन जिसके पास तलवार, बंदूक या कोई अन्य शस्त्र नहीं है बल्कि मात्र कलम है, को गिरफ्तार करने के लिए आये ।" सन् 1919 में जे. एडगर हुवर जो बाद में एफ.बी.आई. के प्रमुख बने, ने गोल्डमैन को देश से बाहर निकालने के लिए सुनवाई की और उसकी नागरिकता रद्द कर दी । उन्होंने गोल्डमैन, बर्कमैन और 247 अन्य कट्टरवादियों को देश निकाला देकर उन्हें सोवियत संघ भेज दिया ।

सन् 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के परिणास्वरूप उत्साहित गोल्डमैन सोवियत संघ की कट्टर आलोचक बन गयी जब उन्हें पता चला कि सोवियत संघ में अन्य देशों की तरह ही अराजकतावादियों के साथ शत्रुओं की तरह व्यवहार किया जाता है । एमा सन् 1930 के दशक के प्रारम्भ में फ्रान्स, इंग्लैण्ड और स्पेन के गृहयुद्ध के दौरान स्पेन गयी और वहाँ की अराजकतावादी प्रेस का प्रबंधन किया । एक भीड़ भरे हॉल में अराजकतावादियों के समर्थन, फांसीवादियों की अनुशासनहीनता और साम्यवादियों के बेहुदे शोर के बीच उन्होंने कहा, "भीड़ से निपटने का मुझे पचास साल का अनुभव है । मेरी आवाज कोई नहीं दबा सकता । अंग्रेज उपन्यासकार इथेल मैनिन ने कहा, "इसके बाद सब जगह शांति हो गई और जब गोल्डमैन का भाषण समाप्त हुआ तो सभी ने उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की ।

सन् 1939 में स्पेन के अराजकतावादियों के लिए धन एकत्रित करने के लिए कनाडा जाते समय उन्हे दिल का दौरा पड़ा और कुछ महिनों बाद टोरंटो में 14 मई, 1940 में उनकी मृत्यु हो गयी ।

वास्तव में वे अधिकारियों और विरोधियों के सामने कभी नहीं झुकी । वे अपने बहिष्कार, देश निकाले ओर जेल से कभी भयभीत नहीं हुई । वह सामाजिक न्याय की एक महान समर्थक थीं और अपने मूल्यों और अतिवादी मित्रों के प्रति वफादारी में कमी उनसे गलती नहीं हुई ।

मृत्योपरांत गोल्डमैन को अमेरिका के शिकागो में अंतिम संस्कार की अनुमति मिली । एक बार किसी ने उनसे जीवन वृतांत के बारे में पूछा तो उन्होंने जबाव दिया, "अमेरिका और यूरोप के किसी भी पुलिस विभाग में आपको मेरे बारे में सम्पूर्ण जानकारी मिल जाएगी ।"

14.6 सारांश

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि मार्टिन लूथर किंग, स्टीफन बिको नेल्सन मण्डेला और एमा गोल्डमैन ने अहिंसात्मक तरीकों के प्रयोग से अन्याय, अत्याचार और अनेक प्रकार के संघर्षों को रूपान्तरित कर समाज में बिना मार-काट और हिंसा के सुधार लाने का सफल प्रयास किया है । विश्व के अनेक स्थानों में इनके जैसे अनगिनत लोगों ने न्याय और शान्ति स्थापित करने का ऐसा प्रयास किया है और यह सिद्ध किया है कि अहिंसा के माध्यम से हिंसा और अन्याय युक्त समाज में भी न्याय शान्ति स्थापना का लक्ष्य पूरा हो सकता है ।

14.7 अभ्यास प्रश्न

1. शान्ति स्थापक के रूप में मार्टिन लूथर किंग के योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
2. शान्ति स्थापक के रूप में स्टीफन बिको के योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
3. शान्ति स्थापक के रूप में नेल्सन मण्डेला के योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
4. शान्ति स्थापक के रूप में एमा गोल्डमैन के योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जेम्स एम. वाशिंगन्टन (सम्पादित), ए टेस्टामेन्ट ऑफ होप : दी इसेन्षियल राइटिन्गस ऑफ मार्टिन लूथर किंग, जूनियर, हार्पर एण्ड राव, न्यूयॉर्क, 1986
2. लुइस डेविड एल. किंग : ए क्रिटिकल बायोग्राफी, प्रेगर न्यायर्क, 1978
3. ट्रू माइकल, पीपल पॉवर : फिफ्टी पीसमेकर्स एण्ड देयर कम्युनिटीस, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2007
4. एलिक्स केट्स शुलमैन (सम्पादित) रेड एम्मा स्पीक्स : सेलेक्टेड राइटिंगस ऑफ एम्मा गोल्डमैन, विन्टेज बुक्स, न्यायर्क, 1982.
5. ड्रिभोन रिचर्ड, रिबल इन पेराडाईस : ए बायोग्राफी ऑफ एम्मा गोल्डमैन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1961.

ISBN : 13/978-81-8496-291-8